
इकाई 1 : भारतीय प्रशासन का विकास

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 भारतीय प्रशासन: विकास

1.3.1 मौर्य प्रशासन

1.3.2 मुगल प्रशासन

1.3.3 ब्रिटिश प्रशासन

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

यद्यपि लोक प्रशासन एक अध्ययन के विषय के रूप में नवीन विषय है जिसका जन्म 1887 में वुडरो विल्सन की राजनीति-प्रशासन द्वैतभाव की विचारधारा के प्रतिपादन के परिणामस्वरूप हुआ, तथापि लोक प्रशासन एक कार्य या प्रक्रिया के रूप में सभ्यता के अस्तित्व के साथ ही दिखाई देता है। जब से सभ्यता का अस्तित्व के साथ ही दिखाई देता। जब से सभ्यता का अस्तित्व है तब से मानव के विकास हेतु निरंतर संगठित प्रयास होते रहें और सभ्यता के अस्तित्व के साथ ही प्रशासन का अस्तित्व भी देखने को मिलता है।

भारतीय परिवेश में भी प्रशासन का विकास प्राचीन काल से ही देखा जा सकता है। हड़प्पा सभ्यता से लेकर आज तक भारतीय प्रशासन अनेक उतार-चढ़ावों से गुजरा है। भारतीय प्रशासन अपने वर्तमान रूप में विरासत और निरंतरता का परिणाम है जिसके विकास की कड़ियां किसी न किसी रूप में अतीत से जुड़ी हुई हैं। हालांकि वर्तमान भारतीय शासन प्रणाली मूल रूप से ब्रिटिश काल की देन मानी जाती है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत हम --

1. भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे |
2. मौर्यकाल में भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे।
3. मुगलकाल में भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे।
4. ब्रिटिश शासन में भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे।

1.3 भारतीय प्रशासन विकास

वी. सुब्रह्मण्यम के अनुसार वर्तमान प्रशासनिक प्रक्रिया का सिलसिला सदियों तक विचारों का रहा, न कि संस्थाओं का। संस्थागत सिलसिला अंग्रेजों के शासनकाल की देन है।

भारतीय प्रशासन के विकास में मौर्यकाल, मुगलकाल तथा ब्रिटिशकाल का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

1.3.1 मौर्य प्रशासन

मौर्य प्रशासन का अथवा भारतीय इतिहास में दिलचस्पी का विषय है। मौर्य प्रशासन का अध्ययन पूर्ववर्ती प्रक्रियाओं के परिप्रेक्ष्य में ही किया जा सकता है, अर्थात् इसकी स्थिति वैदिक कबायली संरचना और सामंतवादी युग के बीच की है। मौर्यकालमें भारत ने पहली बार राजनीतिक एकता प्राप्त की तथा एक विशाल साम्राज्य पर मौर्य शासकों ने शासन किया। इस विशाल साम्राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालने वाले अनेक ऐतिहासिक स्रोत उपलब्ध हैं। कौटिल्य का अर्थशास्त्र, मेगस्थनीज की इंडिका, अशोक के शिलालेख व अनेक यूनानी रचनाओं से मौर्य शासन प्रणाली के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा अपने गुरु और प्रधानमंत्री चाणक्य की सहायता से जिस शासन प्रणाली का प्रारंभ किया गया, उसके अनेक तत्व वर्तमान प्रशासन में भी दृष्टिगोचर होते हैं।

मौर्य प्रशासन के दौरान निम्नांकित बातों पर विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है-

1. यह एक अति केन्द्रीकृत प्रशासन था जिसकी पहुँच नागरिक जीवन के सभी क्षेत्रों में थी। इसकी चिंता बाजार-व्यवस्था के नियंत्रण से लेकर नागरिक जीवन में नैतिक मूल्यों की सुरक्षा तक थी।
2. यह एक नौकरशाही पर आधारित प्रशासन था जिसमें सबल एवं निर्बल दोनों पक्ष थे।
3. वस्तुतः मौर्य प्रशासन कोई नवीन प्रशासन नहीं था वरन् नंद शासकों की पद्धति का ही एक विकसित रूप था अर्थात् केन्द्रीकरण की प्रक्रिया नंद शासकों के समय ही शुरू हो गई थी।

केन्द्रीय प्रशासन:-

मौर्य साम्राज्य का स्वरूप राजतंत्रात्मक था। अतः शासन का प्रधान राजा होता था। राजपद एक महत्वपूर्ण पद हो गया और इस पद की शक्ति एवं अधिकार बढ़ गए। राजा, राज्य का प्रमुख होता था। जिसके पास कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका के अधिकारों के साथ वित्तीय शक्तियाँ भी थीं। राजा की खुशी प्रजा की खुशी पर निर्भर करती थी। जनकल्याण पर राजा का कल्याण आश्रित था। राज्य में रहने वाले लोगों के हितों का संपादन ही राजा का प्रमुख कर्तव्य था।

राजा अब केवल दूरस्थ संरक्षक नहीं वरन जनता का एक निकट संरक्षक बन गया। राजशक्ति निरंकुश पितृसत्तावाद पर आधारित थी। अशोक ने स्पष्ट रूप से अपने धौली शिलालेख में घोषणा की कि “सारी प्रजा मेरी संतान है”। अर्थात् मौर्य शासक जनता के व्यक्तिगत जीवन में भी हस्तक्षेप करने लगे थे। राजा अब न केवल धर्मशास्त्र के द्वारा संचालित होता था। बल्कि अर्थशास्त्र के द्वारा संचालित होता था। अर्थशास्त्र में राजा की विवेकशीलता पर बल दिया गया, अर्थात् राजा न केवल पुराने कानूनों का पालन करवा सकता था वरन प्रशासनिक आवश्यकताओं से प्रेरित होकर नए कानूनों का निर्माण भी कर सकता था और फिर परंपरागत कानून तथा राजा के कानून में किसी प्रकार का विरोधाभास उत्पन्न होने की दशा में राजा का कानून ही ज्यादा मान्य होता था। अर्थशास्त्र के अनुसार प्रशासन के प्रत्येक पहलू में राजा का आदेश या विचार ही सर्वोपरि है।

अर्थशास्त्र में राजा के कर्तव्यों का भी निर्धारण किया गया। अर्थशास्त्र ने इस बात पर बल दिया, कि राजा को किसी भी समय कर्मचारियों एवं जनता की पहुंच से परे नहीं होना चाहिए। ऐसा होने पर गड़बड़ी एवं अशांति फैलेगा और राजा शत्रुओं का शिकार हो जाएगा। मेगस्थनीज का भी कहना है कि मालिश करवाते समय राजा से विचार विमर्श के लिए मिला जा सकता है। अशोक के शिलालेख भी इस बात की पुष्टि करते हैं। अर्थशास्त्र में राजा के कुछ आवश्यक गुण भी निर्धारित किए गये, जिसके अनुसार जनसाधारण, राजा नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त राजा को दैवीय बुद्धि व शक्ति वाला, वृद्धजनों की बात सुनने वाला, धार्मिक व सत्यवादी होना आवश्यक है।

मंत्रिपरिषद-

सिद्धांत के रूप में मौर्य काल में राज्य की संपूर्ण शक्ति राजा के हाथों में ही केंद्रित थी, किंतु व्यवहार में अनेक प्रतिबंधों के कारण राजा की शक्ति की निरंकुशता सीमित थी विशाल मंत्रिपरिषद व प्राचीन परंपराओं के पालन ने मौर्य शासकों की निरंकुशता पर सदैव अंकुश लगाए रखा। राजा को अपने कर्तव्यों के निर्वहन में सहायता हेतु एक मंत्रिपरिषद होती थी। अर्थशास्त्र एवं अशोक के अभिलेखों में मंत्रिपरिषद का जिक्र है। अर्थशास्त्र के अनुसार राज्यरूपी रथ केवल एक पहिए (राजा) के द्वारा नहीं चल सकता। अतएव दूसरे पहिए के रूप में उसे मंत्रिपरिषद की आवश्यकता होती है।

मंत्रिपरिषद एक परामर्शदात्री निकाय थी जिसकी शक्ति राजा एवं मंत्रियों की परस्पर स्थिति पर निर्भर करती थी। सामान्यतः राजा के समानांतर मंत्रिपरिषद् की शक्ति कमजोर थी और राजा मंत्रिपरिषद की सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं था। राजा के समानांतर मंत्रियों की स्थिति का अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि राजा अपने मंत्री को स्वयं नियुक्त करता था। मेगस्थनीज के अनुसार राजा के सलाहकार एक विशेष जाति से नियुक्त होते थे। राजा द्वारा मुख्यमंत्री तथा पुरोहित का चुनाव उनके चरित्र की भली भांति जांच के बाद किया जाता था।

अर्थशास्त्र में मंत्रियों के कुछ गुण निर्धारित किए गये अर्थात् उनमें उच्चकुल में जन्म, वीर, बुद्धिमान, ईमानदारी जैसे गुण होने चाहिए। मंत्रिपरिषद से 3-4 मंत्रियों की एक छोटी उपसमिति भी बनती थी जो राजा को कुछ विशिष्ट बातों में परामर्श देती थी। कौटिल्य ने नीति निर्धारण की गोपनीयता पर बल दिया है। मंत्रिपरिषद का अपना सचिव होता था, जिस पर उसके कार्यालय की देखभाल का भार था। कौटिल्य ने उसे मंत्रिपरिषद अध्यक्ष कहा है। डॉ. आर. सी. मजूमदार ने मौर्यकालीन मंत्रिपरिषद की तुलना इंग्लैण की प्रिवि-कौंसिल से की है।

नौकरशाही

मंत्रिपरिषद व राजा के द्वारा मुख्यतः नीति निर्धारण का कार्य किया जाता था। तत्पश्चात् उन नीतियों को कार्यान्वित करने का प्रमुख कार्य नौकरशाही के द्वारा किया जाता था। मौर्यकालीन नौकरशाही अत्यधिक सुसंगठित तथा सुव्यवस्थित थी। प्रशासन के संचालन में कौटिल्य ने 18 तीर्थों (अधिकारियों का नाम) एवं 27 अध्यक्षों की भूमिका पर बल दिया है। मौर्यकाल में प्रशासन की सुविधा के लिए 18 विभागों की स्थापना की गई थी जिन्हें तीर्थ कहते थे। प्रत्येक विभाग के संचालन व निरीक्षण के लिए अध्यक्ष होता था। एक महत्वपूर्ण केंद्रीय अधिकारी सन्निधाता अर्थात् कोषाध्यक्ष होता था। वह केन्द्रीय खजाने का प्रभारी होता था। वह एक दूसरे महत्वपूर्ण अधिकारी समाहर्ता से मिलकर कार्य करता था। समाहर्ता भू-राजस्व की वसूली से जुड़ा हुआ था। युवराज, राजा का उत्तराधिकारी होता था। मंत्री सर्वोच्च सलाहकार था। पुरोहित शासकीय तथा धार्मिक मामलों में राजा का परमर्शदाता था।

अर्थशास्त्र में राजस्व के महत्वपूर्ण स्रोतों की चर्चा की गई है, जैसे भूमि, खन, जंगल, सड़क आदि। महत्वपूर्ण राजकीय खर्च वेतन, सार्वजनिक कार्य निर्माण, सड़क एवं कुएं, विश्रामगृह, सिंचाई से संबंधित कार्यों में होता था। अर्थशास्त्र में राष्ट्रीय कोष एवं राजा के व्यक्तिगत कोष में कोई अंतर नहीं किया गया था।

राज्य का सप्तांग सिद्धांत:-

कौटिल्य के अनुसार राज्य एक आवश्यक और अनिवार्य संस्था है। राज्य की स्थापना के बिना समाज में अराजकता तथा मत्स्य न्याय की स्थापना हो जाएगी तथा शक्तिशाली, दुर्बल को अपने हित का साधन बना लेगा। कौटिल्य राज्य की उत्पत्ति के संदर्भ में सामाजिक समझौते के सिद्धांत में विश्वास करता है। राजा व प्रजा के बीच समझौते के परिणामस्वरूप राज्य अस्तित्व में आया। चूंकि राज्य, व्यक्ति के लिए हितकारी संस्था है। अतः व्यक्ति की निष्ठा एवं आस्था राज्य में होती है। कौटिल्य के अनुसार राज्य के 7 अंग हैं जिन पर राज्य की व्यवस्था, स्थिरता और अस्तित्व निर्भर करता है। ये 7 अंग हैं- राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोषालय, सशस्त्र सेना तथा मित्र। राज्य के इन

भागों में सावयव एकता होती है। राजा राज्य का प्राण है। अर्थशास्त्र के अनुसार राजा धर्म का रक्षक होता है। उसमें निर्भयता, आत्मनियंत्रण, निर्णय लेने की क्षमता तथा विचार करने की शक्ति होनी चाहिए। यदि राजा अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार नहीं करता, तो वह आदर योग्य नहीं है। अयोग्य राजा को पद से हटा देना चाहिए।

राजा के बाद पदसोपान में दूसरा स्थान अमात्म का आता है। वह आजकल के मंत्रिमंडलीय सचिव के समान शासकीय अधिकारियों में सबसे उच्च अधिकारी होता था। अमात्य प्रशासन संबंधी बातों को देखता था। राजा कुशल, बुद्धिवान तथा निर्णय लेने की क्षमता वाले व्यक्ति को अमात्य पद के लिए चयन करता था।

जनपद, राज्य का तीसरा अंग था। इसमें भूमि-भाग के साथ साथ क्षेत्र में रहने वाले लोग सम्मिलित होते थे। कौटिल्य के अनुसार श्रेष्ठ जनपद वह है जो प्राकृतिक सीमाओं जैसे नदी, पहाड़, जंगल में बसा हो। जनपद की भूमि उपजाऊ होनी चाहिए तथा रहने वाले लोग मेहनती, बुद्धिमान, वफादार होने चाहिए।

दुर्ग भी राज्य का एक अनिवार्य अंग था। राज्य की स्थिरता और युद्धों में सुरक्षा के लिए दुर्ग की भूमिका अहम होती थी। दुर्ग में पर्याप्त खाद्य सामग्री, अस्त्र-शस्त्र, पानी, दवाईयां आदि का रहना आवश्यक था जो समय पर काम आ सके।

कोष व कोषालय भी राज्य के अस्तित्व के लिए अनिवार्य था। मौर्यकाल में वित्त की व्यवस्था बेहतर थी। विभिन्न प्रकार के करों से प्राप्त राशि कोषालय में एकत्रित होती थी। विभिन्न खर्चों के लिए बजट में व्यवस्था होती थी। आपात स्थितियों से निपटने के लिए आपात निधि की आवश्यकता थी। सेना की राज्य में महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। कौटिल्य ने मौर्य सेना के संगठन तथा सैन्यशास्त्र का व्यापक चित्रण किया है। सैनिकों से राज भक्ति, साहस, बहादुरी की अपेक्षा की जाती थी। सीमा विस्तार पर विशेष ध्यान देने की वजह से सेना राज्य का आवश्यक अंग थी।

मित्र से तात्पर्य मित्र राज्यों से था। राज्य की प्रगति इस बात पर निर्भर करती है कि पड़ोसी राज्यों के साथ उसके संबंध मैत्रीपूर्ण हैं या नहीं।

इस प्रकार कौटिल्य ने राज्य के अस्तित्व एवं स्थिरता हेतु राज्य के सात अंगों पर आधारित होने की बात कही। इन अंगों के बीच उचित संतुलन अनिवार्य था।

प्रांतीय प्रशासन:-

मौर्यकाल में संपूर्ण साम्राज्य का विभाजन प्रांतों में किया गया था। पाँच प्रांतीय राजधानियां प्रमुख थीं। उत्तरापथ की राजधानी तक्षशिला, अवंति राज्य की राजधानी उज्जैन, कलिंग प्रांत की राजधानी

तोसली, दक्षिणापथ की राजधानी सुवर्णगिरि और पूर्वी प्रांत की राजधानी पाटलिपुत्र। ये पाँच महत्वपूर्ण एवं बड़े प्रांत थे तथा इनके अधीन छोटे छोटे प्रांत भी थे। बड़े प्रांतों का प्रशासक राजकुल का होता था। अशोक के फरमानों में उन्हें कुमार या आर्यपुत्र कहा गया है। अर्थशास्त्र में इस बात की चेतावनी दी गई कि कुमार या आर्यपुत्र खतरे का कारण हो सकता है। इसलिए उसे राज्य पर संपूर्ण नियंत्रण नहीं होना चाहिए। प्रांतीय प्रशासन में केंद्रीकरण की प्रकृति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है क्योंकि प्रांतीय मंत्रिपरिषदों को यह स्वतन्त्रता थी कि वह प्रांतीय प्रशासक को सूचित किए बिना राजा को महत्वपूर्ण सूचना प्रेषित कर सकती है। इस बात की पुष्टि दिव्यावदान से भी होती है।

किंतु क्षेत्रीय स्तर पर मौर्य प्रशासन में कुछ स्वायत्तता प्रदान की गई थी अर्थात् संबंधित क्षेत्र के व्यक्ति को ही उस क्षेत्र का प्रशासक नियुक्त किया जाता था। उदाहरण के लिए रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेखों से ज्ञात होता है कि काठियावाड़ का शासक यौनराज तुशाष्क था।

स्थानीय प्रशासन:-

प्रांतों का विभाजन विभिन्न जिलों में किया गया था। जिले को विषय या आहार कहा जाता था। जिला प्रशासन से जुड़े तीन पदाधिकारी थे- प्रादेशिक, रज्जुक और युक्त। प्रादेशिक नामक अधिकारी कानून एवं व्यवस्था को बनाए रखने और भू-राजस्व की वसूली से जुड़े हुए थे जबकि रज्जुक नामक अधिकारी विशेष रूप से न्यायिक कार्यों से जुड़े हुए थे। रज्जुक की नियुक्ति ग्रामीण जन कल्याण के उद्देश्य से की जाती थी। उसके अतिरिक्त युक्त का कर्तव्य सचिव एवं लेखा संबंधी काम देखना था। अशोक के अभिलेखों में इन अधिकारियों की चर्चा की गई है।

जिला एवं ग्रामीण प्रशासन के बीच एक और प्रशासनिक इकाई थी। जो संभवतः 5 या 10 गांवों का समूह होती थी। इसका महत्वपूर्ण अधिकारी गोप होता था जिसका काम सामान्य प्रशासन की देख-रेख करना था। गोप के अतिरिक्त स्थानिका नामक अधिकारी भी होता था जिसका मुख्य कार्य कर की वसूली था। वह सीधे प्रादेशिक के अधीन था। ऐसा प्रतीत होता है कि स्थानिका आधुनिक सहायक कलेक्टर और प्रादेशिका जिला कलेक्टर के समान थे और ये दोनों अधिकारी समाहर्ता या चीफ कलेक्टर के अधीन होते थे।

सबसे निचले स्तर पर ग्रामीण प्रशासन था जिसका प्रधान मुखिया होता था। वह ग्रामीण वृद्धजनों में से निर्वाचित होता था। छोटे गांवों में मुखिया ही एक मात्र अधिकारी होता था किंतु बड़े गांवों में मुखिया की सहायता के लिए लेखपाल एवं लिपिकों की नियुक्ति की जाती थी और अधिकारियों का वेतन या तो भू-राजस्व से या फिर भूमि प्रदान करके पूरा किया जाता था।

नगर प्रशासन:-

मौर्यकाल में नगर प्रशासन का अपना श्रेणीबद्ध संगठन था। नगर प्रशासन का प्रधान नगरक नामक अधिकारी होता था। अशोक के एक अभिलेख में नगर-व्यवहारिक की चर्चा की गई है। नगरक या नगर निरीक्षक का काम नगर कानून व्यवस्था बनाए रखना था। अकाल पड़ने पर गोदामों से अनाज बंटवाने का काम भी नगरक करता था। इस नगरक नामक अधिकारी की सहायता एवं मंत्रणा के लिए समाहर्ता एवं प्रादेशिका नामक अधिकारी होते थे। मेगस्थनीज के इंडिका में विस्तार से पाटलिपुत्र के नगर प्रशासन की चर्चा की गई है। मेगस्थनीज के अनुसार पाटलिपुत्र के प्रशासक के लिए पांच-पांच सदस्यों की 6 समितियां होती थी जिनके कार्य एवं कार्तव्य निम्नलिखित थे।

1. उद्योगों व शिल्पों का निरीक्षण
2. विदेशियों की देखभाल
3. जन्म मरण का पंजीकरण
4. वाणिज्य व्यापार की देखभाल
5. सार्वजनिक बिक्री का निरीक्षण
6. बिक्री कर संग्रह

कौटिल्य के अर्थशास्त्र की प्रासंगिकता:-

कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्राचीन भारत में लोक प्रशासन पर किया गया सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। यद्यपि अर्थशास्त्र में स्पष्ट रूप से लोक प्रशासन के सिद्धांत नहीं रखे गए हैं लेकिन इसमें वर्णित सरकारी कार्यप्रणाली महत्वपूर्ण है। कौटिल्य ने एक कल्याणकारी प्रशासन की बात की थी। राजा को प्रजा के हित के लिए कार्य करना चाहिए। उसे प्रजा को पुत्र की भांति पालना चाहिए, क्योंकि 'प्रजा हिते, हिते राज्ये, प्रजानाम च सुखे सुखम्'। अर्थात् प्रजा के हित में ही राज्य का हित है और प्रजा के सुख से ही राज्य सुखी है। कल्याणकारी प्रशासन के साथ ही कौटिल्य ने सुशासन की बात की है अर्थात् जनता की सारी सुविधाओं को सरकार द्वारा मुहैया कराया जाना चाहिए। क्षेत्रों की आवश्यकतानुसार उन्हें संसाधन उपलब्ध कराना राष्ट्र का दायित्व है।

कौटिल्य ने राजस्व संग्रहण के संदर्भ में उचित करारोपण को महत्व दिया है। करारोपण राज्य की आवश्यकता व प्रजा की स्थिति के अनुरूप होना चाहिए, उसके अनुसार उचित करारोपण की व्यवस्था वैसी ही होनी चाहिए, जैसे वृक्ष से फल गिरते हैं। कौटिल्य ने जट को जनता को खुशहाली की गारंटी देती है। कौटिल्य का कथन है कि सभी उद्यम वित्त पर निर्भर है अतः कोषागार पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

कौटिल्य का विचार है कि राजा का लोकसेवक कोषागार रक्षक मात्र होना चाहिए। प्रशासन के नियमों का उल्लंघन करने पर न्यायपालिका के दायरे में नहीं आते, किंतु निजी गुप्तचर व्यवस्था तथा विदेश संबंधी आदि विषयों पर कौटिल्य के द्वारा दिए गए विचार वर्तमान भारतीय प्रशासन के संदर्भ में पर्याप्त रूप से प्रासंगिक है।

1.3.2 मुगल प्रशासन

केन्द्रीय प्रशासन

प्रशासन के शीर्ष पर बादशाह होता था। वह सभी प्रकार के सैनिक एवं असैनिक मामलों का प्रधान होता है था। बादशाह मुगल साम्राज्य के प्रशासन की धुरी था | बादशाह की उपाधि धारण करता था, जिसका आशय था कि राजा अन्य किसी भी सत्ता के अधीन नहीं है। वह समस्त धार्मिक तथा धर्मोत्तर मामलों में अंतिम निर्णायक व अंतिम सत्ताधिकारी है। वह सेना, राजनीतिक, न्याय आदि का सर्वोच्च पदाधिकार है। वह संपूर्ण सत्ता का केन्द्र है तथा खुदा का प्रतिनिधि है।

मुगल बादशाह बहुत शान शौकत का जीवन व्यतीत करते थे। उनको बहुत से विशेषाधिकार प्राप्त थे और उनकी इच्छा ही कानून थी। तुर्की मंगोल परंपरा से ही मुगल प्रशासन को केन्द्रीकृत प्रशासन की अवधारणा विरासत में प्राप्त हुई थी। जैसे कुछ विद्वानों का मानना है कि अकबर के समय केन्द्रीकृत तुर्की मंगोल परंपरा में संशोधन किया गया। इन सबके उपरांत भी राजा का जीवन नियमों से बंधा हुआ था और यह माना जाता था कि जनता की भलाई में ही राजा की भलाई है। कुरान में स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि प्रजा के कल्याण का पूरा उत्तरदायित्व राजा के कंधों पर है। केन्द्रीय प्रशासन के संचालन हेतु राजा के द्वारा निम्नांकित पदाधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी।

1. वकील या वजीर -

वकील संपूर्ण प्रशासन का पर्यवेक्षण करता था। इसे राजस्व और वित्त का अधिभार दिया गया था। यह भू-राजस्व का आकलन करता था और उसकी वसूली का निरीक्षण करता था। वह इससे संबंधित हिसाब की जांच भी करता था।

2. दीवाने-आला या दीवाने-कुल:-

दीवाने आला वित्तीय शक्तियां रखता था। इसे राजस्व और वित्त का अधिभार दिया गया था। यह भू-राजस्व का आकलन करता था और उसकी वसूली का निरीक्षण करता था। वह इससे संबंधित हिसाब की जांच भी करता था।

3. मीर बख्शी:-

यह साम्राज्य का सर्वोच्च भुगतान अधिकारी होता था क्योंकि मुगलकाल में मनसबदारी प्रथा प्रचलित थी तथा सैनिक एवं असैनिक सेवाओं का एकीकरण किया गया था। इसलिए यह साम्राज्य के सभी अधिकारियों को भुगतान करता था। यह मनसबदारों की नियुक्ति की सिफारिश करता था और उनके लिए जागीर की अनुशंसा करता था।

4. दीवाने-शामा/खान-ए-शामा:-

यह राजकीय कारखानों का निरीक्षण करता था तथा राजकीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उन कारखानों के उत्पादन को नियंत्रित करता था।

5. सद्र-उस-सूद्र:-

यह बादशाह का मुख्य धार्मिक परामर्शदाता होता था। यह धार्मिक अनुदानों को नियंत्रित करता था। साथ ही यह धार्मिक मामलों से संबंधित मुकदमों में भी देखता था।

6. मुख्य काजी:-

यह न्याय विभाग का प्रधान होता था।

7. मुहत्सिब:-

यह जनता के नैतिक आचरण का निरीक्षण करता था और देखता था कि शरीयत के अनुसार कार्य हो रहा है या नहीं साथ ही यह माप तौल का निरीक्षण भी करता था।

उपरोक्त 7 अधिकारियों के अतिरिक्त केन्द्रीय प्रशासन में कुछ छोटे छोटे पद भी होते थे, जैसे- दरोगा-ए-तोपखाना, दरोगा-ए-डाकचौकी, मीर -माल (टकसाल प्रधान), मीर-बर् (वन अधीक्षक) आदि।

प्रांतीय प्रशासन

मुगल सम्राट बाबर ने अपने साम्राज्य का विभाजन जागीरों में किया था तथा उसके समय किसी प्रकार की प्रांतीय प्रशासनिक व्यवस्था विकसित नहीं हुई थी। सबसे पहले एकरूप प्रांतों का निर्माण अकबर के शासनकाल में हुआ। सन् 1580 में अकबर ने अपने साम्राज्य का विभाजन 12 प्रांतों में किया, जिसकी संख्या शाहजहाँ के काल तक 22 हो गई। अकबर की प्रशासनिक नीति प्रशासनिक एकरूपता तथा रोक और संतुलन के सिद्धांतों पर आधारित थी परिणामस्वरूप प्रांतीय प्रशासन का ही प्रतिरूप था।

प्रांतीय प्रशासन का प्रमुख सूबेदार/नजीम कहलाता था जिसकी नियुक्ति बादशाह करता था। आमतौर पर सूबेदार का कार्यकाल 3 वर्ष का होता था। नजीम की सहायता हेतु कुछ अन्य अधिकारी भी होते थे। प्रांतीय दीवान की नियुक्ति केंद्रीय दीवान की अनुशंसा पर बादशाह करता था। प्रांतीय दीवान, नजीम के बराबर का अधिकारी होता था और कभी-कभी श्रेष्ठ अमीर को भी दीवान का पद दे दिया जाता था। इसी तरह प्रांतीय बखशी की नियुक्ति केंद्रीय बखशी की अनुशंसा पर होती थी और प्रांतीय बखशी सुरक्षा से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण बातें नजीम को बताए बिना केंद्रीय बखशी तक प्रेषित कर देता था। अकबर ने केंद्रीय सद्र शक्ति को कम करने के लिए प्रांतीय सद्र को नियुक्त करना शुरू किया। अब प्रांतीय सद्र के परामर्श से भी धार्मिक बातों का निर्णय लिया जा सकता था। इनके अतिरिक्त प्रांतीय स्तर पर काजी भी होता था।

स्थानीय प्रशासन

प्रांतों के विभाजन सरकार में होता था। सरकार से जुड़े हुए अधिकारी थे फौजदार, अमालगुजार, खजानदार आदि। फौजदार शांति व्यवस्था की देखरेख करता था और अमालगुजार भू-राजस्व से जुड़ा अधिकारी था। खजानदार सरकार के खजाने का संरक्षक होता था। कभी-कभी एक सरकार में

कई फौजदार होते थे और कभी-कभी दो सरकारों पर एक फौजदार भी होता था। सरकार का विभाजन परगनों में होता था। परगनों से जुड़े अधिकारी सिकदार, आमिल, पोतदार, कानूनगों आदि थे। सिकदार शान्ति व्यवस्था का संरक्षक होता था और भू-राजस्व संग्रह में आमिल की सहायता करता था। आमिल भू-राजस्व प्रशासन से जुड़ा अधिकारी था। पोतदार, खजांची को कहा जाता था तथा कानूनगों गांव के पटवारियों का मुखिया होता था और स्वयं कृष्य भूमि का पर्यवेक्षण करता था। सबसे नीचे ग्राम होता था जिससे जुड़े अधिकारी मुकद्दम और पटवारी थे। मुगलकाल में ग्राम पंचायत की व्यवस्था थी। इस विभाजन के अतिरिक्त नगरों में कानून व्यवस्था की देखरेख के लिए कोतवाल की नियुक्ति होती थी। अबुल फजल के आइने-अकबरी में कोतवाल के कार्यों का विवरण दिया गया है। इसी तरह प्रत्येक किले पर किलेदार की नियुक्ति होती थी।

इस प्रकार मुगल प्रशासन केंद्रीय प्रशासन से लेकर गांव तक श्रृंखलाबद्ध था लेकिन कुछ इतिहासकार जिनमें इरफान हबीब और आर्थर अली महत्वपूर्ण हैं मुगल प्रशासनिक ढांचे को अतिकेन्द्रीकृत मानते हैं।

मनसबदारी व्यवस्था:-

अकबर के द्वारा स्थापित की गई मनसबदारी पद्धति मौलिक रूप से एक प्रशासनिक सामरिक उपकरण थी जिनका उद्देश्य अमीरों एवं सेना का एक सक्षम संगठन स्थापित करता था। वस्तुतः मनसबदारी पद्धति की व्याख्या केंद्रीकृत रातनैतिक ढांचे के परिप्रेक्ष्य में की जा सकती है। इसके साथ साम्राज्य की शक्ति को एक चैनल में बांध दिया गया और अमीर वर्ग सेना तथा नोकरशाही तीनों को जोड़ दिया गया।

मुगल साम्राज्य के सभी पंजीकृत अधिकारियों को एक मनसब प्रदान किया गया, जो जोड़े के अंक में प्रस्तुत किया जाता था। प्रथम, संबधित अधिकारी के जात रैंक का बोध होता था तथा दूसरे उसके सवार रैंक का बोध कराता था। जात रैंक किसी भी अधिकारी का विभिन्न अधिकारियों के पदानुक्रम में पद और स्थान को निर्धारित करता था। दूसरी तरफ सवार रैंक उसके सैनिक उत्तरदायित्व को रेखांकित करता था। सैद्धांतिक रूप से मनसब के कुल 66 ग्रेड होते थे। निम्नतम 10 और उच्चतम 10 हजार होता था किन्तु व्यावहारिक रूप में केवल 33 ग्रेड ही प्रचलित थे। पांच हजार से अधिक रैंक सामान्यतः राजकीय व्यक्ति को ही प्रदान किए जाते थे किंतु यह प्रतिष्ठा कुछ राजपूत योद्धाओं को भी प्राप्त हुई।

जागीरदारी प्रथा:-

वस्तुतः जागीरदारी पद्धति की स्थापना के पीछे साम्राज्य का एक व्यापक उद्देश्य था जिसके द्वारा उन राजपूत जमींदारों से भू-राजस्व संग्रह करना संभव हो गया, जो सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली थे और जाति, गोत्र के आधार पर विभाजित थे। अकबर मनसबदारों का वेतन नकद में देना चाहता था किन्तु

उस समय के कुलीन वर्ग को भू-संपत्ति से जबर्दस्त आकर्षण था। इसलिए जागीरदारी प्रथा के अंतर्गत कुछ अधिकारियों को जागीर में वेतन दिया जाता था।

दिल्ली सल्तनत काल में इक्तादारी पद्धति प्रचलित थी और इक्ता के मालिक इक्तादार कहे जाते थे। इक्तादारी पद्धति भी कृषकों से अधिशेष प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण जरिया था किन्तु इक्ता और जागीर में एक महत्वपूर्ण अंतर यह था कि इक्ता में भूमि का आबंटन होता था जबकि जागीर में भू-राजस्व का आबंटन होता था। जागीरदारी व्यवस्था और इक्तादारी व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण अंतर यह भी था कि जागीरदारों को केवल भू-राजस्व की वसूली का अधिकार दिया गया था संबंधित क्षेत्र के प्रशासन का नहीं, जागीरदार को राजकीय नियमों के अनुरूप केवल प्राधिकृत राजस्व वसूलने का अधिकार था तथा प्रशासनिक कार्यों के लिए राज्य जिम्मेदार था। यदि भू-राजस्व की वसूली में किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित होता, तो जागीरदार उस क्षेत्र के फौजदार से सैनिक सहायता भी प्राप्त कर सकता था। जागीरदारी व्यवस्था के द्वारा प्रशासनिक केन्द्रीकरण का प्रयास हुआ था और नौकरशाही को ग्रामीण समुदाय पर आरोपित कर दिया गया था।

1.3.3 ब्रिटिश प्रशासन

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन के साथ ब्रिटिश प्रशासन के बीज पड़े। सन् 1600 में एक व्यापारिक कंपनी के रूप में ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में आगमन हुआ, किन्तु देखते ही देखते यह कंपनी और इसके माध्यम से ब्रिटिश संसद का भारत पर साम्राज्य स्थापित हो गया। प्रारंभ में कंपनी का उद्देश्य व्यापार करना था और बंबई, कलकत्ता तथा मद्रास के बंदरगाहों से होकर शेष भारत से इसका संपर्क रहता था। धीरे धीरे कंपनी की प्रादेशिक महत्वकांक्षा प्रबल होती गई और शीघ्र ही वह भारत में एक प्रमुख यूरोपीय शक्ति बन गई। यही कंपनी आगे चलकर मुगल शासन की उत्तराधिकारी बनी। प्लासी और बक्सर के युद्ध के बाद भारत में कंपनी की साम्राज्यीय महत्वकांक्षाएं प्रबल हुईं और 1765 की इलाहाबाद की संधि के द्वारा कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अधिकार प्राप्त हुए, परिणामस्वरूप द्वैध शासन की शुरुआत हुई, जहां कि राजस्व संग्रहण का कार्य ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार में था, लेकिन सामान्य प्रशासन की जिम्मेदारी संबंधित प्रांत में मुगल प्रशासन द्वारा नियुक्त नवाब के जिम्मे होती थी। इस प्रकार कर्तव्य नवाब के पास थे लेकिन शक्तियां कंपनी के पास। यद्यपि नवाब की नियुक्ति में भी कंपनी का हस्तक्षेप होता था और उप नवाब की नियुक्ति का अधिकार तो कंपनी के पास ही था। इस प्रकार सारी शक्तियां कंपनी के हाथ में केन्द्रीत हो गई, लेकिन कर्तव्य और उत्तरदायित्व नहीं, परिणामस्वरूप द्वैध शासन की वजह से अकाल, अव्यवस्था जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ा।

कंपनी के शासन की शुरुआत होने और उसकी शक्तियों में वृद्धि होने के साथ-साथ ब्रिटिश संसद का भी भारतीय प्रशासन संबंधी मामलों में कंपनी के माध्यम से अप्रत्यक्ष नियंत्रण प्रारंभ हुआ, जो

कि 1857 की क्रांति के बाद कंपनी शासन की समाप्ति और भारत में प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन की स्थापना में परिणत हो गया।

ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन की स्थापना के बाद ब्रिटिश संसद ने समय समय पर विभिन्न अधिनियम पारित करके कंपनी के शासन पर नियंत्रण करने का प्रयास किया, जिनकी संक्षिप्त चर्चा निम्नांकित रूप में की जा सकती है-

केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद का विकास

1. 1773 से 1858 तक प्रशासनिक व्यवस्था - भारतीय संवैधानिक तथा प्रशासनिक व्यवस्था के विकास में 1773 के रेग्यूलेटिंग एक्ट का विशेष महत्व है। सरकार ने कंपनी के आर्थिक, प्रशासनिक एवं सैनिक कार्यों पर संसद के आंशिक नियंत्रण के लिए यह अधिनियम पारित किया था। इस अधिनियम के द्वारा बंगाल के गवर्नर को कंपनी के भारतीय प्रदेशों का गवर्नर जनरल बनाया गया तथा इसकी सहायता के लिए 4 सदस्यों की एक परिषद की स्थापना की गई इस कानून में बंबई और मद्रास के प्रेसीडेंसी को कलकत्ता प्रेसीडेंसी बंगाल के अधीन कर दिया गया। साथ ही भारतीय मामलों में संसद का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप आरंभ हुआ। परिणामस्वरूप इस कानून से भारत में प्रशासन के केन्द्रीकरण का कार्य शुरू हुआ।

1784 में पिट्स इंडिया एक्ट के माध्यम से गवर्नर जनरल की कौंसिल में सदस्यों की संख्या 4 से घटाकर 3 कर दी गई। साथ ही मद्रास तथा बंबई प्रेसीडेंसियों पर गवर्नर जनरल के निरीक्षण एवं नियंत्रण के अधिकार अधिक स्पष्ट कर दिए गए। इस अधिनियम का उद्देश्य कंपनी पर ब्रिटिश क्राउन का नियंत्रण बढ़ाना था। अतः ब्रिटेन में 6 सदस्यों के बोर्ड ऑफ कंट्रोल की स्थापना की गई। 1786 के अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल को परिषद से अधिक शक्तियां प्रदान की गईं और उसे मुख्य सेनापति बनाया गया।

1793 के अधिनियम से गवर्नर जनरल को अपनी कौंसिल की अनुशंसा को रद्द करने का अधिकार दिया गया। 1813 के चार्टर एक्ट द्वारा भारत में ब्रिटिश कंपनी का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त कर दिया गया, लेकिन भू-राजस्व प्रशासन एवं भारतीय प्रशासन का कार्य कंपनी के अधीन रहने दिया गया। 1833 के चार्टर अधिनियम से बंगाल का गवर्नर भारत का गवर्नर जनरल कहलाने लगा। बंबई एवं मद्रास प्रेसीडेंसी को पूर्णतः बंगाल के अधीन कर दिया गया। संपूर्ण भारत के लिए विधि निर्माण का एकाधिकार गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद को प्रदान किया गया तथा बंबई और मद्रास प्रेसीडेंसी से विधिनिर्माणके अधिकार छीन लिए गए। अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल की काउंसिल में एक चौथा सदस्य फिर से जोड़ा गया, जिसे विधि सदस्य का नाम दिया गया। इस प्रकार इस अधिनियम से भारत में केन्द्रीकृत प्रशासन की स्थापना हुई।

2. 1858 से 1919 तक-1858 के अधिनियम द्वारा भारत पर ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के स्थान पर ब्रिटिश संसद के शासन की स्थापना हुई। भारत सचिव के पद का सृजन किया गया। तथा समस्त संवैधानिक, प्रशासनिक तथा वित्तीय शक्तियां भारत सचिव तथा उसकी 15 सदस्यीय परिषद में केंद्रित हो गई। भारत में सत्ता का केंद्रीकरण गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद में निहित हो गया। गवर्नर जनरल को वायसराय कहा जाने लगा।

1861 के अधिनियम द्वारा भारतीय प्रशासन में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। पहली बार प्रांतीय विधायिकाओं की स्थापना हुई। यद्यपि इनके कई अधिकार सीमित थे। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद तथा विधायिका का पुनर्गठन किया गया। अधिनियम की व्यवस्था द्वारा कार्यकारिणी के महत्व में कमी एवं गवर्नर जनरल के प्रभाव में वृद्धि हुई। गवर्नर जनरल को इस बात के लिए अधिकृत किया गया कि वह प्रशासनिक व्यवस्था हेतु विधि बनाए। कैनिंग के द्वारा **विभागीय व्यवस्था** की शुरूआत की गई। अधिनियम के द्वारा मद्रास और बंबई प्रेसीडेंसी को पुनः विधि निर्माण के अधिकार तथा अन्य प्रांतों में ऐसी ही विधायिकाओं की स्थापना की व्यवस्था करके विधि निर्माण में विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया की नींव पड़ी।

1892 के भारतीय परिषद अधिनियम के अंतर्गत विधायिकाओं की सदस्य संख्या और शक्ति में वृद्धि हुई तथा प्रतिनिधि संस्थाओं की सिफारिशों पर मनोनीत किया जाने लगा। 1909 के मार्ले-मिन्टो सुधारों द्वारा विधायिकाओं की सदस्य संख्या में वृद्धि हुई परंतु बहुमत सरकारी सदस्यों का ही बना रहा। अधिनियम में अप्रत्यक्ष चुनाव पद्धति को अपनाया गया अर्थात् केंद्रीय विधान परिषद में विभिन्न प्रांतों से सदस्य चुनकर आने थे। इस अधिनियम का सबसे बड़ा दोष पृथक निर्वाचन व्यवस्था थी।

1919 में मांटैग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार द्वारा वायसराय की कार्यकारिणी परिषद में भारतीयों को स्थान दिया गया। केन्द्रीय स्तर पर द्वि-सदनीय व्यवस्थापिका की स्थापना हुई। अधिनियम के द्वारा केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया गया। आरक्षित विषयों का प्रशासन गवर्नर को अपने पार्षदों की सहायता से करना था तथा हस्तांतरित विषयों का प्रशासन निर्वाचित मंत्रियों की सहायता से किया जाना था।

3. सन् 1919 से स्वतंत्रता तक प्रशासनिक व्यवस्था 1935 के भारत सरकार अधिनियम का भारत के संवैधानिक इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इस अधिनियम ने भारत में संघात्मक व्यवस्था का सूत्रपात किया। इस संघ का निर्माण ब्रिटिश भारत के प्रांतों, देशों राज्यों और कमिश्नरी के प्रशासनिक क्षेत्र को मिलाकर किया जाना था। संघ स्तर पर द्वैध शासन प्रणाली को अपनाया गया और आंशिक उत्तरदायी शासन की स्थापना करने का प्रावधान किया गया। संघीय कार्यपालिका, संघीय

विधानमंडल तथा संघीय न्यायालय की स्थापना की गई। प्रांतों में प्रांतीय सरकार तथा प्रांतीय सरकार की कार्यपालिका शक्ति समस्त प्रांतीय विषयों तक स्थापित हो गई। प्रांतों से द्वैध शासन प्रणाली का अंत कर दिया गया, किंतु व्यवहार में गवर्नर की शक्ति अब भी बनी रही। गवर्नर की शक्तियों को तीन भागों में विभाजित किया गया-

1. स्वेच्छा से काम में आने वाली शक्तियां
2. व्यक्तिगत शक्तियां
3. विधायिका के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों की सलाह से काम में आने वाली शक्तियां

इस अधिनियम का सबसे विवादास्पद पहलू धारा 93 थी जिसके अनुसार गवर्नर विशेष परिस्थितियों में प्रांतीय प्रशासन को अपने नियंत्रण में ले सकता था। इसी शक्तियों का प्रयोग कर 1939 में विभिन्न प्रांतों में गवर्नर ने शासन कार्य अपने हाथ में ले लिया। भारतीय स्वतंत्रता तक इसी अधिनियम के अनुसार भारतीय प्रशासन का संचालन किया जाता रहा। स्वतंत्रता के बाद भारतीय प्रशासन स्वतंत्र भारत के संविधान द्वारा प्रारंभ हुआ।

केन्द्रीय सचिवालय का विकास

स्वतंत्र भारत में केन्द्रीय सचिवालय औपचारिक रूप से 30 जनवरी, 1948 को स्थापित हुआ, लेकिन मूल रूप से केन्द्रीय सचिवालय अन्य प्रशासनिक संस्थाओं की भांति ब्रिटिश शासनकाल की देन है। ब्रिटिश काल में इसे “इंपीरियल सेक्रेटारिएट” कहा जाता था। ब्रिटिश साम्राज्य के समय भारत में प्रशासनिक एकता स्थापित करने में केन्द्रीय सचिवालय की विशेष भूमिका थी। समय के परिवर्तन के साथ जैसे जैसे सरकार का कार्यभार बढ़ता गया, विभागों की संख्या भी बढ़ती गई। 1919 से 1947 तक का काल केन्द्रीय सचिवालय में विभिन्नसुधारों के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण रहा। सन् 1919 की लिविलियन स्मिथ कमेटी के सुझाव पर -

1. विभागीय विषयों को पुनर्गठित किया गया।
2. लिखित आलेखों की प्रथा प्रारंभ की गई।
3. केन्द्रीकृत भर्ती की व्यवस्था आरंभ हुई
4. सचिवालय में प्रतिनियुक्ति व्यवस्था को सुदृढ़ किया गया।

1919 में पुनर्गठित सचिवालय में कुल 11 विभाग थे।

सन् 1936-37 में नियुक्त होने वाली व्हीलर समिति और मैक्सवेल समिति (संगठन तथा प्रक्रिया समिति) ने केन्द्रीय सचिवालय के संगठन और कार्य पद्धति में सुधार हेतु और भी सुझाव प्रस्तुत किए। आजादी के उपरांत गठित सरकार को कुछ ऐसी विशेष समस्याओं का सामना करना पड़ा, जिनके परिणामस्वरूप केन्द्रीय सचिवालय का कार्यभार अत्यधिक हो गया। ये समस्याएं निम्नांकित थी - -

1. देश का विभाजन होने के कारण पाकिस्तान से आए शरणार्थियों को भारत में बसाना
2. जम्मू-कश्मीर में बाह्य आक्रमण की समस्या
3. रियासतों का भारतीय संघ में एकीकरण
4. आंतरिक सुरक्षा की समस्या
5. आवश्यक वस्तुओं के अभाव की समस्या
6. प्रशासनिक अधिकारियों की संख्या में भारी मात्रा में कमी

कल्याणकारी राज्य की स्थापना से प्रेरित होने के कारण भी सरकार के कार्यभार में अत्यधिक मात्रा में बढ़ोत्तरी हुई, परिणामस्वरूप केन्द्रीय सचिवालय का कार्यभार बढ़ा 15 अगस्त, 1947 को जब सत्ता का हस्तांतरण हुआ तो केन्द्रीय सचिवालय में 19 विभाग थे जिनका फिर से पुनर्गठन एवं सुधार करने के लिए स्वतंत्र भारत की सरकार ने सर गिरिजा शंकर बाजपेयी की अध्यक्षता में सचिवालय पुनर्गठन समिति की स्थापना की। कालांतर में विभागों की संख्या बढ़ी जैसे 1978 में 69 विभाग और 2001 में 81 विभाग।

वित्तीय प्रशासन का विकास

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासक स्थापित होने के बाद प्रांतों को वित्त के संबंध में बहुत अधिक सीमा तक स्वतंत्रता दी गई, किन्तु 1833 के चार्टर अधिनियम के द्वारा वित्त का केन्द्रीकरण कर दिया गया। अधिनियम के द्वारा यह निश्चित किया गया कि किसी प्रांतीय सरकार को नए पद तथा नए वेतन भत्ते की स्वीकृति का अधिकार नहीं होगा, जब तक कि गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति न मिल जाए।

1833-1870 तक प्रांतीय सरकारें केन्द्र सरकार के अभिकर्ता के रूप में ही कार्य करती रहीं उन्हें कर लगाने अथवा उसे खर्च करने का कोई अधिकार नहीं था। सर्वप्रथम 1870 में वित्तीय विकेन्द्रीकरण की दिशा में लार्ड मेयो की सरकार द्वारा एक निश्चित योजना को अपनाया गया।

1. जिसके अंतर्गत जेलें, रजिस्ट्रेशन, पुलिस, शिक्षा, सड़कें, चिकित्सा सेवाएँ, छपाई आदि के व्यय की मदों तथा उनसे प्राप्त होने वाले राजस्व को प्रांतीय सरकारों के नियंत्रण में हस्तांतरित कर दिया गया।

2. प्रांतों को कुछ निश्चित वार्षिक अनुदान देने की व्यवस्था की गई।

1877 में स्ट्रेची द्वारा प्रस्तावित नवीन योजना के अंतर्गत भूमि कर, स्थानीय चुंगी, स्टाम्प, स्टेशनरी, कानून व न्याय और सामान्य प्रशासन की कुछ व्यय मदें प्रांतीय सरकारों के नियंत्रण में हस्तांतरित कर दी गई। वित्तीय विकेन्द्रीकरण की दिशा में 1882 में प्रस्तावित नई योजना के अनुसार राजस्व के समस्त साधनों को तीन भागों में विभक्त किया गया। केन्द्रीय, प्रांतीय व विभाजित

केन्द्रीय मदों से प्राप्त होने वाले राजस्व को केन्द्रीय नियंत्रण में तथा प्रांतीय राजस्व को प्रांतीय नियंत्रण में रखा गया। विभाजित मदों से प्राप्त होने वाली आय को केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों के बीच बराबर बराबर बांटने का निश्चय किया गया। विकेन्द्रीकरण के संबंध में 1907 में चार्ल्स होब हाऊस की अध्यक्षता में एक शाही आयोग नियुक्त किया गया। आयोग ने सिफारिश की, कि गवर्नर जनरल को प्रांतीय राजस्व में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। 1919 के अधिनियम द्वारा प्रांतीय बजट केन्द्र सरकार से बिल्कुल पृथक कर दिए गए और प्रांतीय सरकारों को अपने बजट के निर्माण का पूर्ण अधिकार दिया गया। प्रांतों को पहली बार प्रांतीय या स्थानीय प्रकृति के कर लगाने का अधिकार मिला। 1935 के अधिनियम द्वारा प्रांतीय स्वायत्तता की व्यवस्था की गई और संघीय सरकार तथा प्रांतों के बीच तीन सूचियों के आधार पर न केवल कार्यों का वर्गीकरण किया गया, बल्कि वित्तीय साधनों का भी विभाजन किया गया। संघ सरकार तथा राज्यों के पृथक पृथक आय साधन रखे गए। कुछ सीमा में प्रांतों को उधार लेने का अधिकार भी दिया गया। प्रांतों को अपना घाटा पूरा करने के लिए केन्द्र सरकार की ओर से निमेयर रिपोर्ट के अनुसार वित्तीय सहायता प्रदान की गई। निमेयर रिपोर्ट की इस बात को स्वीकार कर लिया गया, कि आयकर की भी आधी धनराशि प्रांतों में बांट दी जाए।

पुलिस प्रशासन का विकास

मुगल साम्राज्य के विघटन के उपरांत भारत में कानून-व्यवस्था की स्थिति बिगड़ती गई। पुलिस शक्ति क्षेत्रीय जमींदारों के हाथ आ गई। जब क्लाइव ने बंगाल की दीवानी प्राप्त की तो उसने प्रचलित प्रशासनिक व्यवस्था को बनाए रखा। वारेन हेस्टिंग्स ने भी पुलिस व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं दिया। सर्वप्रथम कार्नवालिस ने एक संगठित पुलिस व्यवस्था की शुरुआत की। उसने थाना व्यवस्था का आधुनिकरण किया तथा प्रत्येक क्षेत्र में एक पुलिस थाने की स्थापना कर उसे एक दरोगा के अधीन रखा। जिला स्तर पर जिला पुलिस अधीक्षक के पद का सृजन किया गया। ग्राम स्तर पर चौकीदारों को पुलिस शक्ति दी गई। इस तरह आधुनिक पुलिस व्यवस्था की शुरुआत हुई।

सक्षम पुलिस व्यवस्था ने बहुत सारे उद्देश्य पूरे किए। मध्य भारत में ठगों का दमन, क्रांतिकारी षड्यंत्रों का पर्दाफाश तथा राष्ट्रीय आंदोलन को इसी पुलिस व्यवस्था के द्वारा कुचला गया। इसने भारतीय जनता के साथ क्रूर व्यवहार भी किया। 1813 ईस्वी में संसद की एक समिति ने रिपोर्ट दी कि पुलिस ने भारतीय जनता को डाकुओं की तरह प्रताड़ित किया है। वस्तुतः महत्वपूर्ण पदों पर भारतीयों की नियुक्ति के मामले में ब्रिटिश कंपनी सतर्क रही। कार्नवालिस ने तो स्पष्ट रूप से भारतीयों को भ्रष्ट मान लिया एवं उन्हें उत्तरदायी पदों से दूर रखा। कुछ छोटे-छोटे पदों पर भारतीयों की नियुक्ति अवश्य की गई, जैसे- अमीन एवं दरोगा। 1793 ईस्वी के बाद आधिकारिक नीति भारतीयों को महत्वपूर्ण पदों से वंचित करने की रही।

न्याय व्यवस्था का विकास

मुगल साम्राज्य के विघटन के बाद मुगलकालीन न्याय व्यवस्था टूट गई। मुगलकाल के उत्तरार्द्ध में भूमि सुपुर्दगी प्रथा से समृद्ध भू-स्वामियों के हाथों में आ गई। न्यायिक शक्तियां भी भू-स्वामियों के हाथों में आ गई। बंगाल की दीवानी प्राप्त करने के बाद क्लाइव ने प्रचलित व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। न्याय व्यवस्था में सुधार की दृष्टि से वारेन हेस्टिंग्स का काल महत्वपूर्ण है। भारत में ब्रिटिश न्याय प्रणाली की स्थापना इसी काल में हुई ब्रिटिश न्याय प्रशासन भारतीय और ब्रिटिश प्रणालियों तथा संस्थाओं का सम्मिश्रण था। कानून के शासन तथा न्याय पालिका की स्वतंत्रता इस प्रणाली की विशेषता थी। वारेन हेस्टिंग्स ने सिविल तथा फौजदारी मामलों के लिए अलग-अलग अदालतें स्थापित की। उसने न्यायिक सुधार में मुगल व्यवस्था को ही आधार बनाया।

सर्वप्रथम वारेन हेस्टिंग्स ने सिविल अदालतों की श्रृंखला स्थापित की। सबसे नीचे मुखिया, फिर जिले में जिला दीवानी अदालत तथा सबसे ऊपर कलकत्ता की सदर दीवानी अदालत थी। इसी तरह फौजदारी अदालतों का पुनर्गठन किया गया। प्रत्येक जिले में एक फौजदारी अदालत स्थापित की गई, जो काजी, मुफ्ती एवं मौलवी के अधीन होती थी। इसके ऊपर कलकत्ता की सदर दीवानी अदालत थी।

कार्नवालिस के द्वारा उपरोक्त व्यवस्था में सुधार किए गए। उसके सुधारों में यूरोपीय तत्व प्रबल थे। कार्नवालिस ने शक्ति पृथक्करण सिद्धांत के अंतर्गत लगान प्रबंध से दीवानी प्रशासन को पृथक् कर दिया। 1793 में कार्नवालिस संहिता द्वारा कलेक्टर से न्यायिक एवं फौजदारी शक्तियां लेली गई। जिला अदालतों के लिए श्रेणी निर्धारित की गई तथा दीवानी अदालतों का पुनर्गठन हुआ। फौजदारी अदालतों की भी नई श्रृंखला बनाई गई। इसके अतिरिक्त विचारधारा से प्रेरित होने के कारण दंड-संहिता में परिवर्तन किया। विलियम बैटिक के शासनकाल में उपयोगितावादी विचार धारा से प्रेरित होने के कारण दंड विधान की कठोरता को कम करने का प्रयत्न किया गया। कुछ महत्वपूर्ण न्यायिक पदों पर भारतीयों को नियुक्त किया गया। 1859 से 1861 के बीच दंड विधि, सिविल कार्य विधि तथा दंड प्रक्रिया पारित की गई। इन सुधारों में संपूर्ण भारत के लिए एक ही विधि प्रणाली लागू की गई। 1861 में भारतीय उच्च न्यायालय अधिनियम पारित हुआ तथा कलकत्ता एवं मद्रास में उच्च न्यायालय की स्थापना की गई। आगे लाहौर, पटना आदि स्थानों पर भी उच्च न्यायालय स्थापित हुए।

1935 के भारत शासन अधिनियम के आधार पर एक संघीय न्यायालय की स्थापना की गई। इस न्यायालय में एक प्रधान न्यायाधीश तथा सरकार द्वारा नियुक्त अन्य न्यायाधीश होते थे। न्यायालय के क्षेत्र में प्रारंभिक एवं अपीलीय तथा परामर्श संबंधी विषय थे। प्रांतीय न्यायालयों को दीवानी, आपराधिक, वसीयती, गैर वसीयती और वैवाहिक क्षेत्राधिकार मौलिक एवं अपीलीय दोनों प्रकार के प्राप्त थे।

अभ्यास प्रश्न -

1. रेग्यूलेटिंग एक्ट कब पारित हुआ।
2. पिट्स इंडिया एक्ट कब पारित हुआ।
3. सन् में ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में आगमन हुआ।
4. 1919 के अधिनियम को किस नाम जाना जाता है।
5. केन्द्रीय स्तर पर द्विसदनीय व्यवस्थापिका की स्थापना किस अधिनियम से हुई।
6. अशोक ने किस शिलालेख में घोषणा की “कि सारी प्रजा मेरी संतान है”।
7. अर्थशास्त्र के लेखक कौन है ?
8. मेगस्थनीज की पुस्तक का क्या नाम है ?

1.4 सारांश

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन के पश्चात आप यह जानने और समझने में सक्षम हो गये होंगे कि किस प्रकार से भारतीय प्रशासन प्राचीन मौर्य काल से अपनी विकास की यात्रा शुरू करके मुगल काल से होते हुए ब्रिटिश काल तक की यात्रा पूर्ण की है। इस अध्ययन में आप ने यह देखा कि मौर्य साम्राज्य का स्वरूप राजतंत्रात्मक था जिसमें शासन का प्रधान राजा होता था। राजपद एक महत्वपूर्ण पद होगया और इस पद की शक्ति एवं अधिकार बढ़ गए। राजा, राज्य का प्रमुख होता था। जिसके पास कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका के अधिकारों के साथ वित्तीय शक्तियां भी थी। राजा की खुशी प्रजा की खुशी पर निर्भर करती थी। जनकल्याण पर राजा का कल्याण आश्रित था। राज्य में रहने वाले लोगों के हितों का संपादन ही राजा का प्रमुख कर्तव्य था। प्रशासन के शीर्ष पर बादशाह होता था। वह सभी प्रकार के सैनिक एवं असैनिक मामलों का प्रधान होता है था। बादशाह मुगल साम्राज्य के प्रशासन की धुरी था बादशाह की उपाधि धारण करता था, जिसका आशय था कि राजा अन्य किसी भी सत्ता के अधीन नहीं है। वह समस्त धार्मिक तथा धर्मोत्तर मामलों में अंतिम निर्णायक व अंतिम सत्ताधिकारी है। वह सेना, राजनीतिक, न्याय आदि का सर्वोच्च पदाधिकार है। वह संपूर्ण सत्ता का केन्द्र है तथा खुदा का प्रतिनिधि है। इसके बाद भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन के साथ ब्रिटिश प्रशासन के बीज पड़े। सन् 1600 में एक व्यापारिक कंपनी के रूप में ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में आगमन हुआ, किन्तु देखते ही देखते यह कंपनी और इसके माध्यम से ब्रिटिश संसद का भारत पर साम्राज्य स्थापित हो गया। ब्रिटिश साम्राज्य का भारतीय प्रशासन के विविध पक्षों पर व्यापक प्रभाव पडा।

1.5 शब्दावली

राजतंत्र -राजतंत्र वह शासन है जिसमें शासन का प्रधान राजा होता है। राजा, राज्य का प्रमुख होता था। जिसके पास कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका के अधिकारों के साथ वित्तीय शक्तियां निहित हों।

सद्र-उस-सूद्र -यह बादशाह का मुख्य धार्मिक परामर्शदाता होता था। यह धार्मिक अनुदानों को नियंत्रित करता था। साथ ही यह धार्मिक मामलों से संबंधित मुकदमों भी देखता था।

मुख्य काजी - मुगल काल में यह न्याय विभाग का प्रधान होता था।

जागीरदारी प्रथा - मुगल काल में राजपूत जमींदारों के माध्यम से भू- राजस्व संग्रह करने की प्रथा, जो सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली थे और जाति, गोत्र के आधार पर विभाजित थे। अकबर मनसबदारों का वेतन नकद में देना चाहता था किन्तु उस समय के कुलीन वर्ग को भू-संपत्ति से जबर्दस्त आकर्षण था। इसलिए जागीरदारी प्रथा के अंतर्गत कुछ अधिकारियों को जागीर में वेतन दिया जाता था।

इक्तादारी और जागीरदारी प्रथा - दिल्ली सल्तनत काल में इक्तादारी पद्धति प्रचलित थी और इक्ता के मालिक इक्तादार कहे जाते थे। इक्तादारी पद्धति भी कृषकों से अधिशेष प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण जरिया था किन्तु इक्ता और जागीर में एक महत्वपूर्ण अंतर यह था कि इक्ता में भूमि का आबंटन होता था जबकि जागीर में भू-राजस्व का आबंटन होता था। जागीरदारी व्यवस्था और इक्तादारी व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण अंतर यह भी था कि जागीरदारों को केवल भू-राजस्व की वसूली का अधिकार दिया गया था संबंधित क्षेत्र के प्रशासन का नहीं

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.1773 2. 1784 3. 1600 4. मांटैग्यू-चेम्सफोर्ड 5. मांटैग्यू-चेम्सफोर्ड 6.धौली शिलालेख
7. कौटिल्य 8. इंडिका

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय संविधान	-	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन	-	बी.एल. फड़िया
भारतीय लोक प्रशासन	-	अवस्थी एवं अवस्थी

1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	डी.डी. बसु
भारतीय लोक प्रशासन	-	एस.सी. सिंहल

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश काल में भारतीय प्रशासन के विकास पर निबंध लिखिए।
2. मुगल प्रशासन, केन्द्रीय प्रशासन था। स्पष्ट कीजिए।
3. मौर्य प्रशासन में राजा पर कर्तव्य का अंकुश था। व्याख्या कीजिए।

इकाई 2 : भारतीय प्रशासन की विशेषताएँ

इकाई की संरचना

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तरदाई कारण
- 2.4 भारतीय प्रशासन की विशेषताएँ
 - 2.4.1 गतिशील प्रशासन
 - 2.4.2 विकास प्रशासन
 - 2.4.3 उत्तरदायी प्रशासन
 - 2.4.4 नौकरशाही एवं लालफीताशाही
 - 2.4.5 प्रशासन की तटस्थता
 - 2.4.6 सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ
 - 2.4.7 प्रशासन की बढ़ती हुई शक्तियाँ
 - 2.4.8 प्रशासन का लक्ष्य सामाजिक – आर्थिक न्याय
 - 2.4.9 समन्वित प्रशासन
- 2.5 सारांश
- 2.6 शब्दावली
- 2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इसके पहले इकाई १ के अध्ययन के पश्चात आप यह जानने और समझने में सक्षम हो गये होंगे कि किस प्रकार से भारतीय प्रशासन प्राचीन मौर्य काल से अपनी विकास की यात्रा शुरू करके मुगल काल से होते हुए ब्रिटिश काल तक की यात्रा पूर्ण की है। भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन के साथ ब्रिटिश प्रशासन के बीज पड़े। सन् 1600 में एक व्यापारिक कंपनी के रूप में ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में आगमन हुआ, किन्तु देखते ही देखते यह कंपनी और इसके माध्यम से ब्रिटिश संसद का भारत पर साम्राज्य स्थापित हो गया। ब्रिटिश साम्राज्य का भारतीय प्रशासन के विविध पक्षों पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

इस इकाई २ में हम भारतीय प्रशासन की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे, जिसमें हम स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तरदाई कारणों का अध्ययन करते हुए संसदीय लोकतंत्र, संघात्मक शासन, स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन की बदलती प्रकृति (प्रशासन के लक्ष्यों और उद्देश्यों में परिवर्तन) का अध्ययन करेंगे। साथ ही यह भी देखेंगे कि किस प्रकार भारतीय संविधान, समाजवादी और पंथनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करता है। और अंततः हम यह अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार भारतीय प्रशासन, गतिशील प्रशासन है, विकास प्रशासन है, उत्तरदायी प्रशासन है और राजनीतिक उथल-पुथल से अपने को अलग रखते हुए सामाजिक-आर्थिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समन्वित रूप से कार्य कर रहा है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हम

1. स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तरदाई कारणों को जान सकेंगे।
2. भारतीय प्रशासन की विशेषताओं को जान सकेंगे।
3. संसदीय लोकतंत्र की स्थापना के उद्देश्यों को जान सकेंगे।
4. संघात्मक शासन और उसकी स्थापना के कारणों को जान सकेंगे।

2.3 स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तरदाई कारण

जैसाकि हम जानते है कि 15 अगस्त 1947 को हमारे देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। देश को आजादी मिलाने के साथ ही उन सपनों को साकार करने के लिए भी प्रयास शुरू किये जाने लगे ,जिनको लक्ष्य मानकर आजादी के दीवानों ने संघर्ष किया था। लेकिन उन सपनों को साकार करने के लिए यह आवश्यक था कि ,उसके अनुरूप प्रशासनिक तंत्र का निर्माण किया जाए साथ ही साथ इस नवनिर्मित प्रशासनिक तंत्र के लक्ष्य भी स्पष्ट किये जाए। स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई कारण उत्तरदाई थे जो निम्नलिखित हैं –

१.संसदीय लोकतंत्र की स्थापना --

स्वतंत्रता के पश्चात देश में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गई। आजादी के पूर्व कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं थी, वह केवल ब्रिटिश आकाओं के प्रति ही उत्तरदायी थी। परन्तु संसदीय लोकतंत्र की स्थापना के साथ ही कार्यपालिका को विधायिका के प्रति उत्तरदायी बनाया गया। कार्यपालिका का अर्थ मंत्रिमंडल से है ,जबकि विधायिका का तात्पर्य कानून निर्माण करने वाली संस्था संसद से है। कार्यपालिका का गठन संसद के सदस्यों में से किया जाता है और कार्यपालिका के गठन का अवसर उस दल को मिलता है जिसे संसद के निम्न सदन में बहुमत प्राप्त होता है। संसद के निम्न सदन में जनप्रतिनिधि होते हैं जो जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुनकर आते है। इस प्रकार से स्पष्ट होता है कि कार्यपालिका अपने अस्तित्व के लिए जनप्रतिनिधियों के बहुमत के साथ समर्थन पर निर्भर करती है ,और ये जनप्रतिनिधि जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इस प्रकार अब प्रशासन ,ब्रिटिश शासन के विपरीत ,जनता के प्रति उत्तरदायी है।

२.संघात्मक शासन की स्थापना

ब्रिटिश शासन के समय हमारे देश में एकात्मक शासन था जिसमे एक केंद्र से शासन संचालित किया जाता था। जब कि हमारे देश में भौगोलिक ,सामाजिक और सांस्कृतिक भिन्नताये पाई जाती है ,इन भिन्नताओं के साथ इनकी समस्याएँ भी भिन्न प्रकृति की होती हैं ,इस लिये इनका स्थानीय स्तर पर बेहतर समाधान किया जा सकता है। इस लिए शक्ति विभाजन के सिद्धांत के आधार संघात्मक शासन की स्थापना की गई। जो ,सामाजिक और सांस्कृतिक भिन्नताओं को बनाए रखने के साथ ही उनकी समस्याओं के स्थानीय स्तर पर समाधान संभव हो सका।

३.प्रशासन की प्रकृति में परिवर्तन (प्रशासन के लक्ष्यों और उद्देश्यों में परिवर्तन)

जैसा कि यह सर्वविदित है कि भारतीय संविधान में उन लक्ष्यों और उद्देश्यों का स्पष्ट प्रावधान किया गया है, जिनकी सिद्धि के लिए प्रशासन को कार्य करना है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि स्वतंत्रता के पहले हमारे देश का प्रशासन नियामकीय प्रकृति का था, दूसरे शब्दों में प्रशासन के कार्य मुख्यतः नियामकीय थे अर्थात् प्रशासन का मुख्य कार्य कानून और व्यवस्था बनाये रखना था। जिससे अंग्रेज शासन को अपने लक्ष्यों की सिद्धि में अनवरत सहूलियत बनी रहे।

परन्तु स्वतंत्रता के उपरान्त संविधान निर्माताओं ने, स्पष्ट रूप से उन लक्ष्यों का प्रावधान किया जिनको ध्यान में रखकर प्रशासन को संचालित किया जाना था। पहले प्रशासन जनता पर अपना दबाव बनाकर कार्य करता था, जनता के कोई मौलिक अधिकार नहीं थे, जनता का यह दायित्व था की प्रशासन के निर्देशों का पालन करता रहे। किन्तु आजादी के बाद अब प्रशासन जनता के लिए काम करता है क्यों कि जिसकी हम आप को ऊपर बता चुके हैं कि हमारे देश में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गयी। जिसमें सरकार जनता द्वारा निर्वाचित होती है और जनता के लिए काम करती है, इस लिए अब प्रशासन जनता के दबाव में काम करता है। संविधान के द्वारा मौलिक अधिकारों का प्रावधान किया गया। ये वे अधिकार हैं जो राज्य और व्यक्तियों के विरुद्ध प्रदान किये गए हैं। अर्थात् इन अधिकारों के उल्लंघन होने पर चाहे वे व्यक्ति के द्वारा हों या राज्य के द्वारा हों, व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अनुच्छेद ३२ के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद २२६ के तहत उच्च न्यायालय में जा सकता है।

इसी के साथ – साथ संविधान के भाग ४ में नीतिनिदेशक तत्वों का उपबंध भी करके राज्य को कुछ कल्याणकारी दायित्व भी सौंपे गए, जिनको लागू करने की जिम्मेदारी प्रशासन की है।

४. समाजवादी और पंथनिरपेक्ष राज्य – हमारे मूल संविधान में समाजवादी और पंथनिरपेक्ष शब्द का समावेश नहीं किया गया था। 42 वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा इनका समावेश संविधान में किया गया। इन शब्दों के समावेश से प्रशासन के लक्ष्यों में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया। इसको और अधिक स्पष्ट करने के ले इनके अर्थ को भी स्पष्ट करना आवश्यक है। समाजवाद का तात्पर्य है कि राज्य लोगों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने प्रयास करेगा। पंथनिरपेक्ष का अर्थ – राज्य का अपना कोई राजधर्म नहीं होगा, इसका तात्पर्य यह भी है कि राज्य सभी धर्मों के साथ समान वर्ताव करेगा, किसी के साथ किसी भी प्रकार का पक्षपातपूर्ण व्यवहार नहीं करेगा। यद्यपि इन शब्दोंके संविधान में समावेश के पूर्व भी ऐसे लक्ष्यों की पूर्ति के लिए प्रावधान थे। इन उपबंधों से प्रशासन की जिम्मेदारी में आमूलचूल परिवर्तन आया है।

2.4 भारतीय प्रशासन की विशेषताएँ

इस प्रकार से स्वतंत्रता के उपरांत भारतीय प्रशासन के उद्देश्यों और लक्ष्यों में अभूतपूर्व परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन के कारण भारतीय प्रशासन में निम्नलिखित विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं, जो इस प्रकार हैं ---

2.4.1 गतिशील प्रशासन

जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं कि आजादी के बाद प्रशासन के उद्देश्यों और लक्ष्यों में आमूलचूल परिवर्तन देखने को मिल रहा है। आज प्रशासन जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बन गया है। समय के बदलाव के साथ नित्य नई आवश्यकताएं और समस्याएं पैदा होती रहती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति और समस्याओं के समाधान हेतु प्रशासन को निरंतर तत्पर रहना होता है। और बदलती परिस्थितियों के अनुरूप अपने ढालते रहना है। क्योंकि अब प्रशासन जनता के स्वामी के रूप में नहीं वरन सेवक के रूप में कार्य कर रहा है।

2.4.2 विकास प्रशासन

विकास प्रशासन एक परिवर्तनशील अवधारणा है। जो निरंतर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को लाने के लिए प्रयत्नशील है, साथ ही इन परिवर्तनों को सकारात्मक दिशा देने का भी कार्य कर रहा है। इसका सम्बन्ध योजना के निर्माण, इसके निर्माण हेतु आवश्यक पूर्वआवश्यकताओं की पूर्ति से भी सम्बन्ध रखता है। विकास प्रशासन का सम्बन्ध नीतियों के कार्यान्वयन से है। इसलिए सरकार के जनकल्याणकारी और सशक्तिकरण संबंधी नीतियों के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी भी इसी पर होती है।

2.4.3 उत्तरदायी प्रशासन

संसदीय शासन की एक प्रमुख विशेषता, उत्तरदायी शासन की स्थापना है। चूँकि हमारे देश में संसदीय शासन में निम्न सदन (लोक सभा) के सदस्यों का चुनाव जनता के द्वारा, प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है। मंत्रिपरिषद का गठन संसद के सदस्यों में से ही किया जाता है। मंत्रिपरिषद के सदस्य सम्बंधित विभाग के अध्यक्ष (राजनीतिक प्रमुख) होते हैं। इस लिए अपने विभाग के कार्यों के लिए, वे जनता के प्रति उत्तरदायी होती हैं।

2.4.4 नौकरशाही एवं लालफीताशाही

हमारे देश में नौकरशाही का एक विस्तृत ढांचा विद्यमान है, जो नीति निर्माण में सहयोगी भूमिका से लेकर, नीति के क्रियान्वयन तक के कार्यों में सक्रिय रहती है। परन्तु यह नौकरशाही अपने दायित्वों के निर्वहन में नियम - कानून और प्रक्रिया पर ज्यादा जोर देती दिखायी देती है, जिससे ये नियम - कानून और प्रक्रिया पर ज्यादा जोर देना ही साध्य के रूप में दिखायी देने लगता है, जिससे लालफीताशाही का दोष प्रशासन में उभरकर सामने आता है।

2.4.5 प्रशासन की तटस्थता

भारतीय प्रशासन की एक और महत्वपूर्ण विशेषता इसकी राजनीतिक तटस्थता | अर्थात लोकसेवक अपने सार्वजनिक जीवन में राजनीतिक अभिव्यक्तियों अर्थात राजनीतिक विचारों और व्यवहारों से सर्वथा दूर रखता है | इसका परिणाम यह होता है कि प्रशासनिक अधिकारी विना किसी दलीय निष्ठा के ,पूर्वाग्रह से मुक्त होकर अपने दायित्वों का निर्वहन करता है | सरकार चाहे किसी भी दल की हो , उसका सम्बन्ध केवल नीतियों के निष्पक्ष क्रियान्वयन से होता है ,न कि दलीय भावना से | इस तरह के राजनीतिक तटस्थता के लिए लोक सेवकों हेतु भारतीय संविधान में उपबंध किये गए हैं

2.4.6 सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ

आजादी के बाद सामान्य रूप से प्रशासन में सामान्यज्ञों की नियुक्ति होती थी किन्तु उसके बाद के समय में विभिन्न प्रकार की जरूरतों को पूरा करने के लिए विशेषज्ञों की भी नियुक्ति की जाने लगी | जैसे डॉक्टर, इंजीनीयर, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, कृषि वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री, विधिवेत्ता आदि |

2.4.7 प्रशासन की बढ़ती हुई शक्तियाँ

स्वतन्त्रता के पूर्व प्रशासन की प्रकृति नियामकीय थी ,जिसका प्रमुख लक्ष्य कानून और व्यवस्था बनाए रखना था | परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गई ,जिसमें सरकार जनता की भलाई के लिए कार्य करती है ,न कि अपने लाभ के लिए जैसा कि अंग्रेज शासन काल में हुआ करता था | स्वतन्त्रता के पश्चात संविधान निर्माताओं ने ,मूलभूत सामाजिक आर्थिक लक्ष्यों की घोषणा की है | इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नियोजन प्रक्रिया प्रारम्भ की गई | इस कारण से प्रशासन की शक्तियों में अभूतपूर्व वृद्धि कर दी है | नित्य नवीन कल्याणकारी योजनाएं लागू की जा रही है ,इनको लागू करने की जिम्मेदारी प्रशासन पर ही होती है | इसके साथ ही साथ अब तो सशक्तिकरण से सम्बंधित नीतियां भी लागू की जा रही हैं जिससे समाज में अब तक हासिए पर रहे समुदायों को भी ,समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जा सके | यदि इन सब बातों को हम संक्षेप में कहें तो यह है कि व्यक्ति के जन्म से पूर्व माँ के स्वास्थ्य ,जन्मोपरान्त –जन्म प्रमाणपत्र ,बच्चे के स्वास्थ्य ,पोषण ,नाना प्रकार के टीके ,जनगणना ,उसकी शिक्षा ,रोजगार ,विवाह पंजीकरण ,बृद्धावस्था में उनके हित में विभिन्न प्रकार के सामाजिक सुरक्षा संबंधी कार्यक्रम ,और अंततः मृत्यु पंजीकरण और इसी प्रकार से अन्य जो भी लोकहित में आवश्यक कार्य हों प्रशासन के द्वारा ही किये जाते हैं | लोकतंत्र में प्रशासन की बढ़ती जिम्मेदारियों ने उसकी शक्तियों में भी अभूतपूर्व वृद्धि कर दी है |

2.4.8 प्रशासन का लक्ष्य सामाजिक – आर्थिक न्याय

लंबे संघर्ष के पश्चात देश को आजादी मिली थी | जिसका उद्देश्य देशवासियों को उन सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों से सुसज्जित करना जिनसे अभी तक वे वंचित रहे है | क्यों कि परम्परागत भारतीय समाज में कुछ सामाजिक और आर्थिक नियोग्यताएं प्रचलित थी | जैसे अशुभ्यता (छुआ - छूत) ,व्यवसाय की नियोग्यताएं आदि | हमारे संविधान में एक तरफ तो इन

निर्योग्यताओं को समाप्त किया गया तो दूसरी तरफ ,संविधान के द्वारा देशवासियों को विभिन्न प्रकार के सामाजिक और आर्थिक अधिकार प्रदान किये गए जिससे वे सम्मान पूर्वक अपना जीवन यापन कर सकें | इस प्रकार के व्यापक उपबंध हमारे संविधान भाग ३ में मूलाधिकार और भाग 4 के नीति निदेशक तत्वों में किये गए हैं |

2.4.9 समन्वित प्रशासन –

हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विविधताएं है | इस बात को ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माताओं ने संघात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया गया | जिसकी मुख्य विशेषता – लिखित ,निर्मित और कठोर संविधान , संघ सरकार और राज्य सरकार के बीच शक्तियों का विभाजन , संविधान की व्याख्या ,नागरिकों के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा और संघ सरकार और राज्य सरकार के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों का निराकरण करने के लिए स्वतन्त्र ,निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायलय की स्थापना | इसके साथ ही साथ मजबूत केंद्र की स्थापना के लिए एकात्मक शासन के मुख्य प्रावधानों को भी सम्मिलित किया गया | ऐसा इस लिए किया गया क्योंकि देश ,स्वतंत्रता के समय दुखद विभाजन को देख चुका था | इसी बात को ध्यान में रखते हुए संघ और राज्य के लिए सम्मिलित सेवाओं का प्रावधान किया गया ,जिसे अखिल भारतीय सेवा कहते हैं | जिसमे तीन अखिल भारतीय सेवा

हैं- १. भारतीय प्रशासनिक सेवा २. भारतीय पुलिस सेवा ३. भारतीय वन सेवा | इन सेवाओं का उद्देश्य केंद्र और राज्य के बीच सहयोग को निरंतर प्रोत्साहित करना ,जिससे राष्ट्र निर्माण का कार्य सफलता पूर्वक किया जा सके और कल्याणकारी और सशक्तिकारक नीतियों को भी सफलतापूर्वक लागू किया जा सके | यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते है कि केंद्र सरकार के पास अपना कोई अलग प्रशासनिक तंत्र नहीं है अपितु केंद्र की नीतियों को भी सफलतापूर्वक लागू करने में राज्य के प्रशासनिक तंत्र से सहयोग लिया जाता है |

भारतीय प्रशासन की उपर्युक्त विशेषताओं के साथ ही साथ इसके कुछ अन्य पक्षों का भी अध्ययन करना आवश्यक होगा जो कि ,इनमें प्रायः दिखाई देता है ---

1.पिछले कुछ वर्षों में यह तथ्य उभरकर सामने आया है की प्रशासनिक अधिकारियों के अपने दायित्वों के निर्वहन में ,राजनीतिक हस्तक्षेप दिखाई दे रहा है ,परिणामस्वरूप प्रशासकों में निराशा की भावना प्रबल होती दिखाई देती है | राजनीति में अपराधीकरण बहुत ही चिंता का विषय है ,यदि इसके निराकरण हेतु कोई संस्थागत उपाय और उन उपायों का समुचित क्रियान्वयन का प्रबंध करना उपयोगी होगा |

२. कल्याणकारी योजनाओं, विकास कार्यों और सशक्तिकारक नीतियों के क्रियान्वयन में जनता की सक्रीय भागीदारी नहीं हो पाती है जिसके फलस्वरूप नीतियों और कार्यक्रमों की सफलता संदिग्ध हो जाती है। इसका प्रमुख कारण प्रशासन के द्वारा जनता को साथ लेकर न चलने की प्रवृत्ति है। इस लिए आवश्यकता इस बात की है प्रशासन को जनता के प्रति संवेदनशील बनाया जाये, और प्रशासकों को भी नियत अंतराल पर नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित किये जाते रहें। साथ ही जिस क्षेत्र और जिस समुदाय विशेष के लिए नीति का निर्माण किया जाना है, उसकी भी नीति निर्माण में भागीदारी सुनिश्चित करने के उपाय किये जाने चाहिए।

३. देश को आजाद हुए छः दशक से अधिक हो चुके हैं, परन्तु आज भी समाज का ढांचा सामंतवादी ही दिखाई देता है, फलस्वरूप बहुत से कार्यक्रमों का लाभ आम आदमी तक नहीं पहुँच पाता है। जिसकी चर्चा हमारे एक पूर्व प्रधानमंत्री कर चुके हैं, जिसमें उन्होंने यहाँ तक कहा कि गाँव के लिए भेजे गए एक रुपये में, मात्र 15 पैसे ही उन्हें तक पहुँच पाता है। इस लिए आवश्यकता इस बात की है कि इस तरह की सुविधाएं देश के आम आदमी तक पहुँचे, इसके लिए सामाजिक अंकेक्षण जैसे उपायों के साथ, इस प्रकार के अन्य उपायों को भी अपनाने पर जोर दिया जाना चाहिए।

४. वोहरा समिति (1995) ने अपने प्रतिवेदन में राजनीतिज्ञों, प्रशासकों और माफियाओं के बीच संबंधों को उजागर करके यह स्पष्ट कर दिया कि अधिकतर योजनाएं आम आदमी के नाम से संचालित तो हो रही है परन्तु उनका वास्तविक लाभ लक्षित व्यक्ति और समूह तक नहीं पहुँच पा रहा है।

अभ्यास प्रश्न

1. 15 अगस्त 1947 को हमारे देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। सत्य / असत्य
2. संसद के निम्न सदन के जनप्रतिनिधि, जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुनकर आते हैं। सत्य / असत्य
3. शक्ति विभाजन के सिद्धांत के आधार संघात्मक शासन की स्थापना की गई है।
4. मूल अधिकारों के उल्लंघन होने पर व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अनुच्छेद 32 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय में जा सकता है। सत्य / असत्य
5. संविधान के भाग 4 में नीतिनिदेशक तत्वों का उपबंध किया गया है। सत्य / असत्य
6. पंथनिरपेक्ष शब्द का समावेश नहीं किया गया था। सत्य / असत्य
7. 42 वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और अखंडता का समावेश संविधान किया गया। सत्य / असत्य
8. संविधान भाग ३ में मूलाधिकारों का प्रावधान किया गया है। सत्य / असत्य

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमने स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तरदाई कारणों का अध्ययन किया जिसमें संसदीय लोकतंत्र, संघात्मक शासन, स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन की बदलती प्रकृति (प्रशासन के लक्ष्यों और उद्देश्यों में परिवर्तन) का अध्ययन किया है साथ ही यह भी अध्ययन किया कि किस प्रकार भारतीय संविधान, समाजवादी और पंथनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करता है। और अंततः हमने यह अध्ययन किया कि, किस प्रकार भारतीय प्रशासन, गतिशील प्रशासन है, विकास प्रशासन है, उत्तरदायी प्रशासन है और राजनीतिक उथल-पुथल से अपने को अलग रखते हुए सामाजिक - आर्थिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समन्वित रूप से कार्य कर रहा है। साथ ही यह भी देखा कि किस प्रकार से प्रशासन में लालफीताशाही के दुर्गुण उभरे हैं, जिसमें सामाजिक - आर्थिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया को इतना महत्व देते दिखाई देते हैं कि, लक्ष्य गौण हो जाते हैं।

परन्तु बावजूद इसके स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय प्रशासन ने सामाजिक - आर्थिक न्याय की स्थापना के मार्ग पर चलने का अच्छा प्रयास किया है किन्तु बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालकर जन आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

2.6 शब्दावली

संसद – भारत में कानून निर्माण की सर्वोच्च संस्था है, जो राष्ट्रपति, राज्य सभा और लोक सभा से मिलकर बनती है

संघात्मक शासन – स्थानीय स्वायत्तता के साथ राष्ट्रीय एकता और सुरक्षा को ध्यान में रखकर स्थापित की जाने वाली शासन व्यवस्था है, जिसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं १. शासन के तीनों अंगों में शक्ति विभाजन २. लिखित निर्मित और कठोर संविधान ३. स्वतन्त्र, निष्पक्ष सर्वोच्च न्यायालय।

समाजवादी – भारत के सन्दर्भ में इसका अर्थ यह है कि –राज्य लोगों के बीच आर्थिक असमानताओं को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा।

पंथनिरपेक्ष- इसका अर्थ है कि राज्य का अपना कोई राजधर्म नहीं होगा, और वह सभी धर्मों को समान रूप से संरक्षण प्रदान करेगा

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

सत्य 2 सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य 6. सत्य 7. सत्य 8. सत्य

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय लोक प्रशासन	-	बी.एल. फड़िया
भारतीय लोक प्रशासन	-	अवस्थी एवं अवस्थी

2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	डी.डी. बसु
भारतीय लोक प्रशासन	-	एस.सी. सिंहल

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय प्रशासन के विशेषताओं की विवेचना कीजिये
२. स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय प्रशासन की प्रकृति में परिवर्तन के कारणों को स्पष्ट कीजिये

इकाई 3 : भारतीय प्रशासन का सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक व संवैधानिक पर्यावरण

इकाई की संरचना

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.3 भारतीय प्रशासन का पर्यावरण
 - 3.3.1 भारतीय प्रशासन: सांस्कृतिक पर्यावरण
 - 3.3.2 भारतीय प्रशासन :सामाजिक पर्यावरण
 - 3.3.3 भारतीय प्रशासन: राजनीति पर्यावरण
 - 3.3.4 भारतीय प्रशासन: आर्थिक पर्यावरण
 - 3.3.5 भारतीय प्रशासन: संवैधानिक पर्यावरण
- 3.4 सारांश
- 3.5 शब्दावली
- 3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 3.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पर्यावरण दो शब्द परि और आवरण से मिलकर बना है। जिसका शब्दिक अर्थ हैं चारो ओर घिरा हुआ। सामाजिक विज्ञान में पर्यावरण का स्वरूप प्राकृतिक विज्ञान के जैविकिय एवं अजैविकिय संघटनों से भिन्न है। यद्यपि लोकप्रशासन में पर्यावरण या परिवेश अथवा परिस्थिति के अध्ययन का विचार वनस्पति विज्ञान से ग्रहण किया गया है। परन्तु तात्विक रूप से दोनों में भिन्नता है।

डा० एम० पी० शर्मा के अनुसार किसी भी सामाजिक व्यवस्था में पर्यावरण का अर्थ होता है संस्थान, इतिहास, विधि, आचार शास्त्र, दर्शन, धर्म, शिक्षा, परम्परा, विश्वास, मूल्य, प्रतीक, पौराणिक गाथाएं आदि जिसमें भौतिक एवं अभौतिक नाचने गाने तथा अन्य प्रकार के मनोरंजन और कलाएं सम्मिलित है।

जबकि जीव विज्ञान में पर्यावरण से तात्पर्य सृष्टि के छोटे बड़े सभी जीवधरियों और प्रकृति के समस्त अजैविक तत्वों का समाहार है। जो जीवित प्राणियों के अस्तित्व जीवन ओर पुनरुत्पादन को प्रभावित करते है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से हम यह जान सकेंगे कि

1. भारतीय प्रशासन में पर्यावरण का क्या तात्पर्य है।
2. किस प्रकार से भारतीय प्रशासन सांस्कृतिक, पर्यावरण से प्रभावित होता है।
3. किस प्रकार से भारतीय प्रशासन सामाजिक, पर्यावरण से प्रभावित होता है।
4. किस प्रकार से भारतीय प्रशासन, राजनीतिक पर्यावरण से प्रभावित होता है।
5. किस प्रकार से भारतीय प्रशासन आर्थिक पर्यावरण से प्रभावित होता है।
6. किस प्रकार से भारतीय प्रशासन संवैधानिक पर्यावरण से प्रभावित होता है।

3.3 भारतीय प्रशासन का पर्यावरण

सन् 1961 में एफ. डब्ल्यू. रिंक्स की पुस्तक 'द इकोलॉजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक ने इस क्षेत्र में तहलका मचा दिया। इस पुस्तक में लोक प्रशासन तथा पर्यावरण के बीच परस्पर क्रिया को तुलनात्मक ढंग से समझने का प्रयास किया गया था। रिंक्स के अतिरिक्त जॉन एम. ग्रास, संवर टफल, रास्को पार्टिन आदि विद्वानों ने लोक प्रशासन में पर्यावरण के अध्ययन को व्यापक विस्तृत बनाया है। आज जब राज्य का स्वरूप प्रशासनिक हो गया है। किसी भी संस्थान या संगठन के विस्तृत विवेचन हेतु पर्यावरण का अध्ययन एवं विवेचन आवश्यक हो गया है। यह निर्विवाद सत्य है कि लोक प्रशासन कई तत्वों से प्रभावित होता है जैसे सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिवेश। लोक प्रशासन समाज विज्ञान के अन्तर्गत है। इसे समझने के लिए देश में चारों ओर होने वाली घटनाओं का अध्ययन आवश्यक है। अब लोक प्रशासन के विषय के अन्तर्गत यहां भारतीय प्रशासन के संदर्भ पर्यावरण की चर्चा करेंगे।

3.3.1 भारतीय प्रशासन सांस्कृतिक, पर्यावरण

संस्कृति शब्द मूल रूप से संस्कृत भाषा का शब्द है। संस्कृति अंग्रजी भाषा के कल्चर शब्द का रूपान्तरण है। कल्चर शब्द लैटिन भाषा के कलचुरा तथा कोलियर शब्द से बना है जिसका अर्थ है उत्पादन और परिष्कार। अतः संस्कृति के अंतर्गत समुदाय के रहन सहन, खानपान, जीवन शैली, बौद्धिक उपलब्धियों एवं जीवन दर्शन आते हैं। जी. ई. ग्लैडन ने अपनी पुस्तक 'डायनामिक ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' में लोक प्रशासन और संस्कृति पर्यावरण के संबंधों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि यदि प्रशासनिक संस्कृति रूपान्तरण के कारण हुई प्रगति से सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाती तो सामाजिक असंतोष हिंसा से सामाजिक ढांचा अंततः ध्वस्त हो जायेगा। सामाजिक संस्कृति की अनुकूलन क्षमता ही प्रशासन में लोक सामंजस्य और व्यवस्था बनाये रखने में प्रमुख भूमिका निभाती है।

भारतीय संस्कृति के विषय में एक चिर परिचित और प्रिय उक्ति है। 'भारतीय संस्कृति में अनेकता में एकता का समावेश है। भारतीय संस्कृति की धारा का मूल स्रोत वैदिक धर्म है। यही सनातन धर्म के नाम से विख्यात है। यह भी सत्य है कि वैदिक आर्य और उनकी संस्कृति अपनी पूर्ववर्ती सिन्धु संस्कृति से भी प्रभावित रही है। भारतीय संस्कृति की धारा में निरन्तरता प्रवाहता सदैव बनी रही। मध्यकाल में इस्लामिक संस्कृति आगमन व ईसाई संस्कृति इसे अवरूद्ध ना कर सकी। बल्कि इसकी अपनी अमरता ने परिष्कृत ही किया है। मध्यकाल के भक्ति आंदोलन और आधुनिक काल के नवजागरण इसके प्रमाण हैं। भारत अनेक जातियों, धर्मों और भाषाओं का जमघट है। भारत के राजनैतिक इतिहास में अनेक जातियों के प्रवेश किया है। उनकी न केवल भाषाओं बल्कि धर्म,

विश्वास, परम्परा भिन्न रही है। 15 अगस्त, 1947 के बाद में भारत अपनी अखण्डता अक्षुण्ण अवश्य बनाये हुए है, परन्तु एक राष्ट्र- राज्य के रूप में अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। इसकी सांस्कृतिक भिन्नताएं इसमें अवरोध उत्पन्न करती है। प्रशासनिक संदर्भ में तो भिन्नताएं बहुत अधिक पीड़ादायक सिद्ध हुईं।

सहिष्णुता जहां एक नैतिक आदर्श प्रस्तुत करके सामाजिक जीवन को सरल, सुगम दर्शन प्रदान करती है वहीं प्रशासनिक दृष्टिकोण से यही चीजें कठिनाईयां प्रस्तुत करती है। प्रशासन मानव जीवन को सुखमय और संघर्षरहित बनाने के लिए होता है। परन्तु महज सांस्कृतिक भिन्नता के कारण भिन्नसमुदायों के लिए भिन्न-2 कार्यक्रमों का निर्माण करना और उनको क्रियान्वित करना थोड़ा कठिन होता है। यद्यपि प्रशासनिक श्रेष्ठता या हीनता का यह एक मात्र कारण नहीं है। यह संस्कृति में कुछ और गुण विद्यमान हों तो यह दुर्गुण प्राकृतिक गुण में बदल सकता है। भारतीय प्रशासन के माध्यम से जब सामाजिक बुराईयों को दूर करने एवं प्रगतिशील व उन्नत कार्यक्रम चलाये जाते हैं तो सांस्कृतिक परम्पराओं के कारण उसका विरोध किया जाता है। जब कभी कोई सामाजिक लक्ष्य प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है तो भारतीय समाज के विभिन्न वर्ग सिर्फ सांस्कृतिक अंतर्विरोधों के कारण उसका विरोध करते हैं। अतः लोकतांत्रिक पृष्ठभूमि के कारण प्रशासन अवसादग्रस्त हो जाता है। स्वतन्त्रता के पश्चात राष्ट्रीय भाषा का निधारण परिवार नियोजन के संबन्ध में कानून, और अनुच्छेद 44 का क्रियान्वयन इसके उदाहरण है।

सांस्कृतिक भिन्नता के कारण भारतीय समाज में सांस्कृतिक वैमनस्य को जन्म देता है। जिसके कारण पुलिस प्रशासन पर अत्यधिक दबाव रहता है। धर्म एवं जातिगत भिन्नता के कारण उनमें आपस में खानपान, वैवाहिक संबन्ध स्थापित नहीं हो पाते। परन्तु जब कभी शिक्षित युवा लड़के लड़कीयां प्रेम संबन्धों या वैवाहिक संबन्धों के कारण एक दूसरे के नजदीक आते हैं तो जाति धर्म की भिन्नता उनके आड़े आती है। उत्तर भारत के कुछ राज्यों में- हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार में ऐसे संबन्धों का अभिभावक कड़ा विरोध करते हैं जिनका परिणाम कभी 2 ऑनर किलिंग जैसे अपराधों में दृष्टिगत होता है।

भाषाई आधार पर प्रदेशों का निर्माण और प्रान्तों के बीच असहयोगपूर्ण बर्ताव सांस्कृतिक भिन्नता की पृष्ठभूमि पर आधारित है। प्रान्तों का बँटवारा भौगोलिक एवं प्रशासनिक सुविधा पर होना अधिक श्रेष्ठ और शलाघनीय है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था और प्रशासन के लिए एक दुखद सत्य है कि प्रान्तों के नेता चाहे वे सत्ता में हों या विपक्ष में राष्ट्रीय आदर्शों के प्रेरणा नहीं होते। वे मन के अनुकूल अधिक क्षेत्रीय या प्रान्तीय विभाजन चाहते हैं।

भारतीय जीवन धर्म तत्व से अनुप्राणित रहा है। धर्म शब्द स्वजातिक है। और इसका अनुवाद मजहब या रिलिजन नहीं हो सकता। यहां धर्म का अर्थ कर्तव्यों का पालन करना है। समग्र सृष्टि को अच्छी प्रकार से धारण एवं परिपालन करने वाले तत्वों की समष्टि को ही धर्म कहते हैं। अर्थात् वे तत्व जिनके रहने से समाज है। और जिनके न होने पर यह समाज नष्ट हो जाता है। धर्म के अन्तर्गत आते हैं। जैसे धैर्य, क्षमा, उदारता, संतोष, ईमानदारी, पवित्रता, ज्ञान, प्रेम, दया, अहिंसा, ममता, परोपकार, सहयोग तथा अपनी भांति दूसरों की चिन्ता करना आदि। श्रेष्ठ जीवन मूल्यों की समष्टि को ही भारतीय शास्त्रों में धर्म कहा गया है। इन तत्वों को धारण करने वाले व्यक्ति आध्यात्मिक शांति को प्राप्त कर समाज को व्यवस्थित एवं गतिमान बनाने में सहयोगी बनते हैं। चूंकि आज सत्ता धर्म के बिना संभव नहीं अतः धर्म के तत्वों की रक्षा में सक्रिय होना समाज के प्रत्येक विचारशील नागरिक का पवित्र कर्तव्य बन जाता है। भारतीय जीवन में धर्म एक अग्रणी तत्व रहा। धर्म एकान्त में रहकर जीवन यापन करने वाले मनुष्यों का प्रेरक नहीं है। धर्म सामाजिक जीवन का सद्गुण है। भारतीय राजनीतिक दर्शन में धर्म और राज्य में विरोधी संबंधों की कोई कल्पना नहीं की गई है। आदर्श राज्य में धर्म आत्मा के सदृश्य राज्य रूपी शरीर में विद्यमान व्यक्ति का राजकीय जीवन धार्मिक जीवन का पर्याय माना गया है। राम, कृष्ण, विदूर, भीष्म, युधिष्ठिर, चाणक्य, गांधी और अनगिनत राजर्षि इसके उदाहरण हैं। भारतीय नागरिकों में कोई हिन्दू हैं और वे लोग अधार्मिक हैं जो किसी पंथ या संप्रदाय से नहीं जुड़े हैं। यह बात उतनी ही असत्य है जितना कि सूर्य पृथ्वी का चक्कर लगाता है। भारतीय समाज यदि पूणतया धार्मिक होता तो इसके सामाजिक, राजनीतिक जीवन में इतनी बुराईयां ना होती। अधिकांश भारतीय धार्मिक होने का दावा करते हैं। परन्तु वे आचरण में धर्म की अभिव्यक्ति नहीं करते। आज की भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों का जो हास देखा जा रहा है उसके आधार पर राजनीतिक एवं प्रशासनिक जीवन के आदर्श का प्रतिनिधित्व भारतीय कर पायेंगे इसमें संदेह है। यह सच है कि भारतीय समाज मानव जीवन के विभिन्न कृत्यों को ईश्वरीय छाया से निष्पादित मानते हैं। परन्तु वेव्यावहारिकजीवन में उसे स्वीकार नहीं करते।

धर्म को जीवन और आचरण में पूर्णता उतार लेने के लिए और व्यक्ति के आत्मिक विकास के लिए भारत में विभिन्न दर्शनों, समुदायों का विकास हुआ है। भारत के ऐसे अनेक संप्रदाय हैं जिनमें अद्वैत, वैष्णो, शाक्त, जैन बौद्ध, सिख आदि प्रमुख हैं। इन विभिन्न संप्रदायों की उपासना पद्धतियों में भले ही भिन्नता हो परन्तु लक्ष्य सभी का परम् सत्य और धर्म ही है। अर्थात् धर्म साध्य है जबकि संप्रदाय साधन। भारतीय समाज सहिष्णुता के कारण अनेक उपसंप्रदायों को भी जन्म देता है बौद्धों में महायान, हीन यान, जैन में श्वेताम्बर, दिगम्बर आदि हैं। यद्यपि ये भिन्नताएं प्रशासनिक दृष्टिकाण से बहुत महत्व नहीं रखती। राजनीतिक और संप्रदायिक षडयंत्रों के कारण देश का वातावरण बहुधा विषाक्त हो जाया करता है।

हिन्दू समाज की सहिष्णुता अनुपम है। भारतीय संस्कृति किसी दूसरे धर्म में हस्तक्षेप नहीं करती है। हमारे इतिहास में ऐसे विभिन्न उदाहरण देखने को मिलते हैं। जिनमें हमारे मनुष्यों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सत्य को प्राप्त करने के अनेक मार्ग हैं।

हमारे पूर्वजों का दृष्टिकोण सदैव अन्तर्राष्ट्रीय ही रहा है। मानव एक ही ईश्वर की संतान है। यह संकल्पना सदैव उपस्थित रही है। वसुधैव कुटुम्बकम् का आदर्श आज से चार हजार वर्षों पूर्व भारतीय संस्कृति का नारा था। हिन्दू संस्कृति ने अनेक संस्कृतियों को पीकर अपनी ताकत बढ़ाई है। यहां तक की इस्लाम जो अपने व्यक्तित्व को स्वतंत्र रखने का मनसूबा लेकर चला था वह भी भारत में आकर बहुत कुछ परिवर्तित हो गया है। आज भारतीय मुसलमान सांस्कृतिक दृष्टि से भारतीय है।

3.3.2 भारतीय प्रशासन सामाजिक, पर्यावरण

एफ. डब्लू. रिक्स ने अपनी पुस्तक इकॉलॉजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन में कहा है कि इसी समुदाय का सामाजिक परिवेश उसके संस्थानों, संस्थागत नमूनों, जात संबंधों, परम्पराओं, धर्म मूल्यों की व्यवस्था, विश्वास आदि पर आधारित होता है। ये समस्त तत्व प्रशासन पर बड़ा गहरा प्रभाव डालते हैं। लोक प्रशासन में मानवीय तत्व विशेष तत्व का प्रभाव होता है। इसलिए लोक प्रशासन का मानवीय तत्व समाज विशेष का ऊपज होता है। विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाएं और संस्थाएं लोक कर्मचारियों के चरित्र की रचना करती हैं। भारत में आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक आदि आधारों पर अनेक वर्ग बन जाते हैं। समाज के इन वर्गों को पहचानना तथा उनमें जो वर्ग यह पिछड़ी जाति कमजोर है उसे विशेष सुविधा देकर ऊपर उठाना प्रशासन का महत्वपूर्ण दायित्व बन जाता है। प्रशासन को केवल कानूनी न्याय के आदर पर नहीं चलाया जा सकता। बल्कि प्रशासन के संचालन के लिए आज सामाजिक न्याय अधिक आवश्यक बन गया है। इसके साथ सामाजिक संस्थाओं का लोक प्रशासन की नौकर शाही से घनिष्ठ संबंध रहता है। सामाजिक संस्थाओं का प्रशासन पर निरन्तर दबाव रहता है। इस सामाजिक दबाव के कारण लोक प्रशासन सतर्क एवं उत्तरदायी बना रहता है। दूसरी ओर सामाजिक जागरूकता भी प्रशासनिक व्यवहार को जनोपयोगी बनाने में सहायता करती है। इससे स्पष्ट है कि प्रशासन को सामाजिक पर्यावरण के अनुसार संचालित होना पड़ता है। समाज प्रशासन के अनुसार कभी कभी ही क्रियाशील होता है। भारतीय समाज की विशेषता है कि वह बहुलवादी समाज है। जिसमें विविध संप्रदायों के अनुयायी भाषाभाषी एवं जाति धर्म वाले लोग रहते हैं। भारत में हिन्दू मुस्लिम सिख जैन बौद्ध, परसी आदि धर्माबलम्बी रहते हैं। भाषाओं की संख्या तो अनगिनत है। फिर भी संविधान की आठवीं सूची में 22 भाषाओं को रखा गया है। बहुसंख्यक हिन्दू के सामाजिक जीवन का आधार वर्णाश्रम व्यवस्था है। यद्यपि वर्ण व्यवस्था अपनी पूर्व अवस्था में नहीं रह गई परन्तु अभी भी अघोषित रूप में सामाजिक जीवन को इसी सिद्धान्त पर चिह्नित किया जाता है। वर्ण व्यवस्था का सूत्रपात श्रम और व्यवसायिक वर्गों के

विभाजन से हुआ था। जो कालान्तर में जन्म पर आधारित बन गया। वर्ण व्यवस्था का सबसे हानिकारक पक्ष है। पीछड़ी जातियों के प्रति अस्पृश्यता का व्यवहार। उच्च वर्ग में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ग की स्थिति सम्मानित और गौरवशाली हुआ करती थी। परन्तु शूद्र वर्ग समाज में विपन्न और शोषित वर्ग हुआ करता था। स्वतंत्रता के पश्चात वर्ण व्यवस्था को अवैध एवं गैरकानूनी घोषित किया गया और योग्यता के आधार पर व्यवसायों के चयन को प्रमाणित माना गया। परन्तु भारत के कुछ राज्यों में भूमि पर उच्च वर्गों का एकाधिकार अभी भी स्थापित है। बिहार, पंजाब, राजस्थान, जैसे राज्यों में भूआबंटन लागू ही नहीं हो पाया और कुछ राज्यों में लगभग ही क्रियान्वित हो सका। भारत की राजनीति संरचना और प्रक्रियायें लोकतांत्रिक प्रक्रिया को प्रभावित करता है। पंचायती राज के तीनों स्तरों पर जो अलोकतांत्रिक एवं सामंती मानसिकता का उद्घाटन होता है। इस समाज की अलोकतांत्रिक मानसिकता परिलक्षित होती है। भारतीय राजनीतिक जीवन की सच्चाई है। यहां पर भारतीय समाज के कुछ विशेष मुद्दों पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

जाति -

भारतीय समाज की संचार का आधार जाति और उपजातियां हैं। भारतीय प्रशासन सदियों पुरानी सामाजिक विषमता को ठीक करने में व्यस्त है। अनुसूचित जनजातियों, अनुसूचित जातियों और पीछड़ी जातियों के लिए शिक्षा एवं सेवाओं में आरक्षण का प्रावधान भारतीय समाज की एकरूपता एवं समरसता प्रदान करने का विवादित प्रयास है। आरक्षण की व्यवस्था आर्थिक पीछड़ेपन पर आधारित न होकर जाति पर आधारित है। दूसरे मूल संविधान में इसे दस वर्षों तक जारी रखने का प्रावधान था परन्तु संसद द्वारा इसे समय समय पर बढ़ाया जाता रहा। अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए आरक्षण बहुत हद तक उचित है। परन्तु पीछड़ी जातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान राजनीतिक स्वार्थों से प्रेरित है। राजनीतिक दल वोट बैंक के लिए पीछड़ी जातियों के आरक्षण का समर्थन करते हैं।

प्रशासनिक स्तर पर जाति भावना एक गंभीर समस्या है। समजात वर्ग के अधिकारी एवं कर्मचारी एक दूसरे के लिए अवैध और अनुचित कार्यों को करने के लिए तैयार हुए दिखाई देते हैं। परन्तु विजातीय लोगों के लिए उचित एवं वैध कार्यों के लिए टालमटोल करते हैं। जिस प्रकार से राजनीतिक स्तर पर जातियों को संगठित कर एक संगठित बोट बैंक के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है लगभग उसी प्रकार राजनेताओं द्वारा प्रशासनिक अधिकारियों का इस्तेमाल अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए किया जाता है। राज्यों के विधानसभा के उपचुनाव में इस जाति भावना का प्रशासन खुल कर प्रयोग होता है। आम जनमानस में प्रायः देखा और सुना जाता है। कि समान जाति है तो एसमें अजीब आशा और विश्वास का संचार होता है। परन्तु जब वह विजातीय अधिकारी या कर्मचारी के पास जाते हैं तो उनमें भय और शंका का समावेश होता है।

भारतीय समाज के नैतिक स्तर में गिरावट :-

राष्ट्रीय आन्दोलन के काल में भारत के नेताओं ने नैतिक मूल्यों एवं आदर्श मानवीय गुणों का जो उद्घाटन किया था विश्व स्तर पर भारत के ब्रिटिश आधिपत्य को असंगत प्रमाणित किया था। विश्व के अनेक विद्वानों ने कहा- भारत को सभ्य बनाने का अधिकार ब्रिटेन को नहीं है। भारतीय पुर्नजागरण और स्वतंत्रता के काल तक भारत के नैतिक मूल्यों, आदर्शों के कारण भारत एक आध्यात्मिक गुरु के रूप में उभर रहा था। परन्तु पीछले साठ वर्षों से भारतीय समाज का नैतिक पतन बड़ी तीव्र गति से हो रहा था। भारतीय समाज ने मानवीय बुराईयों को फैशन बना लिया है। और सामान्य जनता इन वर्गों की बुराईयों को अनुयायी बनकर अपनाती जा रही है। उच्च वर्ग में भ्रष्टाचार, बेईमानी कर्तव्यहीनता, मिथ्या दंभ, बड़े होने और सभ्य होने के प्रमाण माने जाते हैं। अर्थ का लाभ भारतीय समाज को उसके आदर्शों से पदच्युत कर रहा है। राजनेता जितना बड़ा आर्थिक घोटाला करते हैं। उतना ही उनके राजनैतिक कद का प्रमाण माना जाता है। समाज में नैतिक मूल्यों का पतन इतनी गहराई तक पहुँच गया है। कि लोग सामाजिक, प्रशासनिक बुराईयों को मौन स्वीकृति प्रदान कर देते हैं।

भारतीय प्रशासन, भारतीय समाज के नैतिक पतन का प्रतिबिम्ब भारत के आये दिन अधिकारी और कर्मचारी पर भ्रष्टाचार के आरोप लगते हैं | यह सच है कि उन्हें रिश्वतखोर होने के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद सभी नीतियों का इस्तेमाल प्रशासनिक वर्ग और राजनीतिक वर्ग द्वारा ही किया जाता है। भ्रष्टाचारमुक्त भारत सदगुणी व्यक्तियों के लिए अभी भी एक सपना है।

3.3.4 भारतीय प्रशासन आर्थिक पर्यावरण

अर्थ वह भौतिक तत्व जिस पर व्यक्ति के जीवन की गति निर्धारित होती है। राज्य की आर्थिक दशा और अर्थ के वितरण की व्यवस्था उसके सामाजिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक ढांचे का स्वरूप तय करता है। प्रशासन के स्वरूप के संबंध में कुछ समय पहले राजनीतिक परिस्थितियों को ही अधिक महत्व दिया जाता था। परन्तु पिछले कुछ वर्षों से आर्थिक विकास के अनुसार ही प्रशासन की सफलता एवं असफलता के अध्ययन को भी सम्मिलित किया जाने लगा है।

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की आर्थिक स्थिति का वहां के लोकप्रशासन के स्वरूप संगठन और कार्यों पर प्रभाव पड़ता है। प्रायः सभी विकासशील देशों में द्रुत आर्थिक विकास एवं आधुनिकिकरण के लिए प्रशासनिक सुधारों को अनिवार्य समझा जाता है। आज आर्थिक विकास के लिए प्रशासनिक विकास की भी आवश्यकता है। प्रशासन को आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला जाता है और इसके लिए समय समय पर प्रशासनिक सुधार किये जाते हैं। किसी भी देश की योजना को लागू करने का दायित्व प्रशासन का होता है। अतः देश की प्रशासनिक प्रणाली वहां के आर्थिक जीवन को नियमित करती है। आज की प्रशासनिक व्यवस्था सिर्फ कानून और व्यवस्था के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि प्रशासन व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पहलु को अधिकाधिक खुशहाल बनाने के लिए लोक कल्याणकारी बन गया है।

भारतीय अर्थ व्यवस्था अपनी विशाल जनसंख्या के भार से दबी हुई है। आर्थिक प्रगति के बावजूद गरीबी, भुखमरी, कुपोषित जीवन जीने वालों की संख्या में वृद्धि हुई है। भारतीय राजनीतिक नेतृत्व व प्रशासन दोनों के लिए भारतीय समाज का समावेशी विकास एक दुसाध्य लक्ष्य बना हुआ है। लोकप्रशासन अनेक प्रकार से देश के जीवन को नियंत्रित करता है। जैसे एक बाजार व्यवस्था तभी सूचारू रूप से कार्य कर सकती है जब उसके ऊपर विभिन्न प्रकार की नियंत्रण लगाये जायें तथा प्रशासन द्वारा अनेक सुविधायें उपलब्ध करायी जाये। प्रशासन ही वह यंत्र है जो अल्प आर्थिक संसाधनों को अपने कौशल से अधिक उपयोगी और कल्याणकारी बना सकता है। और यदि प्रशासन तंत्र भ्रष्ट और लुटेरा हो तो विश्व के समस्त संसाधनों से दरिद्रता नहीं दूर की जा सकती। प्रशासन में भ्रष्टाचार का मूल आधार आर्थिक है। यदि हम प्रशासन को पवित्र और भ्रष्टाचाररहित बनाना चाहते हैं तो आर्थिक विषमताओं को दूर करना आवश्यक है। इसी प्रकार अकुशल प्रशासन निम्न आर्थिक स्तर का एक दुष्चक्र होता है। जब किसी राज्य की आर्थिक स्थिति खराब होती है तो वहां योग्य तथा कुशल कर्मचारी उपलब्ध नहीं हो पाते। फिर भी मैं कहूंगा कि भारतीय प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार न तो आर्थिक असमान्यता व दरिद्रता का परिणाम है और ना ही भारत की विकास योजनाओं की बल्कि यह नैतिक और चारित्रिक समस्या है।

स्वाधीनता के बाद देश का औद्योगिकीकरण एक पूंजीवादी मिश्रित अर्थव्यवस्था के आधार पर करने का प्रयत्न किया गया। पूंजीवादी औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया ने कई तरह की बुराईयां उत्पन्न कर दीं। उनसे अर्थ व्यवस्था की पुराने ढांचे को समाप्त कर दिया गया। किन्तु किसी नये ढांचे का निर्माण नहीं किया गया। पूंजी अपने निवेश के लिए उन्हीं क्षेत्रों को चुनती है जो उसे प्रारंभिक सुविधायें प्रदान करते हैं। चूंकि ये सुविधायें पहले से मौजूद शहरी क्षेत्रों में प्राप्त होती हैं। अतः नये उद्यम और व्यवसायिक प्रतिष्ठान सामान्यतः शहरों तथा शहरों के उपनगरीय क्षेत्रों में शुरू किये जाते हैं। इससे अनेक समस्यायें उत्पन्न हुईं जैसे आर्थिक विषमता असन्तुलित आर्थिक विकास आदि।

स्वाधीनता के बाद भारत ने विकसीत देशों से उधार ली गई अत्यधिक पूंजी प्रदान टेकनॉलॉजी को अपनाया। भारी उद्योगों के निर्माण के लिए विदेशी सहायता लेनी पड़ी और देश की अर्थ व्यवस्था विदेशी निगमों के शिकंजे में फँसने लगी। आज देश की अर्थ व्यवस्था पर बड़े औद्योगिक घरानों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों का प्रभाव सर्वत्र दिखाई देता है। राजनीतिज्ञ, प्रशासक, सलाहाकार संस्थानएं, सामान्य जन की कल्याण उपेक्षा करके पूंजीपतियों के हितों को पैरवी करने नजर आते हैं। भारतीय अर्थ व्यवस्था के आर्थिक पर्यावरण को निम्न विशेषताओं के संदर्भ में समझा जा सकता है:-

कृषि की प्रधानता:-

भारतीय अर्थ व्यवस्था की प्रमुख विशेषता कृषि व्यवसाय की प्रधानता है। यहां की कुल कार्यशील जनसंख्या का 56% कृषि व्यवसाय में तथा 32% उद्योग व सेवाओं में लग हुआ है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था:-

भारतीय अर्थव्यवस्था ग्रामीण है। यहां लगभग 72.2% जनसंख्या गावों में निवास करती है। यह प्रतिशत अन्य देशों की तुलना में बहुत ज्यादा है। उदाहरण के लिए अमेरिका में 24% जापान में 22% व आस्ट्रेलिया में 15% जनसंख्या गावों में निवास करती है।

प्रतिव्यक्ति निम्न आय:-

भारतीय अर्थव्यवस्था की एक विशेषता यह है कि यहां प्रतिव्यक्ति आय बहुत निम्न है। इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो भारत की प्रति व्यक्ति आय जहां 460 डालर है वही विश्व की औसत प्रति व्यक्ति आय 5159 डालर है। भारत में प्रति व्यक्ति आय कम होने से गरीबी व्याप्त है। लेकिन यह गरीबी आँकड़ों से भी और अधिक है।

परम्परावादी समाज:-

भारतीय अर्थ व्यवस्था का एक लक्षण यह है कि यहां का समाज रूढ़िवादी, भागवादी और ढोंगी है यही कारण है कि यहां बहुत सी कुरीतियां हैं जैसे मृत्युभोज व अनेक सामाजिक परम्पराएं हैं, जिनमें काफी धन व्यय कर दिया जाता है। ऐसी परम्पराओं और रीति रिवाजों के कारण यहां का समाज सुखी जीवन व्यतीत नहीं कर पाता और अपने परिवार का जीवन स्तर नहीं उठा पाता। भारत के आर्थिक परिवेश में प्रशासन के समक्ष अनेक चुनौतियां उपस्थित हो जाती है। पंचायती शासन के माध्यम से विकास योजनाओं का क्रियान्वयन आर्थिक संसाधनों के बंदरबांट का ज्वलंत उदाहरण है। प्रशासन को भारत की आर्थिक, सामाजिक समस्याओं का समाधान ढूंढना और एक स्वस्थ समाज का निर्माण करना है, जो एक बड़ी चुनौती है।

3.3.5 भारतीय प्रशासन संवैधानिक पर्यावरण

किसी भी देश का प्रशासन संवैधानिक व्यवस्था के अनुरूप ही होता है। जहां संविधान का शासन है वहां प्रशासन का स्रोत भी संविधान ही होता है। भारतीय प्रशासनिक संस्थाओं और उसकी कार्य प्रणाली का विस्तृत विवरण संविधान के अनुच्छेदों में बिखरा पड़ा है। इन संस्थाओं में निर्वाचन आयोग, लोक सेवा आयोग, वित्त आयोग आदि संवैधानिक संस्थाएं हैं। भारतीय संविधान की कुछ विशिष्ट विशेषताएं प्रशासन की प्रकृति व उसकी रूपरेखा, कार्यप्रणाली आदि का निर्धारण करती है। जैसे संसदीय शासन व्यवस्था प्रशासन में अनुचित राजनीतिक हस्तक्षेप की भूमिका तय करता है। दूसरी ओर मंत्रियों की अनभिज्ञता उन्हें प्रशासनिक कार्यों के प्रति उदासीन बनाती है और नौकरशाही का प्रभुत्व प्रशासन पर स्थापित हो जाता है। संविधान का लिखित होना प्रशासन के उद्देश्य एवं दिशा का निर्धारण करता है। नागरिकों के मौलिक अधिकार एवं राज्यों के नीति निर्देशक तत्व इस संबंध में द्रष्टव्य है। संघात्मक शासन के कारण प्रशासन के दो स्तर केन्द्रीय एवं प्रांतीय होते हैं। इस परिस्थिति में दोनों स्तरों में पर्याप्त सहयोग एवं सामंजस्य की आवश्यकता होती है। कभी-कभी सुरक्षा संबंधी मामलों में केन्द्रीय एवं प्रांतीय प्रशासनिक संस्थाओं में अंतर्विरोध देखा जाता है। उदाहरणार्थ

बिहार, बंगाल, उड़ीसा मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड में नक्सली समस्याओं के संबंध में केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सुरक्षा एजेन्सियों में सहयोग का अभाव दिखाई देता है।

संविधान में प्रशासकों के चयन प्रक्रिया को योग्यता पर आधारित ओर निष्पक्ष बनाने के लिए संघलोक सेवा आयोग, राज्य लोक सेवा आयोग जैसी संस्थाओं का प्रावधान किया गया है। स्वतंत्र न्याय पालिका के द्वारा लोक सेवकों के पदच्युति को भी न्यायिक प्रक्रिया का विषय बना दिया गया है। जिससे लोक सेवक बिना किसी भय के निष्पक्ष होकर कार्य कर सके। प्रशासनिक अधिकारियों एवं कर्मचारियों के अवैध कार्यों के विरुद्ध मुकद्दमा चलाने का अधिकार पिड़ितों को दिया गया है।

निःसंदेह भारतीय संविधान में जनता के कल्याण और मानव सम्मान व अन्य प्रतिष्ठा को ध्यान में रखा गया है। परन्तु अभी तक उस गिने चुने लोगों तक यह सीमित है। स्वतंत्र न्यायिक व्यवस्था जनहित के मुकद्दमें जनसूचना का अधिकार की उपलब्धता का अधिकार न्याय एक दुर्लभ बस्तु बन गया है। उत्कृष्ट संविधान कानून और संस्थाओं के होते हुए भी समाज के उन्नति नहीं हो पा रही है। स्वतंत्रता के समय भारत की जनता समझती थी कि आजादी मिलने पर भारत एक नये युग में प्रवेश करेगा। परन्तु 70 वर्षों के उपरान्त औद्योगिक, तकनीकी आर्थिक प्रगति के बावजूद भारत की सामाजिक प्रगति और सामान्य जनता की स्थिति के संबंध में संशय है। जो देश अपने 60% जनसंख्या के लिए रोटी, कपड़ा और मकान की व्यवस्था ना कर सकी उसके लिए आर्थिक प्रगति, औद्योगिक उन्नति जैसे शब्द बेईमानी लगती है। यद्यपि वर्तमान समय में जनधन योजना, मनरेगा, स्वास्थ्य वीमा योजना आदि के द्वारा सशक्तिकरण के कार्य को आगे बधया जा रहा है।

अभ्यास प्रश्न

1. पर्यावरण किन दो शब्दों से मिलकर बना है।
2. 'द इकोलॉजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन के लेखक कौन है।
3. 'डायनामिक ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन'के लेखक कौन हैं।
4. भारत की लगभग जनसंख्या गावों में निवास करती है।

3.4 सारांश

उपरोक्त अध्ययन से आप समझ सके होंगे कि किस प्रकार देश का प्रशासन देश के संवैधानिक पर्यावरण की सीमाओं में रहकर ही कार्य करता है। भारतीय प्रशासन और संवैधानिक पर्यावरण को समझने के लिए भारतीय संविधान की विशेषताएं, निर्मित, लिखित, लोकप्रिय संप्रभुता, लोक कल्याण कार्य समाजवादी, धर्म निरपेक्ष राज्य, संसदीय व्यवस्था, स्वतंत्र न्याय पालिका, मूल अधिकारों की व्यवस्था, आदि को समझना आवश्यक है। साथ ही अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ होगा कि देश विशेष की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, संवैधानिक, और सांस्कृतिक परिस्थितियां प्रशासन को न केवल प्रभावित करती हैं अपितु कार्यप्रणाली एवं ढांचे को नया रूप प्रदान करती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रशासन और पर्यावरण में घनिष्ठ संबंध है।

3.5 शब्दावली

पर्यावरण - पर्यावरण दो शब्द परि और आवरण से मिलकर बना है। जिसका शब्दिक अर्थ हैं चारों ओर घिरा हुआ। सामाजिक विज्ञान में पर्यावरण का स्वरूप प्राकृतिक विज्ञान के जैविकीय एवं अजैविकीय संघटनों से भिन्न है। यद्यपि लोकप्रशासन में पर्यावरण या परिवेश अथवा परिस्थिति के अध्ययन का विचार वनस्पति विज्ञान से ग्रहण किया गया है। परन्तु तात्विक रूप से दोनों में भिन्नता है।

संस्कृति -संस्कृति के अंतर्गत समुदाय के रहन सहन, खानपान, जीवन शैली, बौद्धिक उपलब्धियों एवं जीवन दर्शन आते हैं।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. परि और आवरण. 2. एफ. डब्ल्यू. रिक्स 3. जी. ई. ग्लैडन 4. 72.2%

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय संविधान	-	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन	-	बी.एल. फड़िया
भारतीय लोक प्रशासन	-	अवस्थी एवं अवस्थी

3.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	डी.डी. बसु
भारतीय लोक प्रशासन	-	एस.सी. सिंहल

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय प्रशासन के पर्यावरण पर निबंध लिखिए।
2. स्वतन्त्रता के बाद भारतीय प्रशासन के पर्यावरण में किस प्रकार का परिवर्तन आया है। स्पष्ट कीजिए।

इकाई 4 : भारतीय संविधान की विशेषताएं

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 प्रस्तावना
- 4.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं
- 4.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध
- 4.6 लोक कल्याणकारी राज्य
- 4.7 सारांश
- 4.8 शब्दावली
- 4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 4.12 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना -

इकाई एक में हमने भारतीय संविधान के निर्माण में विदेशी संविधान के प्रभावों का अध्ययन किया साथ ही भारतीय संविधान के महत्वपूर्ण पक्षों का भी अध्ययन किया है।

इस इकाई में भारतीय संविधान की विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा। जिससे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को समझने में और सुविधा हो सके। यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि भारतीय संविधान में विश्व के संविधानों के उन्हीं पक्षों को शामिल किया गया है जो हमारे देश की आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। चाहे वह संसदीय शासन हो चाहे संघात्मक शासन हो या एकात्मक शासन हो। ब्रिटेन के संसदीय शासन को अपनाया गया किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि

1. भारतीय संविधान इतना विस्तृत क्यों हुआ?
2. भारतीय संविधान में संसदीय तत्व क्यों अपनाये गये
3. भारतीय संविधान में संघात्मक उपबंध क्यों किये गये
4. आप जान सकेंगे कि संसदीय शासन के बाद भी संविधान की सर्वोच्चता है

4.3 संविधान की प्रस्तावना

प्रत्येक देश का संविधान उसके देश-काल की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया जाता है। चूंकि प्रत्येक देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं इसलिए संविधान निर्माण के समय उन सभी पक्षों को शामिल किया जाता है। इस भिन्नता के कारण यह संभव है कि किसी देश में कोई व्यवस्था सफल हो तो वह अन्य देश में उसी स्वरूप में न सफल हो या उसे उसी रूप में लागू न किया जा सके। यदि हम देखें तो हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय विश्व के प्रचलित संविधानों का अध्ययन किया, और उन संविधानों के महत्वपूर्ण प्रावधानों को अपने देश की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप ढालकर अपनाने पर जोर दिया है। जैसे-हमारे देश में ब्रिटेन के संसदीय शासन का अनुसरण किया गया है किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है बल्कि संसदीय के साथ संघात्मक शासन को अपनाया गया है। यहाँ यह स्पष्ट करना नितान्त आवश्यक है कि संसदीय के साथ एकात्मक शासन न अपनाकर संघात्मक शासन क्यों अपनाया गया है। चूंकि हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बहुलता पाई जाती है। इसलिए इनकी पहचान को बनाए रखने के लिए संघात्मक शासन की स्थापना को महत्व प्रदान किया गया परन्तु संघात्मक शासन में पृथक पहचान, पृथकतावाद को बढ़ावा न दे, इसके लिए एकात्मक शासन के लक्षणों का भी समावेश किया गया है, जिससे राष्ट्रीय एकता को खतरा न उत्पन्न हो क्योंकि आजादी के समय हमारा देश विभाजन के दुःखद अनुभव को झेल चुका था।

यहाँ हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि अन्य देशों के संविधान की भांति हमारे देश के संविधान का प्रारम्भ भी प्रस्तावना से हुआ है। प्रस्तावना को प्रारम्भ में इसलिए रखा गया है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि इस संविधान के निर्माण का उद्देश्य क्या था? साथ ही वैधानिक रूप से संविधान के किसी भाग की वैधानिक व्याख्या को लेकर यदि स्पष्टता नहीं है तो, प्रस्तावना मार्गदर्शक का कार्य करती है। संविधान की प्रस्तावना के महत्व को देखते हुए सर्वप्रथम प्रस्तावना का अध्ययन करना आवश्यक है:-

" हम भारत के लोग ,भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसंपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए ,तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक ,आर्थिक और राजनीतिक न्याय,
विचार,अभिव्यक्ति ,विश्वास ,धर्म और उपासना की स्वतंत्रता ,
प्रतिष्ठा और अवसर की समता ,
प्राप्त कराने के लिए ,तथा उन सब में
व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की

एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता
बढाने के लिए

दृढसंकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26-11-1949 ई.(मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी ,संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत,अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।”

यहाँ हय स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल संविधान में 'समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और अखण्डता' शब्द नहीं था। इसका भारतीय संविधान में समावेश 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है।

अब हम प्रस्तावना में प्रयोग में लाये गये महत्वपूर्ण शब्दों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे-

1. हम भारत के लोग- इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय संविधान का निर्माण किसी विदेशी सत्ता के द्वारा नहीं किया गया है। बस भारतीयों ने किया है। प्रभुत्व शक्ति की स्रोत स्वयं जनता है और अन्तिम सत्ता का निवास जनता में है।
2. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न- इसका तात्पर्य परम सत्ता या सर्वोच्च सत्ता से है, जो निश्चित भू-क्षेत्र अर्थात् भारत पर लागू होती है। वह परम सत्ता किसी राजे-महाराजे या विदेशी के पास न होकर स्वयं भारतीय जनता के पास है और भारतीय शासन अपने आंतरिक प्रशासन के संचालन और परराष्ट्र संबंधों के संचालन में पूरी स्वतंत्रता का उपयोग करेगा। यद्यपि भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य है, परन्तु इससे उसके सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. पंथ निरपेक्ष:- यह शब्द मूल संविधान में नहीं था, वरन इसका समावेश संविधान में 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है। इसका तात्पर्य है कि- राज्य किसी धर्म विशेष को 'राजधर्म' के रूप में संरक्षण नहीं प्रदान करेगा, वरन वह सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करेगा और उन्हें समान रूप से संरक्षण प्रदान करेगा।
4. गणराज्य- इसका तात्पर्य है कि भारतीय संघ का प्रधान, कोई वंशानुगत राजा या सम्राट न होकर के निर्वाचित राष्ट्रपति होगा। ब्रिटेन ने वंशानुगत राजा होता है जबकि अमेरिका में निर्वाचित राष्ट्रपति है इसलिए भारत अमेरिका के समान गणराज्य है।
5. न्याय- हमारा संविधान नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की गारण्टी देता है। न्याय का तात्पर्य है कि राज्य का उद्देश्य सर्वजन का कल्याण और सशक्तिकरण है न कि विशेष लोगों का। सामाजिक न्याय का तात्पर्य है कि अब तक हासिये पर रहे वंचित समुदायों को भी समाज की मुख्यधारा में लाने वाले प्रावधान किये जायें तथा उनका क्रियान्वयन भी सुनिश्चित किया जाए। आर्थिक न्याय का तात्पर्य है कि प्रत्येक नागरिक को अपनी न्यूनतम आवश्यकता को वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने का अवसर प्रदान किये जाएं। राजनीतिक न्याय का तात्पर्य है कि: प्रत्येक

नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान का भेदभाव किये बिना उसे अपना प्रतिनिधि चुनने और स्वयं को प्रतिनिधि चुने जाने का अधिकार होना चाहिए।

6. एकता और अखण्डता - मूल संविधान में एकता शब्द ही था। 42 वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा अखण्डता शब्द का समावेश किया गया। जिसका तात्पर्य यह है कि धर्म, भाषा, क्षेत्र, प्रान्त, जाति आदि की विभिन्नता के साथ एकता के आदर्श को अपनाया गया है। इसके साथ अखण्डता शब्द को जोड़कर 'अखण्ड एकता' को साकार करने का प्रयास किया गया है। इसके समर्थन में भारतीय संविधान में 16 वें संवैधानिक संशोधन भी किया गया है।

4.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं

भारतीय संविधान की विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

1. लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान - संविधान के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है, प्रभुसत्ता अर्थात् सर्वोच्च सत्ता का स्रोत जनता है। प्रभुसत्ता का निवास जनता में है। इसको संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट किया गया है कि 'हम भारत के लोग ।'

2. विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान हमारा संविधान विश्व में सबसे बड़ा संविधान है। जिसमें 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियाँ हैं। जबकि अमेरिका के संविधान में 7 अनुच्छेद, कनाडा के संविधान में 147 अनुच्छेद हैं। भारतीय संविधान के इतना विस्तृत होने के कई कारण हैं। जो निम्नलिखित हैं:-

अ. हमारे संविधान में संघ के प्रावधानों के साथ - साथ राज्य के शासन से सम्बन्धित प्रावधानों को भी शामिल किया है। राज्यों का कोई पृथक संविधान नहीं है (जम्मू कश्मीर को छोड़कर)। जबकि अमेरिका में संघ और राज्य का पृथक संविधान है।

ब. जातीय, सांस्कृतिक, भौगोलिक सामाजिक विविधता भी संविधान के विशाल आकार का कारण बना। क्योंकि इसमें अनुसूचित जातियों, जनजातियों, आगंतुभारतीय, अल्पसंख्यक आदि के लिए पृथक रूप से प्रावधान किये गये हैं।

स. नागरिकों मूल अधिकारों का विस्तृत उल्लेख करने के साथ ही साथ नीतिनिदेशक तत्वों और बाद में मूलकर्तव्यों का समावेश किया जाना भी संविधान के विस्तृत होने का आधार प्रदान किया है।

ड. नवजात लोकतन्त्र के सुचारू रूप से संचालन के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रशासनिक एजेंसियों से सम्बन्धित प्रावधान भी किये गये हैं। जैसे निर्वाचन आयोग, लोक सेवा आयोग वित्त आयोग, भाषा आयोग, नियन्त्रक, महालेखा परीक्षक महिला आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग आदि। संघात्मक शासन का प्रावधान करने के कारण केन्द्र राज्य संबन्धों का विस्तृत उपबन्ध संविधान में किया गया है।

3. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतान्त्रात्मक गणराज्य - जैसा कि हम ऊपर प्रस्तावना में स्पष्ट कर चुके हैं कि अन्तिम सत्ता जनता में निहित है। भारत अब किसी के अधीन नहीं है। वह अपने आन्तरिक और बाह्य मामले में पूरी तरह से स्वतन्त्र है। संघ का प्रधान कोई वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित राष्ट्रपति है न कि ब्रिटेन की तरह सम्राट।

4. पंथ निरपेक्ष - भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। यद्यपि इस शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है, किन्तु इससे सम्बन्धित प्रावधान संविधान के विभिन्न भागों में पहले से विद्यमान है जैसे मूल अधिकार में और इसी प्रकार कुछ अन्य भागों में भी। पंथनिरपेक्षता का तात्पर्य है कि राज्य का अपना कोई राजधर्म नहीं है। सभी धर्मों के साथ वह समान व्यवहार करेगा और समान संरक्षण प्रदान करेगा।

5. समाजवादी राज्य -

इस शब्द को निश्चित रूप से परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है, परन्तु भारतीय सन्दर्भ में इसका तात्पर्य है कि राज्य विभिन्न समुदायों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा।

6. कठोरता और लचीलेपन का समन्वय - संविधान में संशोधन प्रणाली के आधार पर दो प्रकार के संविधान होते हैं। 1- कठोर संविधान 2- लचीला संविधान। कठोर संविधान वह संविधान होता है जिसमें संशोधन, कानून निर्माण की सामान्य प्रक्रिया से नहीं किया जा सकता है। इसके लिए विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता होती है जैसा कि अमेरिका के संविधान में है - अमेरिका के संविधान में संशोधन तभी संभव है जबकि कांग्रेस के दोनो सदन (सीनेट, प्रतिनिध सभा) दो तिहाई बहुमत से संशोधन प्रस्ताव पारित करें और उसे अमेरिकी संघ के 50 राज्यों में से कम से कम तीन चौथाई राज्य उसका समर्थन करें।

लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। जैसे ब्रिटेन का संविधान। क्योंकि ब्रिटिश संसद साधारण बहुमत से ही यातायात कर लगा सकती तो वह साधारण बहुमत से ही क्राउन की शक्तियों को कम कर सकती है।

किन्तु भारतीय संविधान न तो अमेरिका के संविधान के संविधान के समान न तो कठोर है और न ही ब्रिटेन के संविधान के समान लचीला है। भारतीय संविधान में संशोधन तीन प्रकार से किया जा सकता है -

1. कुछ अनुच्छेदों में साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सकता है।
2. संविधान के ज्यादातर अनुच्छेदों में संशोधन दोनो सदनों के अलग-अलग बहुमत से पारित करने साथ ही यह बहुमत उपस्थित सदस्यों का दो तिहाई है।
3. भारतीय संविधान में कुछ अनुच्छेद, जो संघात्मक शासन प्रणाली से सम्बन्धित हैं, उपरोक्त क्रम दो के साथ (दूसरे तरीका) कम से कम आधेराज्यों के विधान मण्डलों के द्वारा स्वीकृति देना भी आवश्यक है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान कठोरता और लचीलेपन का मिश्रित होने का उदाहरण पेश करता है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री **जवाहर लाल नेहरू** ने इसको स्पष्ट करते हुए कहा था कि - 'हम संविधान को इतना ठोस और स्थायी बनाना चाहते हैं, जितना हम बना सकें। परन्तु सच तो यह है कि संविधान तो स्थायी होते ही नहीं है। इनमें लचीलापन होना चाहिए। यदि आप सब कुछ कठोर और स्थायी बना दें तो आप राष्ट्र के विकास को तथा जीवित और चेतन लोगों के विकास को रोकते हैं। हम संविधान को इतना कठोर नहीं बना सकते कि वह बदलती हुई दशाओं के साथ न चल सके।

4. संसदीय शासन प्रणाली - हमारे संविधान के द्वारा ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह संसदीय प्रणाली न केवल संघ में वरन राज्यों में भी अपनाया गया है।

इस प्रणाली की विशेषता -

अ. नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद/नाममात्र की कार्यपालिका संघ में राष्ट्रपति और राज्य में राज्यपाल होता है जबकि वास्तविक कार्यपालिका संघ और राज्य दोनों में मंत्रिपरिषद होती है।

ब. राष्ट्रपति (संघ में) राज्यपाल (राज्य में) केवल संवैधानिक प्रधान होते हैं।

स. मन्त्रिपरिषद (संघ में) - लोक सभा के बहुमत के समर्थन पर ही अपने अस्तित्व के लिए निर्भर करती है। राज्य में मन्त्रिपरिषद अपने अस्तित्व के लिए विधानसभा के बहुमत के समर्थन पर निर्भर करती है। लोकसभा, विधान सभा - दोनों निम्न सदन हैं, जनप्रतिनिधि सदन है। इनका निर्वाचन जनता प्रत्यक्षरूप से करती है।

ड. कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योंकि कार्यपालिका का गठन व्यवस्थापिका के सदस्यों में से ही किया जाता है।

5. एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन - यद्यपि भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। किन्तु उसके साथ वहाँ के एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है। क्योंकि भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक बहुलता पाई जाती है। इस लिए इनकी अपनी सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक अस्मिता की रक्षा के लिए संघात्मक शासन प्रणाली अपनाया गया है। लेकिन संघात्मक शासन के साथ राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है। इस क्रम में हम पहले भारतीय संविधान में संघात्मक शासन के लक्षणों को जानने का प्रयास करेंगे। जो निम्न लिखित है:-

1. लिखित निर्मित और कठोर संविधान
2. केन्द्र(संघ) और राज्य की शक्तियों का विभाजन (संविधान द्वारा)

3. स्वतन्त्र, निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय जो संविधान के रक्षक के रूप में कार्य करेगी। संविधान के विधिक पक्ष में कही अस्पष्टता होगी तो उसकी व्याख्या करेगी। साथ ही साथ नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करेगी।

किन्तु यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि भारतीय संघ हेतु, कनाडा के संघ का अनुसरण करते हुए संघीय सरकार (केन्द्र सरकार) को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। भारतीय संविधान के द्वारा यद्यपि संघात्मक शासन तो अपनाया गया है किन्तु उसके साथ मजबूत केन्द्र की स्थापना हेतु, निम्नलिखित एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है-

1- केन्द्र और राज्य में शक्ति विभाजन केन्द्र के पक्ष में हैं क्योंकि तीन सूची - संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची में। संघ सूची में संघ सरकार को, राज्य सूची पर राज्य सरकार को और समवर्ती सूची पर संघ और राज्य दोनों को कानून बनाने का अधिकार होता है किन्तु दोनों के कानूनों में विवाद होने पर संघीय संसद द्वारा निर्मित कानून ही मान्य होता है। इन तीन सूचियों के अतिरिक्त जो अवशिष्ट विषय हो अर्थात् जिनका उल्लेख इन सूचियों में न हो उन पर कानून बनाने का अधिकार भी केन्द्र सरकार का होता है।

इसके अतिरिक्त राज्य सूची के विषयों पर भी संघीय संसद को कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है जैसे- संकट की घोषणा होने पर दो या दो से अधिक राज्यों द्वारा प्रस्ताव द्वारा निवेदन करने पर,, राज्य सभा द्वारा पारित संकल्प के आधार पर।

एकात्मक लक्षण- इसके अतिरिक्त

इकहरी नागरिकता- संघात्मक शासन में दोहरी नागरिकता होती है एक तो उस राज्य की जिसमें वह निवास करता है दूसरी संघ की । जैसा कि अमेरिका में है। जबकि भारत में इकहरी नागरिकता है अर्थात् कोई व्यक्ति केवल भारत का नागरिक होता है।

एकीकृत न्यायपालिका- एक संविधान, अखिल भारतीय सेवाएँ, आपातकालीन उपबन्ध, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति आदि। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संविधान संघात्मक शासन है जिसमें संकटकालीन स्थितियों से निपटने हेतु कुछ एकात्मक लक्षण भी पाए जाते हैं।

4.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबन्ध

जैसा कि हम प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर चुके हैं कि हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण की प्रक्रिया में दुनियाँ में तत्कालीन समय में प्रचलित कई संविधानों का अध्ययन किया और उसमें से महत्वपूर्ण पक्षों को , जो हमारे देश में उपयोगी हो सकते थे उन्हें अपने देश-काल की परिस्थितियों के अनुरूप ढालकर संविधान में उपबन्धित किया।

वे स्रोत निम्नलिखित हैं, जिनका प्रभाव भारतीय संविधान पर पड़ा-

स्रोत	विषय
भारतीय शासन अधिनियम 1935	तीनों सूचियों, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियाँ
.2. ब्रिटिश संविधान	संसदीय शासन
.3. अमरीकी संविधान	प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, उपराष्ट्रपति का पद, संविधान में संशोधन प्रक्रिया
.4. आयरलैण्ड का संविधान	नीति निदेशक तत्व, राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचक मण्डल
.5. कनाडा का संविधान	संघात्मक शासन, अवशिष्ट शक्तियाँ केंद्र के पास होना
.6. आस्ट्रेलिया का संविधान	समवर्ती सूची
.7. दक्षिण अफ्रीका का संविधान	संविधान में संशोधन की प्रक्रिया
.8. पूर्व सोवियत संघ	मूल कर्तव्य

4.6 लोक कल्याणकारी राज्य

लंबे संघर्ष के पश्चात देश को आजादी मिली थी। जिसमें संसदीय लोकतन्त्र को लागू किया गया है। संसदीय लोकतन्त्र में अन्तिम सत्ता जनता में निहित होती है। इसलिए भारतीय संविधान के द्वारा ही भारत को कल्याणकारी राज्य के रूप में स्थापित करने का प्रावधान भारतीय संविधान के विभिन्न भागों में किए गए/ विशेष रूप से भाग 4 के नीति निदेशक तत्व में / मौलिक अधिकारों में अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता के समाप्ति की घोषणा के साथ इसे दण्डनीय अपराध माना गया है। प्रस्तावना में सामाजिक आर्थिक न्याय की स्थापना का लक्ष्य घोषित किया गया। मौलिक अधिकार के अध्याय में किसी भी नागरिक के साथ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर विभेद का निषेध किया गया। साथ ही अब तक समाज की मुख्यधारा से कटे हुए वंचित समुदायों के लिए विशेष प्रावधान किए गए, जिससे वे भी समाज की मुख्यधारा से जुड़कर राष्ट्र के विकास में अपना अमूल्य योगदान दे सकें।

अभ्यास प्रश्न

1. भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। सत्य असत्य/
2. संसदीय शासन प्रणाली की विशेषता -नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद। सत्य असत्य/
3. लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। सत्य असत्य/
4. भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। सत्य असत्य/

5.पंथ निरपेक्ष शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है। सत्यअसत्य/

4.7 सारांश

इकाई ४ के अध्ययन के बाद आप को यह जानने में सहायक हुआ कि भारतीय संविधान की क्या विशेषताएं हैं | जिसमें यह भी जानने का अवसर प्राप्त हुआ कि किन कारणों से यह संविधान इतना विस्तृत हुआ है क्योंकि हमारे नवजात लोकतंत्र की रक्षा और इसके विकास के लिए यह नितांत आवश्यक था कि संभावित सभी विषयों का स्पष्ट रूप से समावेश कर दिया जाए | जैसे मूल अधिकार और नीतिनिदेशक तत्वों को मिलाकर संविधान एक बड़ा भाग हो जाता है इसी प्रकार से अनुसूचित जातियों और जनजातियों से सम्बंधित उपबंध संघात्मक शासन अपनाने के कारण केंद्र -राज्य सम्बन्ध और संविधान के संरक्षण, उसकी व्याख्या और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में स्वतंत्र निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायलय की स्थापना का प्रावधान किया गया है जिसकी वजह से संविधान विस्तृत हुआ है इसके साथ -साथ विभिन्न संवैधानिक आयोगों की स्थापना जैसे निर्वाचन आयोग ,अल्पसंख्यक आयोग ,अनुसूचित जाति आयोग ,अनुसूचित जनजाति आयोग ,राजभाषा आयोग आदि कारणों से संविधान विस्तृत हुआ | इसके साथ ही साथ हमने इस तथ्य का भी अध्ययन किया की संविधान निर्माण में संविधान निर्माता किन देशों में प्रचलित किस पक्ष को अपने देश की आवश्यकताओं के अनुरूप पाए | जिस कारण से उन्होंने भारतीय संविधान में शामिल किया है |इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमें संसदीय और अध्यक्षीय शासन के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त हुई |

4.8 शब्दावली:-

लोक प्रभुसत्ता:- जहाँ सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित हो वहाँ लोक प्रभुसत्ता होती है।

धर्म निरपेक्षता:- राज्य का कोई धर्म न होना राज्य के द्वारा सभी धर्मों के प्रति समभाव का होना।

समाजवादी राज्य (भारतीय संन्दर्भ में):- जहाँ राज्य के द्वारा आर्थिक असमानताओं को कम करने का प्रयत्न किया जाए।

संघीय व्यवस्था:- केन्द्र और राज्य दोनों संविधान के द्वारा शक्ति विभाजन अपने -2 क्षेत्र में दोनों संविधान की सीमा में स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करें।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति	-	डॉ रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति	-	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति	-	महेन्द्र प्रताप सिंह

4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय संविधान की विशेषताओं की विवेचना कीजिये ?
2. आप इस बात से कहाँ तक सहमत हैं कि भारतीय संविधान एकात्मक लक्षणों वाले संघात्मक शासन की स्थापना करता है?

इकाई 5 राष्ट्रपति

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 राष्ट्रपति

5.3.1 राष्ट्रपति का निर्वाचन

5.4 राष्ट्रपति की शक्तियाँ

5.4.1 कार्यपालिका शक्तियाँ

5.4.2 विधायी शक्तियाँ

5.4.3 राजनयिक शक्तियाँ

5.4.4 सैनिक शक्तियाँ

5.4.5 न्यायिक शक्तियाँ

5.4.6 आपात कालीन शक्तियाँ

5.5 राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाइयों के अध्ययन से आप को , भारतीय प्रशासन के विभिन्न पक्षों के बारे में जानने में सहायता मिली है। प्रस्तुत इकाई में हम भारत में संघ के कार्यपालिका के प्रमुख , राष्ट्रपति के बारे में जान सकेंगे। इसके अध्ययन से हम राष्ट्रपति के निर्वाचन , उनकी शक्तियों और उनकी संवैधानिक स्थिति तथा वास्तविक स्थिति के बारे में भी जान सकेंगे।

इस इकाई के अध्ययन से हमें आगे की इकाइयों में प्रधानमंत्री सहित मन्त्रिपरिषद को वास्तविक कार्यपालिका प्रधान के रूप में , समझने में सहायता मिलेगी। साथ ही संसदीय शासन की परम्परा में राष्ट्रपति पद के महत्व को और भी स्पष्ट रूप से समझने में सहायता मिलेगी।

5.2 उद्देश्य -

इस इकाई के अध्ययन से आप राष्ट्रपति के बारे में जान सकेंगे-

1. इस इकाई के अध्ययन के बाद आप राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया के बारे में जान सकेंगे।
2. राष्ट्रपति की शक्तियों को जान सकेंगे।
3. आप यह जान सकेंगे कि वह कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान ही नहीं है।

5.3 राष्ट्रपति -

शासन के तीन अंग होते हैं। जो क्रमशः व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका है। व्यवस्थापिका का सम्बन्ध कानून निर्माण से है, कार्यपालिका का सम्बन्ध व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानूनों और नीतियों के क्रियान्वयन से है, जबकि न्यायपालिका का सम्बन्ध न्यायिक कार्यों से है।

संघ की कार्यपालिका के शीर्ष पर राष्ट्रपति होता है। चूँकि राष्ट्रपति संवैधानिक प्रधान है (नाममात्र की कार्यपालिका) फिर भी उनके पद को सत्ता और गरिमा से युक्त किया गया है। वह राज्य के शक्तिशाली शासक होने की अपेक्षा, भारत की एकता के प्रतीक हैं। उनकी स्थिति वैधानिक अध्यक्ष की है, फिर भी शासन में उनका पद एक धुरी के समान है जो संकट के समय संवैधानिक तंत्र को संतुलित कर सकता है।

5.4 राष्ट्रपति का निर्वाचन -

भारतीय संविधान के अनुसार भारत एक गणतन्त्र है। गणतन्त्र में राष्ट्र का अध्यक्ष वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित होता है। राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति से होता है।

योग्यता - राष्ट्रपति पद के निर्वाचन के लिए निम्नलिखित योग्यताएं आवश्यक हैं -

- 1- वह भारत का नागरिक हो
- 2- वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो ,
- 3- वह लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो ,
- 4- वह संघ सरकार और राज्य सरकारों या स्थानीय सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर न हो,
- 5- राष्ट्रपति ,उपराष्ट्रपति ,राज्यपाल और मन्त्रियों के पद लाभ के पद नहीं माने जाते ,इसलिए उन्हें त्यागपत्र देने की आवश्यकता नहीं होती।

अनु. 54 के अनुसार राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल के सदस्य करते हैं जिसमें --

1. संसद के दोनो सदस्य (लोकसभा, राज्यसभा) के निर्वाचित सदस्य।
2. राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य शामिल होंगे।

राष्ट्रपति के निर्वाचन में संघीय संसद के साथ-साथ राज्यों के विधान सभाओं के सदस्यों को शामिल कर इस बात का प्रयत्न किया गया है, कि राष्ट्रपति का निर्वाचन दलीय आधार पर न हो तथा संघ के इस सर्वोच्च पद को वास्तव में राष्ट्रीय पद का रूप प्राप्त हो सके।

भारतीय संविधान के 71वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि पाण्डिचेरी और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की विधानसभाओं के सदस्य, राष्ट्रपति के निर्वाचक मंडल में शामिल किये जायेंगे।

1957 के राष्ट्रपति चुनाव में कुछ स्थान रिक्त होने पर राष्ट्रपति के चुनाव की वैधता को चुनौती दी गई। न्यायालय ने अपने निर्णय में ऐसी स्थिति में भी चुनाव संभव बताया। इस समस्या के निराकरण

हेतु 1961 में 11वें संवैधानिक संशोधन द्वारा अनुच्छेद 71 में उपबन्ध किया गया है कि निर्वाचक मंडल का स्थान रिक्त होने पर भी चुनाव वैध है।

राष्ट्रपति का निर्वाचन ऊपर वर्णित निर्वाचन मण्डल द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है अनु 55(3)। मतदान गुप्त होता है। इस पद्धति में चुनाव में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रत्यासी को न्यूनतम कोटा प्राप्त करना होता है। न्यूनतम काटा निर्धारण का सूत्र इस प्रकार है-

दिये गये वैध मतों की संख्या

$$\text{न्यूनतम कोटा} = \frac{\text{राज्य की जनसंख्या}}{\text{राज्य विधानसभा के निर्वाचित विधायकों की संख्या}} + 1$$

राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचन मण्डल के सदस्यों के मतों का मूल्य समान नहीं होता है। कुछ राज्यों की विधानसभाओं के सदस्य अधिक जनसंख्या का और कुछ कम जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस लिए विधान सभा सदस्य के मत का मूल्य उनकी जनसंख्या के अनुपात में होता है। साथ ही राष्ट्रपति के चुनाव में केन्द्र और राज्य को बराबर की हिस्सेदारी देने के लिए सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों की विधानसभाओं के समस्त सदस्यों के मत मूल्य और संसद के सभी निर्वाचित सदस्यों के मतों के मूल्य बराबर रखने पर जोर दिया जाता है। जिससे राष्ट्रपति का चुनाव दलगत राजनीति का शिकार न हो और वह राष्ट्र का सच्चा प्रतिनिधि हो सके।

मत मूल्य निकालने का तरीका -

$$\text{विधान सभा के एक सदस्य के मत का मूल्य} = \frac{\text{राज्य की जनसंख्या}}{\text{राज्य विधानसभा के निर्वाचित विधायकों की संख्या}} \% \quad 1000$$

अगर शेष 500 से अधिक हो तो परिणाम में 1 और जोड़

दिया जाएगा।

सभी राज्यों की

$$\text{संसद सदस्य के एक मत का मूल्य} = \frac{\text{विधानसभा सदस्यों के मतों का मूल्य}}{\text{संसद के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या}}$$

अगर शेष 0.5 से अधिक हो तो परिणाम में 1 और जोड़ दिया जाएगा।

राष्ट्रपति के निर्वाचन में उस प्रत्याशी को निर्वाचित घोषित किया जाता है जो न्यूनतम कोटा अर्थात् आधे से अधिक मत प्राप्त करे। राष्ट्रपति के निर्वाचन में जितने प्रत्याशी होते हैं, मतदाता को उतने मत देने का अधिकार होता है। मतदाता अपना मत वरीयता क्रम के आधार पर देता है। जैसे

	प्रत्याशी	A	B	C	D
मतदाता	P	1	3	2	4
	G	2	1	3	4
	R	4	1	2	3
	S	3	1	2	4
	T	2	3	1	4

इस आरेख में चार प्रत्याशी A, B, C, D, है मतदाता P, G, R, S, T हैं जिन्होंने अपने मत वरीयता के आधार पर राष्ट्रपति प्रत्याशी को दिये हैं। सर्वप्रथम प्रथम वरीयता के मत की गणना की जाती है। यदि उसे न्यूनतम कोटा प्राप्त हो जाय तो वह विजयी घोषित होता है। यदि कोटा न प्राप्त हो सके तो द्वितीय वरीयता के मत की गणना होती है। इस द्वितीय दौर में जिस उम्मीदवार को प्रथम वरीयता का सबसे कम मत मिला हो उसे गणना से बाहर कर, उसके द्वितीय वरीयता के मतमूल्य को स्थानान्तरित कर दिया जाता है। यदि द्वितीय दौर की गणना में किसी प्रत्याशी को न्यूनतम कोटा न प्राप्त हो तीसरे दौर की मतगणना होती है, जिसमें दूसरे दौर की मतगणना में सबसे कम मतमूल्य पाने वाले प्रत्याशी के तीसरे वरीयता के मतमूल्य को शेष उम्मीदवारों को स्थानान्तरित कर दिया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक अपनायी जाती है जब तक किसी प्रत्याशी को न्यूनतम कोटा न प्राप्त हो जाय।

अभ्यास प्रश्न –

राष्ट्रपति के चुनाव में कौन कौन भाग लेता है1?

-2 राष्ट्रपति का कार्यकाल कितने वर्ष का होता है?

-3 राष्ट्रपति पर महाभियोग किस अनुच्छेद के तहत लगाया जाता है?

राष्ट्रपति द्वारा शपथ - राष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करने से पूर्व अनुच्छेद 60 के तहत भारत के मुख्य न्यायाधीश या उनकी अनुपस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश के समक्ष अपने पद की शपथ लेता है।

राष्ट्रपति की पदावधि -संविधान के अनुच्छेद 56 के अनुसार राष्ट्रपति अपने पद ग्रहण की तिथि से ,पाँच वर्ष की अवधि तक अपने पद पर बना रहता है। इस पाँच वर्ष की अवधि के पूर्व भी वह उपराष्ट्रपति को वह अपना त्यागपत्र दे सकता है या उसे पाँच वर्ष की अवधि से पूर्व संविधान के उल्लंघन क लिए संसद द्वारा महाभियोग से हटाया जा सकता है। राष्ट्रपति अपने पाँच वर्ष के कार्यकाल पूर्ण होने के बाद तक अपने पद पर बना रहता है जब तक कि इसके उत्तराधिकारी द्वारा पद ग्रहण न कर लिया जाए।

उन्मुक्तियाँ – राष्ट्रपति अपने कार्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होता है। अपने पद के कर्तव्यों एवं शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उनके संबन्ध में उसके विरुद्ध न्यायालय में मुकदमा नहीं चलाला जा सकता है।

वेतन - अनुच्छेद 59(3) अनुसार कार्यकाल के दौरान उनके वेतन और उपलब्धियों में किसी प्रकार की कमी नहीं की जा सकती है।

महाभियोग प्रक्रिया - राष्ट्रपति को अनुच्छेद 61के अनुसार महाभियोग प्रक्रिया द्वारा, संविधान के अतिक्रमण के आधार पर हटाया जा सकता है। संसद के जिस सदन में महाभियोग का संकल्प प्रस्तुत किया गया हो ,उसके एक चौथाई सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर सहित आरोप पत्र राष्ट्रपति को 14 दिन पूर्व दिया जाना आवश्यक है। इस सदन में संकल्प को दो तिहाई बहुमत से पारित करके दूसरे सदन को भेजा जाएगा जो राष्ट्रपति पर लगे इन आरोपों की जाँच करेगा। इस दौरान राष्ट्रपति स्वयं या अपने प्रतिनिधि के द्वारा अपना पक्ष रख सकता है। यदि दूसरा सदन आरोपों को सही पाता है और उसे अपनी संख्या के बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई सदस्यों द्वारा पारित कर दिया जाता है तो राष्ट्रपति पद त्याग के लिए बाध्य होता है।

भारत के राष्ट्रपति का क्रमवार विवरण इस प्रकार है ---

क्रम संख्या	राष्ट्रपति का नाम	कब से	कब तक
1	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद	26 जनवरी 1950	12 मई 1962
2	सर्वपल्ली राधा कृष्णन	13 मई 1962	13 मई 1967
3	जाकिर हुसैन	13 मई 1967	3 मई 1969
4	वराहगिरी वेंकट गिरी	3 मई 1969	20 जुलाई 1969
5	मुहम्मद हिदायतुल्लाह	20 जुलाई 1969	24 अगस्त 1969
6	वराहगिरी वेंकट गिरी	24 अगस्त 1969	24 अगस्त 1974
7	फकरुद्दीन अली अहमद	24 अगस्त 1974	11 फरवरी 1977
8	बी.डी. जत्ती	11 फरवरी 1977	25 जुलाई 1977
9	नीलम संजीव रेड्डी	25 जुलाई 1977	25 जुलाई 1982

10	ज्ञानीजैल सिंह	25 जुलाई 1982	25 जुलाई 1987
11	रामास्वामी वेंकटरमन	25 जुलाई 1987	25 जुलाई 1992
12	शंकरदयाल शर्मा	25 जुलाई 1992	25 जुलाई 1997
13	कोचेरिल रमण नारायणन	25 जुलाई 1997	25 जुलाई 2002
14	ए.पी.जे. अबुलकलाम	25 जुलाई 2002	25 जुलाई 2007
15	प्रतिभा पाटिल	25 जुलाई 2007	25 जुलाई 2012
16	प्रणव मुखर्जी	25 जुलाई 2007	25 जुलाई 2017
17	राम नाथ कोविंद	25 जुलाई 2017	आगे जारी

5.5 राष्ट्रपति की शक्तियाँ -

हमारे संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को व्यापक शक्तिया प्रदान की गयी हैं ,जो निम्नलिखित है -

5.5.1 -कार्यपालिका शक्तियाँ

संविधान के अनुच्छेद 53(1) के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इस शक्ति का प्रयोग इस संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करेगा ।

अनुच्छेद 74 के अनुसार राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा । राष्ट्रपति अपने शक्तियों का प्रयोग करने में मंत्रिमंडल की सलाह के अनुसार कार्य करेगा । इसके आगे संविधान के 44वें संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा यह जोड़ा गया कि यदि मंत्रिपरिषद की सलाह पर राष्ट्रपति पुनर्विचार करने को कह सकेगा, परन्तु राष्ट्रपति, ऐसे पुनर्विचार के पश्चात दी गयी सलाह के अनुसार कार्य करेगा । राष्ट्रपति की कार्यपालिका संबन्धी शक्तियों में मंत्रिपरिषद का गठन महत्वपूर्ण है । संसदीय परम्परा के अनुरूप निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल के नेता को राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करता है तथा प्रधानमंत्री की सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है । अब तक नियुक्त अधिकांश प्रधानमंत्री लोकसभा के सदस्य रहे हैं । श्रीमती इन्दिरा गाँधी पहली ऐसी प्रधानमंत्री थी जो राज्यसभा से मनोनीत सदस्य थी । तथा प्रधानमंत्री डा मनमोहन सिंह भी राज्यसभा सदस्य थे । संविधान के 91वें संशोधन 2003 द्वारा अनुच्छेद 75(1-क) के अनुसार मन्त्री राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करते हैं । अनुच्छेद 75(3) के अनुसार, मंत्रिपरिषद के सदस्य , सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं । अनुच्छेद 75(5) के अनुसार, कोई भी मन्त्री, निरन्तर छः मास तक संसद के किसी सदन का सदस्य हुए बिना भी मन्त्री रह सकता है ।

यहाँ एक महत्वपूर्ण तथ्य को स्पष्ट करना आवश्यक है कि ,जब लोकसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत न मिले अथवा लोकसभा में अविश्वास मत के कारण ,मन्त्रिपरिषद को त्यागपत्र देना पड़े

,ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति किस व्यक्ति को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करे, इस सम्बन्ध में संविधान मौन है। इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति को स्वविवेकाधिकार प्राप्त है। इस संबंध में संसदीय परम्परा के अनुरूप सर्वप्रथम सबसे बड़े दल के नेता तथा जो बहुमत सिद्ध कर सकता है उसे प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करते हैं।

इसके साथ-2 राष्ट्रपति को संघ के महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति की शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। भारत के महान्यायवादी की नियुक्ति, नियन्त्रक-महालेखक की नियुक्ति, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति, राज्यपाल की नियुक्ति, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्य की नियुक्ति, मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयोग के अन्य सदस्य की नियुक्ति, अनुसूचित जातियों जनजातियों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति, भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति।

ये सभी नियुक्तियाँ राष्ट्रपति द्वारा मन्त्रिपरिषद की सलाह पर या संविधान द्वारा निश्चित व्यक्तियों से परामर्श के पश्चात की जाती है। राष्ट्रपति को उपर्युक्त अधिकारियों को हटाने की भी शक्ति प्राप्त है।

5.5.2.विधायी शक्तियाँ -

भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार राष्ट्रपति संसद का अभिन्न अंग है। संसद का गठन राष्ट्रपति, लोकसभा और राज्यसभा से मिलकर होता है। इस प्रकार संसद का महत्वपूर्ण अंग होने के नाते राष्ट्रपति को महत्वपूर्ण विधायी शक्तियाँ प्राप्त हैं। कोई भी विधेयक संसद के दोनों सदनों (लोकसभा.राज्यसभा) द्वारा पारित होने के बाद राष्ट्रपति की स्वीकृति से ही अधिनियम का रूप लेता है।

संसद का अंग होने के नाते राष्ट्रपति को लोकसभा और राज्यसभा का सत्र आहूत करने और उसका सत्रावसान करने की शक्ति है। अनुच्छेद 85 के अनुसार वह लोकसभा का विघटन कर सकता है। अनुच्छेद 108 के अनुसार वह साधारण विधेयक पर दोनों सदनों में विवाद होने पर संयुक्त अधिवेशन बुला सकता है। अनुच्छेद 87 के अनुसार राष्ट्रपति प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात प्रथम सत्र के प्रारम्भ पर और प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र के प्रारम्भ पर, एक साथ संसद के दोनों सदनों में अभिभाषण करता है। इसके अतिरिक्त किसी एक सदन या दोनों सदनों में एक साथ अभिभाषण करने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति अनुच्छेद 80 के अनुसार राज्य सभा में 12 सदस्यों को मनोनीत कर सकता है जो साहित्य, कला, विज्ञान, या समाजसेवा के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त हों और अनुच्छेद 331 के अनुसार लोकसभा में दो सदस्यों को आंग्लभारतीय समुदाय से मनोनीत कर सकता है।

संविधान के उपबन्धों और कुछ अधिनियमों का अनुपालन करने के लिए, राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि कुछ प्रतिवेदनों को संसद के समक्ष रखवायेगा। इसका उद्देश्य यह है कि संसद को उन

प्रतिवेदनों और उस पर की गयी कार्यवाही पर विचार करने का अवसर प्राप्त हो जाएगा। राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि निम्नलिखित प्रतिवेदनों और दस्तावेजों को संसद के समक्ष रखवाए --

- 1- अनुच्छेद 112 के अनुसार -वार्षिक वित्तीय विवरण (बजट)
- 2-अनुच्छेद 151 के अनुसार -नियन्त्रक महालेखक का प्रतिवेदन
- 3-अनुच्छेद 281 के अनुसार - -वित्त आयोग की सिफारिशें
- 4-अनुच्छेद 323 के अनुसार -संघ लाकसेवा आयोग का प्रतिवेदन
- 5-अनुच्छेद 340 के अनुसार - पिछड़ा वर्ग आयोग का प्रतिवेदन
- 6-अनुच्छेद 348 के अनुसार -राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग का प्रतिवेदन
- 7-अनुच्छेद 394 क के अनुसार -राष्ट्रपति अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए .भारतीय संविधान के अंग्रेजी भाषा में किए गये प्रत्येक संशोधन का हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रकाशित करायेगा। इसके अतिरिक्त कुछ विषयों पर कानून बनाने के लिए .उस पर राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति आवश्यक है। जैसे-

अनुच्छेद 3- के अनुसार -नये राज्यों के निर्माण या विद्यमान राज्य की सीमा में परिवर्तन से संबंधित विधेयकों पर। अनुच्छेद 117(1)-धन विधेयकों के संबंध में। अनुच्छेद 117(3) ऐसे व्यय से संबंधित विधेयक, जो भारत की संचित निधि से किया जाना हो। अनुच्छेद 304 के अनुसार-राज्य सरकारों के ऐसे विधेयक जो व्यापार और वाणिज्य की स्वतन्त्रता पर प्रभाव डालते हों।

इस बात का हम उल्लेख कर चुके हैं कि संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कोई भी विधेयक कानून तब तक नहीं बन सकता जब तक कि उस पर राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति न प्रदान करें। राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति दे सकता है. विधेयक को रोक सकता है या दोनों सदनों द्वारा पुनर्विचार के लिए वापस कर सकता है। यदि संसद पुनर्विचार के पश्चात विधेयक को राष्ट्रपति को वापस करती है, तो वह अपनी स्वीकृति देने के लिए बाध्य है। यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि राष्ट्रपति धन विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस नहीं कर सकता है क्योंकि धन विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति से ही लोकसभा में रखा जाता है।

2006 में लाभ के पद से संबंधित संसद अयोग्यता निवारण संशोधन विधेयक लोक सभा और राज्यसभा द्वारा पारित होने के पश्चात राष्ट्रपति के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया गया जिसे राष्ट्रपति ए.पी.जे.कलाम ने पुनर्विचार के लिए .यह कहते हुए वापस कर दिया कि संसदों और विधायकों को लाभ के पद के दायरे से बाहर रखने के व्यापक आधार बताए जाएं। संसद के दोनों सदनों ने इसे पुनः मूल रूप में ही पारित कर दिया। यह पहला अवसर था कि राष्ट्रपति की आपत्तियों पर विचार किए बिना ही विधेयक को उसी रूप में पारित कर दिया गया। राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित विधि के संबंध में भी राष्ट्रपति को विभिन्न शक्तियाँ प्राप्त हैं -

1-राज्य विधानमंडल द्वारा पारित ऐसा विधेयक जो उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को प्रभावित करता है तो राज्यपाल उस विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित कर लेगा।

2-वित्तीय आपात काल लागू होने की स्थिति में .राष्ट्रपति यह निर्देश दे सकता है कि राज्य विधानसभा में प्रस्तुत किये जाने से पूर्व सभी धन विधेयकों पर उसकी अनुमति ली जाय।

3-सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधेयकों पर .राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है।

4-राज्य के अन्दर या अन्य राज्यों के साथ व्यापार पर प्रतिबंध लगाने वाले विधेयकों को विधानसभा में प्रस्तुत करने से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक है।

अध्यादेश जारी करने की शक्ति -

जब संसद सत्र में न हो और राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाय कि वर्तमान परिस्थिति में यथाशीघ्र कार्यवाही की आवश्यकता है तो. वे अनुच्छेद 123 के अनुसार अध्यादेश जारी करते हैं। इस अध्यादेश का प्रभाव संसद द्वारा पारित और राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत अधिनियम के समान ही होता है। किन्तु अधिनियम स्थायी होता है और अध्यादेश का प्रभाव केवल छः माह तक ही रहता है। छः माह के अन्दर यदि अध्यादेश को संसद की स्वीकृति न प्राप्त हो तो वह स्वतः ही समाप्त हो जाएगा।

वीटो (निषेधाधिकार) की शक्ति - यह कार्यपालिका की शक्ति है जिसके द्वारा वह किसी विधेयक को अनुमति देने से रोकता है। अनुमति देने इन्कार करता है या अनुमति देने में विलम्ब करता है। वीटो के कई प्रकार हैं -

1-आत्यंतिक वीटो या पूर्ण वीटो -यह वह वीटो है जिसमें राष्ट्रपति संसद द्वारा पारित किसी विधेयक को अनुमति देने से इन्कार कर देता है। पूर्ण वीटो का प्रयोग धन विधेयक के संबंध में नहीं किया जा सकता क्योंकि धन विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति से ही लोकसभा में प्रस्तुत किया जाता है।

2-निलम्बनकारी वीटो -

जिस वीटो को सामान्य बहुमत से समाप्त किया जा सकता है उसे निलम्बनकारी वीटो कहा जाता है। इस प्रकार के वीटो का प्रयोग हमारे राष्ट्रपति उस समय करते हैं जब अनुच्छेद 111 के अनुसार वे किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस करते हैं।

3-पाकेट वीटो या जेबी वीटो -संसद द्वारा पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति न तो अनुमति देता है और न ही पुनर्विचार के लिए वापस करता है, तब वह जेबी वीटो का प्रयोग करता है। हमारे संविधान में यह स्पष्ट उपबन्ध नहीं है कि राष्ट्रपति कितने समय के भीतर विधेयक को अपनी अनुमति देगा। फलतः वह विधेयक को अपनी मेज पर अनिश्चित काल तक रख सकता है। जेबी वीटो का प्रयोग 1986 में संसद द्वारा पारित भारतीय डाक अधिनियम के संदर्भ में राष्ट्रपति ज्ञानीजैल सिंह ने किया था।

5.4.3 राजनयिक शक्तियाँ -

यहाँ हम स्पष्ट करना चाहते हैं कि इक्कीसवीं शदी में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया चल रही है। इस प्रक्रिया ने एक राष्ट्र के हित को विश्व के अन्य राष्ट्रों के साथ जोड़ दिया है। राष्ट्रों के मध्य आपसी संबंधों का संचालन राजनय के द्वारा होता है। हमारे देश में राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान है। इस लिए अन्य राष्ट्रों के साथ संबंधों के संचालन की शक्ति भी राष्ट्रपति को प्रदान की गयी है। इस लिए अन्य राष्ट्रों के साथ संबंधों का संचालन राष्ट्रपति के नाम से किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय मामले में वे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत की ओर से भेजे जाने वाले राजदूत की नियुक्ति भी राष्ट्रपति ही करते हैं। दूसरे देशों से भारत में नियुक्त होने वाले राजदूत और उच्चायुक्त अपना परिचयपत्र राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। परन्तु इन सभी विषयों में राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार कार्य करता है।

5.4.4 सैनिक शक्तियाँ -

जैसा कि हम इस इकाई में पहले स्पष्ट कर चुके हैं कि संघ की समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित है। इसी कारण से वह तीनों सेनाओं का प्रधान सेनापति है। किन्तु हमारे राष्ट्रपति की सैन्य शक्तिया अमेरिका के राष्ट्रपति के समान नहीं है क्योंकि ये अपनी शक्तियों के प्रयोग संसद द्वारा निर्मित कानूनों के अनुसार करते हैं। जब कि अमेरिका के राष्ट्रपति पर इस प्रकार के कोई प्रतिबंध नहीं है।

5.4.5 न्यायिक शक्तियाँ-

हमारे संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को व्यापक रूप से न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त हैं जो निम्नलिखित हैं -

1- न्यायाधीशों की नियुक्ति--अनुच्छेद 217 के अनुसार राष्ट्रपति उच्च न्यायालय और 124 के तहत उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करते हैं। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति करते समय वह उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश से परामर्श कर सकते हैं। अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करते हैं।

2- क्षमादान की शक्ति—राष्ट्रपति को कार्यपालिका और विधायी शक्तियों के साथ-साथ न्यायिक शक्तियाँ भी प्राप्त हैं, जिनमें क्षमादान की शक्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण है जो अनुच्छेद 72 के अनुसार प्राप्त है। वे इस क्षमादान की शक्ति के तहत किसी दोषी ठहराये गये व्यक्ति के दण्ड को क्षमा तथा सिद्ध दोष के निलंबन, परिहार या लघुकरण की शक्ति प्राप्त है। राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग निम्नलिखित परिस्थितियों में करते हैं -सेना द्वारा दिये गये दण्ड के मामले में..जब दण्ड ऐसे विषयों के मामले में दिया गया हो जो संघ के कार्यपालिका क्षेत्र में आते हों। ऐसी परिस्थिति में जब किसी व्यक्ति को मृत्यु दण्ड दिया गया हो। क्षमादान की शक्ति का प्रयोग भी वह मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार करता है।

क्षमादान की इस शक्ति को देने के पीछे सोच यह है कि न्यायाधीश भी मनुष्य होते हैं। इस लिए उनके द्वारा की गयी किसी भूल को सुधारने की गुंजाइस बनी रहे।

3--उच्चतम न्यायालय से परामर्श लेने का अधिकार- हमारे संविधान के अनुच्छेद 143 के अनुसार .यदि राष्ट्रपति को ऐसा कभी प्रतीत होता है कि विधि या तथ्य का कोई सारवान प्रश्न उत्पन्न हुआ है या उत्पन्न होने की संभावना है जो ऐसी प्रकृति और व्यापक महत्व का है तो उस पर उच्चतम न्यायालय से राय मांग सकता है। इस प्रकार की राय राष्ट्रपति पर बाध्यकारी नहीं होती है। इसके साथ-साथ उच्चतम न्यायालय को, यदि वह आवश्यक समझे तो .अपनी राय देने से इन्कार कर सकता है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति को अन्य अधिकार प्राप्त है -जैसे- संविधान के अनुच्छेद 130 के अनुसार ,यदि सर्वोच्च न्यायालय अपना स्थान दिल्ली के बजाय किसी अन्य स्थान पर स्थानान्तरित करना चाहे तो इसके लिए राष्ट्रपति से अनुमति लेना आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न -

-4 उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति किस अनुच्छेद के तहत की जाती है?

-5 उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति किस अनुच्छेद के तहत की जाती है?

5.5.6 आपात कालीन शक्तियाँ-

हमारे संविधान निर्माता गुलामी की दुखद दास्तान और आजादी की लम्बी लड़ाई के पश्चात आजाद हो रहे देश के दुःखद विभाजन से परिचित थे। इसलिए देश में भविष्य में उत्पन्न होने वाली संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए . संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को विस्तृत रूप आपातकालीन शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। हमारे संविधान के भाग 18 के अनुच्छेद 352 से अनुच्छेद 360 तक राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों का उपबन्ध किया गया है। ये शक्तियाँ निम्नलिखित तीन प्रकार की हैं --

1-राष्ट्रीय आपात - संविधान के अनुच्छेद 352 में यह उपबन्ध किया गया है कि,यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाय कि .युद्ध, वाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के कारण भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा संकट में है या संकट में होने की आशंका है .तो उनके द्वारा आपात की उद्घोषणा की जा सकती है। यहा यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल संविधान में सशस्त्र विद्रोह की जगह आन्तरिक अशान्ति शब्द था। 1975 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के लोकसभा चुनाव को इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा रद्द किये जाने के पश्चात आन्तरिक अशान्ति के नाम पर प्रधानमंत्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति ने राष्ट्रीय आपात की घोषणा की।

1977 के लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस को पराज्य का मुंह देखना पड़ा। जनता पार्टी की सरकार बनी। इस सरकार ने 1979 के 44वें संविधानिक संशोधन के द्वारा आन्तरिक अशान्ति के स्थान पर सशस्त्र विद्रोह शब्द रखा गया। साथ ही यह भी उपबन्ध किया गया कि आपात काल की घोषणा

अब संघ के मंत्रिमंडल (प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल स्तर के अन्य मंत्री) की सिफारिश से राष्ट्रपति द्वारा ही की जाएगी।

राष्ट्रपति द्वारा आपात की घोषणा के एक माह के अन्दर संसद के द्वारा विशेष बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है। दूसरे शब्दों में इस घोषणा को लोकसभा और राज्यसभा द्वारा पृथक-पृथक कुल सदस्य संख्या के बहुमत और उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है। आपात की घोषणा के समय यदि लोकसभा का का विघटन हुआ है तो एक माह के अन्दर राज्यसभा की विशेष स्वीकृति आवश्यक है। नवगठित लोकसभा के द्वारा उसकी प्रथम बैठक के तीस दिन के अन्दर विशेष बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है। आपातकाल को यदि आगे भी लागू रखना है तो उसे प्रत्येक छः माह पश्चात संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यदि आपात काल की घोषणा एक सदन द्वारा की जाय और दूसरा सदन अस्वीकार कर दे तो यह घोषणा एक माह के पश्चात समाप्त हो जाएगी। इस आपात काल को संसद साधारण बहुमत से समाप्त कर सकती है। संविधान के 38वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा यह उपबंध किया गया कि आपात काल की उद्घोषणा को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा इस प्रावधान को समाप्त कर दिया गया। संविधान के प्रारम्भ में यह उपबन्ध था कि अनुच्छेद 352 के अनुसार आपात काल को पूरे देश में ही लागू किया जा सकता है किसी एक भाग में नहीं। परन्तु 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि आपात काल की उद्घोषणा देश के किसी एक भाग या कई भागों में की जा सकती है।

अभी तक कुल तीन बार राष्ट्रीय आपात की घोषणा की गयी है -

26 अक्टूबर 1962 से 10 जनवरी 1968 तक चीनी आक्रमण के कारण। दूसरी बार -पाकिस्तान के द्वारा आक्रमण के कारण 3 दिसंबर 1971 को घोषणा की गयी तथा 25 जून 1975 को आन्तरिक अशान्ति के आधार पर आपात की घोषणा की गयी, इनकी समाप्ति 21 मार्च 1977 को की गयी।

राष्ट्रीय आपात काल को लागू करने का प्रभाव -

1-अनुच्छेद 83(2) के अनुसार जब आपात की उद्घोषणा की गयी हो तब लोकसभा अपने कार्यकाल को एक साल के लिए बढ़ा सकती है। किन्तु आपात की उद्घोषणा के समाप्त होने पर यह कार्यकाल वृद्धि अधिकतम छः मास तक ही चल सकती है।

2-अनुच्छेद 250 के अनुसार आपातकाल की उद्घोषणा के दौरान संबंधित राज्य में संसद को राज्य सूची के किसी भी विषय पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। यद्यपि राज्य की विधायी शक्तियाँ राज्य के पास बनी रहती है किन्तु उन पर निर्णायक शक्ति संसद के पास रहती है।

3-हम ऊपर इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि अनुच्छेद 73 के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति उन विषयों तक सीमित है, जिन पर संसद को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है किन्तु आपातकाल की उद्घोषणा के दौरान केन्द्र सरकार जहाँ आपातकाल लागू है उस राज्य के साथ ही

साथ देश के किसी भी राज्य को यह निदेश दे सकता है कि वह अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग किस प्रकार करे।

4-संविधान के अनुच्छेद 354 में यह स्पष्ट उल्लेख है कि राष्ट्रपति के आदेश से केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबन्ध को उस सीमा तक परिवर्तित किया जा सकता है जिस सीमा तक की स्थिति का सामना करने के लिए आवश्यक हो। राष्ट्रपति के इस प्रकार के आदेश को यथाशीघ्र संसद के समक्ष रखना आवश्यक होता है।

5-मौलिक अधिकारों पर प्रभाव-वाह्य आक्रमण के कारण यदि राष्ट्रीय आपात की घोषणा की गयी है तो अनुच्छेद 358 के अनुसार, अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त स्वतन्त्रता का अधिकार निलंबित हो जाता है। जबकि अनुच्छेद 359 के तहत उन्हीं अधिकारों का निलंबन होता है, जो राष्ट्रपति के आदेश में स्पष्ट किया गया हो। इसके बावजूद भी अनुच्छेद 20 और 21 के तहत प्रदत्त मूल अधिकारों का निलंबन किसी भी स्थिति में नहीं हो सकता है।

अभ्यास प्रश्न -

6- राष्ट्रपति राष्ट्रीय आपात की घोषणा किस अनुच्छेद के अनुसार करता है?

7-1975 में राष्ट्रीय आपात की घोषणा किस आधार पर की गयी थी ?

2- राज्यों में सांविधानिक तन्त्र की विफलता-अनुच्छेद 355 में यह उपबन्ध है कि संघ सरकार का यह दायित्व है कि वह राज्यों की वाह्य आक्रमण और आन्तरिक अशान्ति से रक्षा करे। साथ ही यह भी देखे कि प्रत्येक राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार चल रहा हो। अनुच्छेद 356(1) के अनुसार यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाए कि राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार न चलने के कारण संवैधानिक तन्त्र विफल हो गया है तो वह राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर सकता है। राष्ट्रपति का यह समाधान राज्यपाल के प्रतिवेदन पर भी आधारित हो सकता है। अनुच्छेद 365 के अनुसार राष्ट्रपति किसी राज्य की सरकार के विरुद्ध अनुच्छेद 356 का प्रयोग उस समय भी कर सकता है जब संबंधित राज्य की सरकार संघ सरकार के निर्देशों का पालन करने में असफल हो जाती है।

राज्यों में राष्ट्रपति शासन की घोषणा दो माह के लिए होता है किन्तु यदि घोषणा के पश्चात लोकसभा का विघटन हो जाता है तो नवीन लोकसभा के गठन के बाद प्रथम बैठक के तीस दिन के बाद घोषणा तभी लागू रह सकती है जब कि नवीन लोकसभा उसका अनुमोदन कर दे। इस प्रकार की घोषणा एक बार में छः माह के लिए और अधिकतम तीन वर्ष (पंजाब में पांच वर्ष तक लागू थी) के लिए लागू की जा सकती है। 44वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह उपबन्ध किया गया कि एक वर्ष से अधिक समय तक राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए दो आवश्यक शर्तें हैं --

1-जब संपूर्ण देश में या उसके किसी एक भाग में अनुच्छेद 352 के तहत राष्ट्रीय आपात काल की घोषणा लागू हो।

2-निर्वाचन आयोग इस बात को प्रमाणित करे कि संबंधित राज्य में वर्तमान परिस्थितियों में चुनाव कराना संभव नहीं है।

राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करने का प्रभाव--

1- राष्ट्रपति इस बात की घोषणा कर सकता है कि राज्य के कानून निर्माण की शक्ति का प्रयोग संसद करेगी। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि अनुच्छेद 356 की घोषणा के पश्चात यह आवश्यक दही कि विधानसभा का विघटन कर दिया जाय। विधानसभा को केवल निलंबित भी किया जा सकता है।

2-यदि संसद का सत्र न चल रहा हो तो राष्ट्रपति राज्य की संचित निधि में से आवश्यक खर्च की अनुमति दे सकता है।

3- राष्ट्रपति कार्यपालिका संबंधी सभी या आंशिक कृत्यों को अपने हथ में ले सकता है। उच्च न्यायालय के कार्यों को छोड़कर।

अनुच्छेद 352 और अनुच्छेद 356 की तुलना –

जैसा कि ऊपर आप देख चुके हैं अनुच्छेद 352 और 356 का प्रयोग राष्ट्रपति करते हैं किन्तु दोनों के प्रभावों में अन्तर हैं। जब किसी राज्य में राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा की जाती है तो संसद को समवर्ती सूची के साथ साथ राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है किन्तु राज्य विधान सभा और कार्यपालिका का अस्तित्व बना रहता है और वे अपना कार्य भी करती रहती हैं. परन्तु अनुच्छेद 356 के तहत जब राष्ट्रपति किसी राज्य में संवैधानिक तन्त्र के विफलता की घोषणा करते हैं तो संबंधित राज्य की विधान सभा निलंबित कर दी जाती है और कार्यपालिका संबंधी शक्तिया पूर्णतः या आंशिक रूप से राष्ट्रपति द्वारा ग्रहण कर ली जाती हैं।

अनुच्छेद 356 के तहत संवैधानिक तन्त्र के विफलता की घोषणा की अधिकतम अवधि तीन वर्ष हो सकती है जब कि अनुच्छेद 352 के तहत लागू किया जाने वाला राष्ट्रीय आपात काल को प्रत्येक छः माह के पश्चात संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यह प्रक्रिया तब तक चल सकती है जब तक कि संसद स्वयं के संकल्प से समाप्त न कर दे।

3-- वित्तीय आपात काल --

अनुच्छेद 360 में यह उपबंध किया गया है कि .यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि भारत में या उसके किसी राज्य क्षेत्र में वित्तीय साख को खतरा उत्पन्न हो गया है तो वह वित्तीय संकट की घोषणा कर सकते हैं।

वित्तीय आपात की उद्घोषणा को भी राष्ट्रीय आपात के समान ही दो माह के अन्दर संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यदि दो माह के पूर्व संसद के दोनों सदन अपनी स्वीकृति प्रदान कर दे तो

.इसे अनिश्चित काल तक लागू किया जा सकता है। अन्यथा यह उद्धोषणा दो माह की समाप्ति पर स्वतः ही समाप्त हो जाएगी। यदि इसी दौरान लोकसभा का विघटन हुआ है तो राज्यसभा की स्वीकृति आवश्यक है। परन्तु नवीन लोक सभा के प्रथम बैठक के तीस दिन के अन्दर लोक सभा की स्वीकृति आवश्यक है अन्यथा घोषणा स्वतः ही निरस्त हो जाएगी।

वित्तीय आपात की घोषणा का प्रभाव --

संघ और राज्यों के किसी भी वर्ग के अधिकारियों के वेतन में कमी की जा सकती है।

इस समय राष्ट्रपति न्यायाधीशों के वेतन में भी कटौती के आदेश दे सकता है।

राज्य के समस्त वित्त विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए पेश किये जाने के निर्देश दिये जा सकते हैं।

संघीय सरकार, राज्य की सरकार को शासन संबन्धी आवश्यक निर्देश दे सकती है।

राष्ट्रपति द्वारा संघ और राज्यों के मध्य वित्तीय वितरण के संबंध में आवश्यक निर्देश दे सकता है।

5.6 राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति -

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को प्रदान की गयी व्यापक शक्तियों के आधार पर यह धारणा बनी कि राष्ट्रपति कुछ शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद के परामर्श के विना भी कर सकते हैं। जो संसदात्मक व्यवस्था के परम्पराओं के विपरीत है। इस लिए इसके निवारण के लिए 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 74 के स्थान पर इस प्रकार के उपबन्ध किया गया

राष्ट्रपति को सहायता और परामर्श देने के लिए प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में एक मन्त्रिपरिषद होगी और राष्ट्रपति अपने कार्यों के संपादन में मन्त्रिपरिषद के परामर्श के आधार पर कार्य करेगा। इस उपबन्ध से राष्ट्रपति के पद की गरिमा को आघात पहुँचा। इस लिए 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा निम्न उपबन्ध किये गये -

राष्ट्रपति को मन्त्रिपरिषद से जो परामर्श प्राप्त होगा उसके संबन्ध में राष्ट्रपति को यह अधिकार होगा कि वह मन्त्रिपरिषद को इस परामर्श पर पुनर्विचार करने के लिए कहे, लेकिन पुनर्विचार के बाद मन्त्रिपरिषद जो परामर्श देगी, राष्ट्रपति उसी परामर्श के अनुसार कार्य करेगा।

इस प्रकार राष्ट्रपति के संबन्ध में संवैधानिक स्थिति यह नियत करती है कि संसदीय शासन की भावना के अनुरूप राष्ट्रपति, राष्ट्र का संवैधानिक प्रधान है। भारतीय राजनीति में जब भी अनिश्चितता की स्थिति रहेगी तब राष्ट्रपति की भूमिका सक्रिय और अतिमहत्वपूर्ण होगी।

अभ्यास प्रश्न ---

8. राष्ट्रपति का निर्वाचन प्रत्यक्ष चुनाव के द्वारा होता है - सत्य/असत्य
9. राष्ट्रपति के निर्वाचन में केवल लोक सभा और राज्य सभा के सदस्य भाग लेते हैं - सत्य/असत्य
10. राष्ट्रपति पर महाभियोग अनुच्छेद 63 के तहत लगाया जाता है - सत्य/असत्य
11. राष्ट्रपति को शपथ राज्यपाल दिलाते हैं - सत्य/असत्य

12. राष्ट्रपति राज्यपाल की सिफारिश से अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रीय आपात की घोषणा करते हैं - सत्य/असत्य

5.7 सारांश -

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया है कि राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान होने के साथ ही साथ व्यवस्थापिका का अंग भी है, क्योंकि संसद के द्वारा पारित कोई भी विधेयक तभी कानून बनता है जब राष्ट्रपति उसे अपनी स्वीकृति देते हैं। इस प्रकार संसदीय शासन की जो प्रमुख विशेषता है -व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप, वह राष्ट्रपति के पद में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। भारत में संसदीय प्रणाली में राष्ट्रपति कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान है किन्तु ब्रिटेन के सम्राट के समान वह रबर मुहर नहीं है। राष्ट्रपति को कुछ विवेकी शक्तियां प्राप्त हैं और कुछ स्थितियों में भारत के राष्ट्रपति ने बड़ी ही समझदारी से कार्य किया है। जब किसी दल को लोकसभा में बहुमत नहीं मिलता है तो राष्ट्रपति स्वविवेक से उसे सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करता है, जिसे वह समझे कि वह सदन में अपना बहुमत सिद्ध कर सकता है। इसके साथ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि 1984 में इन्दिरागांधी की हत्या के उपरान्त प्रधानमंत्री का पद रिक्त न हो, राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने राजीवगांधी को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया है। किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए राष्ट्रपति के द्वारा लौटाया जाना भी अपने आप में गम्भीर विषय माना जाता है। इस प्रकार जैसा उपर उल्लेख किया गया है राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान होने के नाते व्यापक रूप से नियुक्तियाँ करने और पदच्युत करने का भी अधिकार है। साथ ही क्षमादान की महत्वपूर्ण शक्ति भी प्राप्त है। विधायन के क्षेत्र में जब संसद का सत्र न चल रहा हो तो राष्ट्रपति की अध्यादेश निकालने की शक्ति भी महत्वपूर्ण है। इस प्रकार से यह पद भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

5.7 शब्दावली -

संसद = राष्ट्रपति + राज्य सभा + लोकसभा

औपचारिक प्रधान:- जिसके नाम से समस्त कार्य किये जाते हैं परन्तु वह स्वयं उन शक्तियों का प्रयोग न करता हो।

गणतन्त्र:- राज्य का प्रधान निर्वाचित हों, वंशानुगत राजा नहीं

कोटा:- जीत के लिए आवश्यक न्यूनतम मत (समस्त का 51 प्रतिशत)

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

- 1- लोकसभा, राज्यसभा और सभी राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य
- 2- 5 वर्ष, 3-अनुच्छेद 61, 4-अनुच्छेद 124, 5-अनुच्छेद 217, 6-अनुच्छेद 352,
- 7-आन्तरिक अशान्ति, 8- असत्य, 9- असत्य, 10- असत्य, 11- असत्य,

12- असत्य

5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची -

डॉ रूपा मंगलानी - भारतीय शासन एवं राजनीति (2009), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

त्रिवेदी एवं राय - भारतीय सरकार एवं राजनीति

महेन्द्र प्रताप सिंह - भारतीय शासन एवं राजनीति (2011), ओरियन्टल ब्लैक स्वान नई दिल्ली

भारतीय प्रशासन - अवस्थी एवं अवस्थी (2011), लक्ष्मी नारायण अग्रवाल , आगरा

5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री -

भारत का संविधान - ब्रज किशोर शर्मा (2008), प्रेन्टिस हाल ऑफ इंडिया नई दिल्ली

भारत में लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया (2010) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

The Constitution of India – J.C. Johari, 2004, Sterling Publishers Private Limited New Delhi

5.11 निबंधात्मक प्रश्न-

- 1- राष्ट्रपति कार्यपालिका के औपचारिक प्रधान से अधिक है। स्पष्ट कीजिए।
- 2- राष्ट्रपति के चुनाव प्रक्रिया की विवेचना कीजिए ?
- 3- राष्ट्रपति के आपातकालीन शक्तियों की समीक्षा कीजिए

इकाई छः प्रधानमंत्री, मन्त्रिपरिषद

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 प्रधानमन्त्री एक परिचय

6.3.1 प्रधानमन्त्री की नियुक्ति

6.3.2 प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध

6.3.3 प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध

6.3.4 प्रधानमन्त्री और संसद के बीच सम्बन्ध

6.4 सारांश

6.5 शब्दावली

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.9 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना:-

पिछली इकाई में भारतीय प्रशासन में राष्ट्रपति की स्थिति के बारे में अध्ययन किया है और पाया कि भारत का राष्ट्रपति ब्रिटेन के सम्राट से अधिक शक्तिशाली और महत्वपूर्ण स्थिति में है क्योंकि एक तरफ वह पर राष्ट्र की एकता और गरिमा का प्रतीक है तो दूसरी तरफ उन्हें उसे कुछ स्वविवेकि शक्तियाँ प्रदान कर राजव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थिति प्रदान की गई है।

इस इकाई में हम देखेंगे कि राष्ट्रपति के नाम से जिन शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद करती है। उसका प्रधान प्रधानमंत्री होता है। प्रधानमन्त्री का पद हमारे देश में संसदीय शासन प्रणाली होने के नाते बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होने के नाते इस कारण से सदन का नेता होने के कारण और अन्ततः दलीय अनुशासन के कारण से शासन व्यवस्था को नेतृत्व प्रदान करता है। किन्तु यही शक्तिशाली प्रधानमन्त्री की स्थिति, गठबंधन सरकार होने पर अत्यन्त कमजोर हो जाती है फिर भी वह केन्द्रीय सत्ता की धुरी होता है।

6.2 उद्देश्य:-

1. इस इकाई के अध्ययन से हम जान सकेंगे कि संसदीय शासन में प्रधानमंत्री कितना महत्वपूर्ण है।
2. सरकार के गठन में कितनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
3. वह निम्न सदन (लोक सभा) का नेता भी होता है।
4. वह अपने दल का अत्यधिक प्रभावशाली होता है।
5. मन्त्रिपरिषद के विघटन की भी महत्व पूर्ण शक्ति होती है

6.3 प्रधानमन्त्री एक परिचय

भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। इस शासन में प्रधानमन्त्री का पद, शासन व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु होता है। इसमें नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद पाया जाता है। नाममात्र की कार्यपालिका राष्ट्रपति होता है। वास्तविक कार्यपालिका मन्त्रिपरिषद होती है, जिसका नेतृत्व प्रधानमन्त्री करता है। राष्ट्रपति के नाम से समस्त कार्यपालिका शक्तियों प्रयोग, प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में मन्त्रिपरिषद करती है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 74(1) के अनुसार राष्ट्रपति को अपने कार्यों में सहायता तथा मन्त्रणा के लिए एक मन्त्रिमण्डल होगा, जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा। इसके आगे अनुच्छेद 75(1) में कहा गया है कि, प्रधानमन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा तथा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री के परामर्श पर करेगा। संसदीय लोकतन्त्र की परम्परा के अनुसार राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करते हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हमारे संविधान में ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है कि राष्ट्रपति बहुमत दल के नेता को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करने को बाध्य हो।

अनुच्छेद 75(5) के अनुसार के कोई भी व्यक्ति संसद का सदस्य हुए बिना छः माह तक मन्त्री पद पर रह सकता है। साथ ही यह भी आवश्यक नहीं है कि प्रधानमन्त्री का नियुक्ति निम्न सदन (लोक सभा) से ही हो। उदाहरण स्वरूप-इन्दिरागान्धी को जब पहली बार 1966 प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया तो उस समय वे उच्च सदन (राज्य सभा) की सदस्य थी। ब्रिटेन की संसदीय परम्पराओं के अनुसार प्रधानमन्त्री की नियुक्ति में राष्ट्रपति ने कभी अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया बल्कि बहुमत प्राप्त दल के नेता, किसी दल को बहुमत न मिलने की स्थिति में सबसे बड़े दल के नेता को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया।

संविधान के उपबन्धों और गत 72 वर्ष के व्यावहारिक अनुभवों से प्रधानमन्त्री के पद और स्थिति की जानकारी के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर विस्तृत विचार करना आवश्यक है -

- 1-प्रधानमन्त्री की नियुक्ति
- 2-प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध
- 3- प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध
- 4- प्रधानमन्त्री और संसद के बीच सम्बन्ध

6.3.1 प्रधानमन्त्री की नियुक्ति

इस बात का उल्लेख ऊपर कर चुके हैं कि संसदीय परम्परा के अनुरूप राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को, प्रधानमंत्री नियुक्त करता है। 1946 की अन्तरिम सरकार में जवाहरला नेहरू को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया गया। 1952, 1957 और 1962 के लोकसभा के आम चुनाव में कांग्रेस को सफलता मिली और नेहरू जी को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया जाता रहा। 1964 में इनकी मृत्यु के उपरान्त कांग्रेस के वरिष्ठतम सदस्य गुलजारीलाल नन्दा को, अस्थायी रूप से प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया गया। इसके पश्चात कांग्रेस अध्यक्ष कामराज की कुशलता से, लालबहादुर शास्त्री को स्थायी प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया गया।

1966 में शास्त्रीजी की आकस्मिक मृत्यु के उपरान्त एक बार पुनः नेता के चुनाव के प्रश्न पर मतभेद उभरा, क्योंकि कांग्रेस अध्यक्ष कामराज इन्दिरा गाँधी को चाहते थे जबकि कांग्रेस के वरिष्ठतम सदस्य मोरारजी देसाई भी दावेदारी कर रहे थे। फलस्वरूप दल के चुनाव में श्रीमती गाँधी 169 के मुकाबले 355 मतों से विजयी रहीं। दल में इस विभाजन के कारण 1967 के चुनाव में कुछ राज्यों में भारी पराजय का सामना करना पड़ा। कांग्रेस, लोकसभा के 1962 के चुनाव में 361 स्थानों पर विजयी हुई थी जबकि 1967 में यह संख्या घटकर 283 हो गई। 1967 के चुनाव के उपरान्त इन्दिरा गाँधी सर्वसम्मति से प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त की गयी। दूसरे गुट के सदस्य मोरारजी देसाई को उपप्रधानमंत्री और गृहमंत्री के पद पर नियुक्त किया गया। फिर भी मोरारजी देसाई को असन्तोष था और उन्होंने इन्दिरा गाँधी के प्रगतिशील आर्थिक नीतियों का, जैसे बैंकों के राष्ट्रीयकरण का विरोध किया। 1969 के राष्ट्रपति के चुनाव में तो यह विरोध और भी मुखर होकर सामने आ गया। कांग्रेस के अधिकृत उम्मीदवार नीलम संजीव रेड्डी के खिलाफ श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने निर्दल प्रत्याशी वी0वी0 गिरी को राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित करवाया। फलस्वरूप कांग्रेस का विभाजन हो गया। इन्दिरा गुट अल्पमत में आ गयी। प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सिफारिश पर राष्ट्रपति ने लोकसभा का विघटन कर दिया। 1971 के पूर्वार्द्ध में लोकसभा का प्रथम मध्यावधि चुनाव हुए। इन्दिरा गुट को भारी सफलता प्राप्त हुई और राष्ट्रपति ने इन्दिरा गाँधी को प्रधानमंत्रीपद पर नियुक्त किया। इस सफलता ने श्रीमती गाँधी को एक शक्तिशाली नेता के रूप में, राजनीतिक मंच पर स्थापित कर दिया।

इन्दिरा गाँधी की चुनावी सफलता और समाजवाद के चमत्कारिक नारे ने उनके प्रभाव में ऐसी वृद्धि की कि कांग्रेस के सर्वमान्य नेता के रूप में स्थापित हुई। 1977 के लोक सभा चुनाव में कांग्रेस की पराजय हुई और जनता पार्टी को सफलता मिली। मोरारजी देसाई को, राष्ट्रपति ने, प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया।

जनता पार्टी के सरकार बनाने के समय से ही उसके विभिन्न घटक दलों में मतभेद थे, जो 1977 तक बहुत बढ़ गया। इस स्थिति को देखते हुए जुलाई 1977 में विपक्ष अविश्वास प्रस्ताव ले आया और मोरारजी देसाई ने विना सामना किये ही प्रधानमन्त्री पद से त्यागपत्र दे दिया। इसके पश्चात सरकार बनाने की विभिन्न संभावनाओं पर विचार करते हुए, चौधरी चरण सिंह को, तीन महीने में बहुमत सिद्ध करने की शर्त के साथ, सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया। परन्तु कांग्रेस पार्टी ने चरण सिंह से अपना समर्थन वापस ले लिया। यह समर्थन चरण सिंह लोकसभा में बहुमत सिद्ध करने की तिथि के पहले ही ले लिया। परिणामस्वरूप चौधरी चरण सिंह ने लोकसभा का सामना किये विना ही त्यागपत्र देते हुए राष्ट्रपति से लोकसभा विघटित करने की सिफारिश की। तत्कालीन राष्ट्रपति ने लोकसभा का विघटन करते हुए, चौधरी चरण सिंह को कार्यवाहक प्रधानमन्त्री के रूप में रहने दिया।

1980 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस पार्टी को एक बार पुनः आश्चर्यजनक सफलता मिली और श्रीमती गाँधी एक बार पुनः प्रभावशाली प्रधानमन्त्री के रूप में स्थापित हुईं। किन्तु श्रीमती गाँधी की दुर्भाग्यपूर्ण हत्या (31 अक्टूबर 1984) हो गयी। तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने कांग्रेस संसदीय बोर्ड की सिफारिश पर राजीव गाँधी को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। चूँकि श्रीमती गाँधी की हत्या के कारण राजीव गाँधी के साथ जनता की बहुत सहानुभूति थी। इस लिए 1984 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को अब तक सर्वाधिक सीटें प्राप्त हुईं। इस सफलता के केन्द्र में राजीव गाँधी थे। इस लिए राजीवगाँधीका प्रधानमन्त्री बनना तय था। भारतीय राजव्यवस्था और प्रधानमन्त्री पद के लिए 1989 का लोकसभा चुनाव, एक विभाजक चुनाव था। इस चुनाव ने एकदलीय प्रभुत्व का अन्त किया क्योंकि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। जनता दल के वी0पी0 सिंह भाजपा सहित अन्य दलों के समर्थन से प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किये गये किन्तु नवम्बर 1990 में भाजपा के समर्थन वापस लेने की वजह से वी0पी0 सिंह सरकार का पतन हो गया। वी0पी0 सिंह सरकार के पतन के साथ ही जनता दल का विभाजन हो गया। चन्द्रशेखर सिंह (जनता दल -समाजवादी-61 लोकसभा सदस्य) ने कांग्रेस के समर्थन से प्रधानमन्त्री पद प्राप्त किया। कांग्रेस के समर्थन वापस लेने कारण चन्द्रशेखर सरकार का भी अल्पायु में ही, जून 1991 में पतन हो गया। 1991 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस सबसे बड़े दल के रूप में उभरी। मई 1991 राजीव गांधी की हत्या हो गयी। इस राजनीतिक वातावरण में पी0वी0 नरसिंहराव को, राष्ट्रपति ने प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया।

1996 के लोकसभा चुनाव में भी किसी दल को बहुमत नहीं मिला। तेरह दलों के सहयोग प्राप्त भाजपा के अटलबिहारी वाजपेयी को राष्ट्रपति ने प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। किन्तु इस सरकार का कार्यकाल मात्र तेरह दिन ही रहा। इसके पश्चात एच0डी0 देवगौड़ा और इन्दुकुमार गुजराल की कांग्रेस समर्थित सरकारें बनीं जो अल्पकालिक ही रहीं। 1998 के लोकसभा चुनाव में

के पश्चात भाजपा और उसके सहयोगी दलों के नेता अटलविहारी वाजपेयी पुनः प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त हुए। किन्तु यह सरकार भी स्थायी नहीं रही और पुनः 1999 में लोकसभा के चुनाव में किसी भी दल को बहुमत नहीं प्राप्त हुआ। अटल विहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा सहित पन्द्रह दलों की गठबंधन सरकार का गठन किया गया। इस गठबंधन सरकार में मंत्रिमंडल के सदस्यों का चयन प्रधानमंत्री की इच्छा पर निर्भर न होकर घटक दलों की इच्छा और उनकी सौदेबाजी की स्थिति पर आधारित था।

इसी प्रकार 2004 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस के नेतृत्व में ग्यारह दलों के औपचारिक समर्थन और आठ दलों के बाहर से समर्थन से सरकार गठबंधन सरकार का गठन हुआ। इस सरकार ने अपना कार्यकाल पूरा किया। 2009 के 15वीं लोक सभा चुनाव में पुनः कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार का गठन हुआ। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि गठबंधन सरकार में मंत्रिपरिषद के गठन में प्रधानमंत्री पूरी तरह से स्वतंत्र नहीं होते हैं क्योंकि क्षेत्रीय दल सरकार को समर्थन अपने हितों की सिद्धि के लिए करते हैं। ऐसे सौदेबाजी के वातावरण में प्रधानमंत्री की स्थिति बहुत मजबूत एवं निर्णायक नहीं हो सकती। इसके आगे 2014 और 2019 के आम चुनाव में भाजपा के नेतृत्व वाली एन.डी.ए. को बहुमत मिला। इसमें उल्लेखनीय है कि दोनों चुनावों में भाजपा अकेले भी बहुमत को प्राप्त किया परन्तु गठबंधन दलों को सरकार में हिस्सेदारी देकर सहकारी संघवाद और विविधता में एकता को मजबूत करने का कार्य किया है।

भारत के प्रधानमंत्री का क्रमवार विवरण इस प्रकार है ---

6.3.2 प्रधानमंत्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75(1) के अनुसार राष्ट्रपति मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की मंत्रणा से करता है। भारत में भी इंग्लैण्ड के समान संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संसदीय परम्परा का अनुसरण करते हुए भारत में भी मंत्री पद के लिए चयन प्रधानमंत्री करते हैं, राष्ट्रपति की स्वीकृति एक औपचारिकता हाती है। प्रधानमंत्री मंत्रियों के चयन में उस समय शक्तिशाली होता था और उसके निर्णय निर्णायक भी होते थे, जब एक दल बहुमत के आधार पर सरकार का गठन करता था। सरकार के गठन और उसकी स्थिरता के लिए, विभिन्न क्षेत्रीय दलों के सहयोग की आवश्यकता होती है। ये क्षेत्रीय दल सहयोग के बदले में मंत्री पद प्राप्त करने की सौदेबाजी करते हैं। मंत्रियों को विभागों का बंटवारा भी प्रधानमंत्री का विवेकाधिकार होता है परन्तु मंत्रिपरिषद का गठन करते समय उन्हें जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र तथा सहयोगी क्षेत्रीय दलों की निम्न सदन (लोकसभा) में सफल सदस्यों की सख्या का महत्व देना पड़ता है।

6.3.3 प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध

भारतीय प्रशासन में प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के बीच का संबंध अतिमहत्वपूर्ण है क्योंकि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संसदीय शासन प्रणाली में राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका हाते हैं, जिनके नाम से सभी कार्य किये जाते हैं। जबकि मंत्रिपरिषद वास्तविक कार्यपालिका होती है। प्रधानमंत्री, मंत्रिपरिषद को नेतृत्व प्रदान करते हैं। मूल संविधान में यह उपबन्ध था कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं थे किन्तु 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा यह उपबन्ध किया गया कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद की सिफारिस मानने के लिए बाध्य है। 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा पुनः पूर्व स्थिति को बहाल कर दिया गया।

राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच संबंध मुख्यतः दो बातों पर निर्भर करता है-1- राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच का दलीय संबंध - यदि दोनों एक ही दल के हैं तो दलीय अनुशासन के कारण, संबंध सामान्य बने रहेंगे। जैसा कि 1977 तक स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। 2- राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री का व्यक्तित्व और उनके राजनीतिक प्रभाव भी, दोनों के बीच के संबंध को प्रभावित करते हैं। यदि राष्ट्रपति के चुनाव में प्रधानमंत्री की भूमिका है तो दोनों के बीच के संबंध काफी हद तक सामान्य रहे हैं, जैसा कि जाकिर हुसैन, वी0वी0 गिरि, फखरुद्दीन अली अहमद और ज्ञानी जैल सिंह के मामले में हुआ है। किन्तु 31 अक्टूबर 1984 को श्रीमती इन्दिरा गान्धी की हत्या हो गयी। इसके पश्चात राजीव गांधी को राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया। 1986 तक तो संबंध अच्छे रहे किन्तु 1987 के प्रारम्भ से दोनों के बीच के संबंधों में कड़वाहट शुरु हुई और ऐसा लगने लगा कि राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह, प्रधानमंत्री राजीव गांधी को पद से हटाकर लोकसभा का विघटन कर देंगे। संविधान लागू होने के पश्चात ऐसा सर्वप्रथम हुआ कि एक ही दल का होने के बावजूद राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री में गम्भीर मतभेद उभर कर सामने आये।

6.3.4 प्रधानमंत्री और संसद के बीच सम्बन्ध

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। भारत में प्रधानमंत्री की नियुक्ति निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल के नेता की जाती है। यद्यपि उच्च सदन से प्रधानमंत्री की नियुक्ति को लेकर कोई कानूनी बंधन नहीं हैं। हमारे देश में सर्वप्रथम 1966 में श्रीमती इन्दिरा गांधी को राज्य सभा के सदस्य के रूप में प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया गया। इसके पश्चात 2004से 2014 तक प्रधानमंत्री डॉ मनमोहन सिंह भी राज्यसभा सदस्य ही थे।

प्रधानमंत्री लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होता है, इस लिए सदन का भी नेता होता है। सदन का नेता होने के नाते विपक्ष के अधिकारों के रक्षा की और सदन की कार्यवाही में उनकी

भागीदारी हेतु अवसर प्रदान करेंगे। इस हेतु वे विपक्ष से परामर्श करते हैं और उनकी शिकायतों का निराकरण करने का प्रयत्न भी करते हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75(3) के अनुसार मंत्रिमण्डल सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है। इसका तात्पर्य यह है कि मंत्रिमण्डल का अस्तित्व तभी तक है जब तक कि उसे लोकसभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त है। किन्तु व्यावहारिक स्थिति कुछ और ही है, क्योंकि दलीय अनुशासन के कारण, लोकसभा में बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल, मंत्रिमण्डल के विरुद्ध नहीं जा पाता है। संसदीय परम्परा के अनुसार प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति से सिफारिश करके लोकसभा का विघटन करवा सकता है। इस अधिकार के कारण प्रधानमंत्री लोकसभा को नियंत्रित करने में काफी हद तक सफल रहता है। प्रथम लोकसभा के गठन से आज तक 59 वर्षों में कई बार लोकसभा का विघटन समय से पूर्व करते हुए मध्यावधि चुनाव कराये गये।

समय से पूर्व लोकसभा का विघटन

क्रम	किस प्रधानमंत्री की सिफारिश पर	राष्ट्रपति ने विघटन किया	सन्
1	श्रीमती इन्दिरा गाँधी		1970
2	श्रीमती इन्दिरा गाँधी		1977
3	चौधरी चरण सिंह		1979
4	राजीव गाँधी		1984
5	चन्द्रशेखर सिंह		1991
6	अटल बिहारी वाजपेयी		1998
7	अटल बिहारी वाजपेयी		1999

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि जब किसी एक दल को निरपेक्ष बहुमत रहा है तो लोकसभा पर प्रधानमंत्री का नियंत्रण बहुत ही प्रभावशाली रहा है परन्तु जब गठबंधन सरकारें रहीं हैं (जैसे 1977, 1989, 1991, 1996, 1998, 1999, 2004 और 2009 में) तब लोकसभा पर नियंत्रण की बात तो दूर की रही, वे स्वयं ही अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई देते रहे हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. प्रधानमंत्री की नियुक्ति की जाती है, या निर्वाचित होता है
2. निम्न सदन का नेता कौन होता है ?
3. प्रधानमंत्री की नियुक्ति कौन करता है ?
4. भारत की प्रथम प्रधानमंत्री जो राज्य सभा सदस्य थी
5. कोई मंत्री बिना संसद सदस्य रहे कितने माह मंत्री रह सकता है ?

6.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत हम संसदीय शासन में प्रधानमंत्री की नियुक्ति हेतु अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हुई | साथ ही यह भी देखा की किस प्रकार से प्रधानमंत्री इस शासन व्यवस्था में बहुत ही शक्तिशाली होकर उभरता है | यहाँ यह भी देखने को मिला कि प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य करता है | और समय समय पर मंत्रिपरिषद द्वारा लिए गए निर्णयों की जानकारी भी राष्ट्रपति को देता है | उपरोक्त अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो गया कि किस प्रकार से इस शासन व्यवस्था में सम्पूर्ण शासन व्यवस्था के केंद्र में प्रधानमंत्री होता है |

6.5 शब्दावली

1. मंत्रिपरिषद = मंत्रिमण्डल , राज्यमंत्री , उपमंत्री
2. निम्न सदन = लोक सभा को कहते है।
3. उच्चसदन = राज्य सभा को कहते है

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. नियुक्ति 2. प्रधानमंत्री 3. राष्ट्रपति 4. श्रीमती इन्दिरा गांधी 5. छः माह

6.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति	-	डॉ रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति	-	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति	-	महेन्द्रप्रतापसिंह

6.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन	-	बी.एल. फड़िया

6.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत के प्रधानमंत्री की पद एवं स्थिति की विवेचना कीजिए ?
2. प्रधानमंत्री की सदन के नेता और सरकार के मुखिया के रूप में महत्व की व्याख्या कीजिए।
- 3 गठबन्धन सरकारों के युग में प्रधानमंत्री कमजोर हुआ है या मजबूत समीक्षा कीजिए।

इकाई 7 : संसद: लोकसभा - राज्यसभा

इकाई की संरचना

- 7.1. प्रस्तावना
- 7.2. उद्देश्य
- 7.3. भारतीय संसद
- 7.4. संसद का संगठन
- 7.5. राज्यसभा
- 7.6. लोकसभा
- 7.7. संसद की शक्तियाँ
- 7.8. सारांश
- 7.9. शब्दावली
- 7.10. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 7.11. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 7.12. सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 7.13. निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

इकाई ६ में हमने यह अध्ययन किया है कि कि राष्ट्रपति के नाम से जिन शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद करती है। उस मन्त्रिपरिषद का प्रधान प्रधानमंत्री होता है। प्रधानमंत्री का पद हमारे देश में संसदीय शासन प्रणाली होने के नाते बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होने के नाते इस कारण से सदन का नेता होने के कारण और अन्ततः दलीय अनुशासन के कारण से शासन व्यवस्था को नेतृत्व प्रदान करता है। किन्तु यही शक्तिशाली प्रधानमंत्री की स्थिति, गठबंधन सरकार होने पर अत्यन्त कमजोर हो जाती है फिर भी वह केन्द्रीय सत्ता की धुरी होता है।

इस इकाई ७ में हम संसद के संगठन, कार्यो और शक्तियों का अध्ययन करेंगे। जिसमे हम यह अध्ययन करेंगे कि की किस प्रकार से राष्ट्रपति संसद का अंग है और उसके पद में संसदीय शासन की प्रमुखविशेषताका समावेश किया गया है। क्योंकि संसदीय शासन की मुख्य विशेषता, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप है। कार्य पालिका के सभी सदस्यों के लिए व्यवस्थापिका का सदस्य होना अनिवार्य होता है। राष्ट्रपति के पद में ये दोनों विशेषताएँ पाई जाती है क्योंकि एक तरफ वह कार्यपालिका का प्रमुख होता है तो दूसरी तरफ वह संसद का अंग होता है क्योंकि कोई भी विधेयक तबतक कानून का रूप नहीं लेता है जब तक कि उसे राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति नहीं प्रदान कर देता है।

इसके साथ ही साथ हम यह भी अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार कानून निर्माण में राज्य सभा को, लोक सभा केसमानशक्तियां न होते हुए भी वह महत्वपूर्ण है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के उपरान्त हम

1. संसद के संगठन के सम्बन्ध में जान सकेंगे
2. राज्य सभा की शक्तियों को जान सकेंगे
3. लोक सभा की शक्तियों को जान सकेंगे
4. अंततः कानून निर्माण में लोक सभा के सापेक्ष राज्य सभा की शक्तियों को जान सकेंगे

7.3 भारतीय संसद

जैसा कि हम पहले की इकाइयों में स्पष्ट कर चुके हैं कि ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए हमारे देश में भी संविधान के द्वारा संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है। यह संसदीय प्रणाली संघ और राज्य दोनों ही स्तरों पर अपनाई गई है। संघीय स्तर के विधान निर्मात्री संस्था को संसद कहते हैं। राज्य स्तर पर कानून निर्मात्री संस्था को हम विधानमंडल कहते हैं। प्रस्तुत इकाई में संघीय विधायिनी संस्था संसद का ही अध्ययन करेंगे।

संसद का गठन द्विसदनीय सिद्धान्त के आधार पर किया गया है।

(1) उच्च सदन-राज्यसभा और (2) निम्न सदन-लोकसभा (जनप्रतिनिधि सदन)। यहाँ पर यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यहीं दोनों सदन मिलकर ही संसद का गठन नहीं करते हैं वरन् - लोकसभा, राज्यसभा और राष्ट्रपति से मिलकर संसद बनती है। चूँकि संसद का मुख्य कार्य कानून निर्माण है। और कोई भी विधेयक तब तक कानून का रूप नहीं ग्रहण करता है, जब तक कि उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति नहीं मिल जाती है। इसलिए राष्ट्रपति संसद का महत्वपूर्ण अंग है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 79 में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि संघ के लिए एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दोनों सदनों से मिलकर बनेगी जिनके नाम क्रमशः राज्यसभा और लोकसभा होंगे।

भारतीय संसद के संगठन और उसके कार्यों आदि के सम्बन्ध में भारतीय संविधान के भाग-5 के अध्याय 2 में अनुच्छेद 79 से 122 तक प्रावधान किया गया है।

यद्यपि हमने ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली अपनाई है, परन्तु भारतीय संसद ब्रिटेन की संसद के समान सर्वशक्तिमान नहीं है। क्योंकि उसके सम्बन्ध में एक कहावत प्रचलित है कि वह स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बनाने के सिवाय सब कुछ कर सकती है।

7.4 संसद का संगठन

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार संघ के लिए संसद होगी जो राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनेगी। संसद के अंग - राष्ट्रपति और दो सदन - 1. राज्यसभा 2. लोकसभा

राष्ट्रपति - संसद का अंग है, जिसकी स्वीकृति के बिना कोई भी विधेयक कानून का रूप नहीं ले सकता है। राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल द्वारा 5 वर्ष के लिए किया जाता है। निर्वाचक मंडल में संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य, सभी राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य हैं। राष्ट्रपति का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति से एकल संक्रमणीय मत पद्धति के द्वारा किया जाता है। समय से पूर्व वह उपराष्ट्रपति को त्यागपत्र दे सकता है या साबित

कदाचार या संविधान के उल्लंघन के आरोप में महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा पद से हटाया जा सकता है। जिसका उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 61 में किया गया है।

7.5 राज्यसभा

राज्यसभा की संरचना: भारतीय संविधान के अनुच्छेद 80 के अनुसार राज्यसभा संसद का उच्च सदन है, जिसकी सदस्य संख्या अधिकतम 250 हो सकती है। (यद्यपि वर्तमान समय में इसमें सदस्य संख्या 245 है।)

250 में से 238 सदस्य राज्यों और संघ-राज्य क्षेत्र से होगा जबकि 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होंगे। जो साहित्य, कला, विज्ञान, समाज सेवा के क्षेत्र में ख्यातिलब्ध व्यक्तित्व होंगे। इस उपबन्ध को रखने के पीछे संविधान निर्माताओं की मंशा यह थी कि सदन को समाज के योग्य और अनुभवी लोगों के अनुभव का लाभ प्राप्त हो सके।

भारतीय संविधान की चौथी अनुसूची में राज्य और संघशासित क्षेत्रों से प्रतिनिधियों की 233 की संख्या का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार से $233+12 =$ (राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत) कुल 245 सदस्य राज्यसभा में है।

राज्यसभा स्थायी सदन है। इसके सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से एक निर्वाचक मंडल के द्वारा किया जाता है। राज्यों के प्रतिनिधियों का चुनाव राज्य विधान सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से एकल संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार। यहाँ हम यह बताते चलें कि संघ शासित क्षेत्रों में केवल दिल्ली और पांडिचेरी को ही राज्यसभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

यद्यपि हमारे देश में संघात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है, जिसमें उच्च सदन में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है, चाहे वे राज्य छोटे हो या बड़े हो। अमेरिका में 50 राज्य है सभी राज्यों से उच्च सदन (सीनेट) में दो प्रतिनिधि भेजे जाते हैं। इस प्रकार कुल 100 सदस्य होते हैं, जबकि हमारे यहाँ उच्च सदन (राज्य सभा) में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व न प्रदान कर जनसंख्या के आधार पर प्रदान किया गया है।

अवधि - राज्यसभा एक स्थायी सदन है जिसका कभी विघटन नहीं होता है। किन्तु इसके एक तिहाई सदस्य दो वर्ष की समाप्ति पर सेवानिवृत्त हो जाते हैं। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सदन तो स्थायी है इसके सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष का होता है।

योग्यताएँ- राज्यसभा की सदस्यता के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ अपेक्षित हैं-

1. वह भारत का नागरिक है।
2. उसकी आयु 30 वर्ष से कम न हो
3. वह किसी लाभ के पद पर न हो,
4. वह पागल या दिवालिया न हो,
5. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 102 में स्पष्ट उल्लेख है कि संघ अथवा राज्य के मंत्री पद लाभ के पद नहीं समझे जाएंगे।

राज्यसभा के सन्दर्भ में दो पक्ष बहुत ही महत्वपूर्ण है-

- 1- राज्यसभा के लिए वह देश के किसी भी प्रदेश का हो, किसी भी प्रदेश में लड सकता है।
- 2- राज्यसभा के लिए मतदान खुला और पारदर्शी होगा।

पदाधिकारी:- राज्यसभा के पदाधिकारी

सभापति

उपसभापति

उपराष्ट्रपति(निर्वाचन द्वारा)

राज्यसभा से ही निर्वाचित

संसद के सभी सदस्यों द्वारा (लोकसभा ,राज्यसभा)

राज्यसभा में एक सभापति और एक उपसभापति होते है। उपराष्ट्रपति ही राज्यसभा के सभापति होते है। अनुच्छेद - 89 -राज्यसभा अपने सदस्यों में से ही उपसभापति का चुनाव करती है। उपसभापति सभापति की अनुपस्थिति में सभापति के रूप में कार्य करते है।

(अनुच्छेद 91 के अनुसार) सभापति और उपसभापति को वेतन भारत के संचित निधि से प्रदान किया जाता है। राज्य सभा की गणपूर्ति सदन के सम्पूर्ण सदस्यों की संख्या का 10 प्रतिशत । चूंकि वर्तमान में 245 सदस्य है। इसलिए इसकी गणपूर्ति संख्या 25 है।

राज्य सभा के सभापति को सदन को सुचारु संचालन हेतु व्यापक अधिकार प्राप्त होते है।

जब सभापति और उपसभापति दोनों अनुपस्थित हो तो , राज्यसभा के सभापति के कार्यों का निर्वहन राज्यसभा का वह सदस्य करेगा जिसे राष्ट्रपति नामित करेगा।

राज्य सभा के कार्य एवं शक्तियाँ-

1. विधायी शक्तियाँ - राज्य सभा, लोकसभा के साथ मिलकर कानून निर्माण का कार्य करती है। साधारण विधेयको (अवित्तीय विधेयकों) के सम्बन्ध में राज्यसभा को लोकसभा के समान शक्तियाँ प्राप्त हैं। साधारण विधेयक दोनों सदनों में से किसी में भी पहले पेश किया जा सकता है। दोनों सदनों द्वारा पारित होने के पश्चात् राष्ट्रपति के पास उनकी स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। यद्यपि अधिकांश विधेयकों को लोकसभा में ही पहले प्रस्तुत किया जाता है।

यदि विधेयक एक सदन द्वारा स्वीकार कर लिया जाए और दूसरा सदन छ माह तक अपनी स्वीकृति नहीं देता है तो, राष्ट्रपति दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन आहूत करता है। इस संयुक्त अधिवेशन की अध्यक्षता लोकसभा के अध्यक्ष करते हैं। इसमें निर्णय बहुमत से होता है। सैद्धान्तिक रूप से तो दोनों सदनों को समान शक्तियाँ हैं परन्तु व्यवहारतः लोकसभा के सदस्यों की संख्या अधिक होती है, इसलिए लोकसभा का निर्णय ही निर्णायक होता है।

2- संविधान संशोधन की शक्ति - संविधान हेतु दोनों सदनों को समान शक्तियाँ प्राप्त हैं क्योंकि, यह विधेयक भी संसद के दोनों सदनों में से किसी में भी पेश किये जा सकते हैं। वे तभी पारित माने जाएंगे जब दोनों सदनों ने अलग-अलग संविधान में उल्लिखित रीति से पारित किया हो, अन्यथा नहीं। क्योंकि संविधान संशोधन विधेयक के सन्दर्भ में दोनों सदनों में विवाद की स्थिति में किसी प्रकार से संयुक्त अधिवेशन की व्यवस्था नहीं है। इस प्रकार यदि राज्य सभा संशोधन से असहमत है तो वह, संशोधन विधेयक गिर जाएगा।

3- वित्तीय शक्तियाँ- वित्तीय शक्तियों के सन्दर्भ में राज्यसभा की स्थिति, लोकसभा के समक्ष अत्यन्त निर्बल है क्योंकि कोई भी वित्तीय विधेयक केवल लोकसभा में ही पेश किये जा सकते हैं। जब कोई वित्त विधेयक लोकसभा द्वारा पारित होने के पश्चात् राज्यसभा में पेश किया जाता है तो राज्यसभा अधिकतम 14 दिन तक उस विधेयक पर विचार करते हुए अपने पास रोक सकती है। उसके विचार को लोकसभा माने या न माने यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। यदि राज्य सभा के विचार को लोकसभा न माने तो 14 दिन की समाप्ति पर विधेयक उसी रूप में पारित समझा जाएगा, जिस रूप में उसे लोकसभा ने पारित किया था।

4- कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ - जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली प्रचलित है। इसमें कार्यपालिका निम्न सदन (लोकसभा) के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है। न कि राज्यसभा के प्रति। इसलिए राज्यसभा के सदस्य विभागीय मंत्रियों से प्रश्न पूरक प्रश्न, तारांकित, अतारांकित प्रश्न पूछ सकते हैं, परन्तु मंत्रिपरिषद के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव नहीं ला

सकते हैं। इस प्रकार की शक्ति केवल लोकसभा के पास है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कार्यपालिका शक्तियों के सन्दर्भ में राज्यसभा, लोकसभा से बहुत ही निर्बल है।

5- अन्य शक्तियाँ - ऊपर हमने राज्यसभा की शक्तियों का अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य शक्तियाँ भी राज्य सभा की हैं, जो निम्नलिखित हैं -

1. राष्ट्रपति के निर्वाचन में राज्यसभा के निर्वाचित सदस्य भाग लेते हैं।
2. उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में राज्यसभा के सभी सदस्य (निर्वाचित+मनोनीत) 233+12 भाग लेते हैं।
3. यह लोकसभा के साथ मिलकर बहुमत से उपराष्ट्रपति को पदच्युत करती है।
4. जब देश में आपात काल लागू हो, तो उसे एक माह से अधिक और संवैधानिक तन्त्र की विफलता की घोषणा हो तो उसे 2 माह से अधिक लागू करने हेतु, लोकसभा के साथ राज्यसभा के द्वारा भी स्वीकृति आवश्यक होती है।
5. लोकसभा के साथ मिलकर राज्यसभा राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को भी पदमुक्त करती है।

राज्यसभा के विशेषाधिकार- उपरोक्त शक्तियों के अतिरिक्त राज्यसभा की कुछ ऐसी शक्तियाँ हैं, जिनका प्रयोग वह अकेले करती है। वे निम्नलिखित हैं-

1. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 112 में उल्लिखित है कि - यदि राज्यसभा अपने दो तिहाई बहुमत से नई अखिल भारतीय सेवा के प्रस्ताव पारित कर दे, कि नई अखिल भारतीय सेवा के सृजन का अधिकार मिल जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि राज्य सभा इस तरह के प्रस्ताव न पारित करे तो केन्द्र सरकार नई अखिल भारतीय सेवा का सृजन नहीं कर सकती है।
2. इसी प्रकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 249 - यदि राज्यसभा के, सदन में उपस्थित तथा मतदान में भाग लेने वाले दो तिहाई सदस्य राज्य सूची के किसी विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दे तो उस पर संसद को कानून निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार का प्रस्ताव प्रारम्भ में केवल एक वर्ष के लिए ही होता है, परन्तु राज्यसभा की इच्छा से इसे बार-बार 1 वर्ष के लिए बढ़ाया जा सकता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि राज्यसभा द्वितीय सदन है तो, साथ ही दूसरे स्तर के महत्व का भी सदन है।

7.6 लोकसभा

जैसा कि हम पहले भी पढ़ चुके हैं कि लोकसभा संघीय संसद का निम्न सदन है, जिसे लोकप्रिय सदन या जनप्रतिनिधि सदन भी कह सकते हैं क्योंकि इनका निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से वयस्क मताधिकार (18 वर्ष की आयु के भारतीय) के द्वारा किया जाता है। भारतीय संविधान में इस बात का प्रावधान है कि लोकसभा में राज्यों से अधिकतम 530 सदस्य हो सकते हैं। 20 सदस्य संघ

शासित क्षेत्रों से तथा 2 सदस्य आंग्ल भारतीय समुदाय के राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जा सकते हैं। इस प्रकार लोकसभा में अधिकतम सदस्यों की संख्या 552 हो सकती है।

योग्यता- 1. वह भारत का नागरिक हो।

2. वह भारतीय नागरिक 25 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।

3. संघ सरकार या राज्य सरकार के अधीन, वह किसी लाभ के पद पर न हो।

4. वह, पागल या दिवालिया न हो।

इसके अतिरिक्त अन्य योग्यताएँ जिसका निर्धारण समय-समय पर संसद करे।

कार्यकाल- मूल संविधान के अनुसार लोकसभा का कार्यकाल 5 वर्ष था। परन्तु 42 वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा इसका कार्यकाल 6 वर्ष कर दिया गया। परन्तु पुनः 44 वें संवैधानिक संशोधन 1978 के द्वारा कार्यकाल को घटाकर 5 वर्ष किया गया। 5 वर्ष के पूर्व भी लोकसभा का विघटन किया जा सकता है। इस प्रकार 1970, 1977, 1979, 1990, 1997, 1999 और 2004 में समय पूर्व विघटन किया गया।

राष्ट्रपति लोकसभा का अधिवेशन बुलाते हैं। यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है कि लोकसभा की दो बैठकों के बीच अन्तराल अर्थात् बैठक की अन्तिम तिथि और दूसरी बैठक की प्रथम तिथि के बीच अन्तराल 6 मास से अधिक नहीं होना चाहिए। राज्यसभा के समान इसकी गणपूर्ति भी समस्त सदस्यों का दसवाँ भाग है।

लोकसभा की संरचना - प्रथम आम चुनाव के समय (1952) लोकसभा के सदस्यों की निर्धारित संख्या 500 थी। 31 वें संवैधानिक संशोधन 1974 के द्वारा यह निर्धारित किया गया कि इनकी अधिकतम संख्या 500 हो सकती है। जिनमें 530 सदस्य जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होंगे। राज्यों से। जबकि 20 सदस्य संघ-राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि होंगे। इसके साथ ही साथ 2 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जा सकते हैं। यदि राष्ट्रपति को ऐसा प्रतीत हो कि आंग्लभारतीय समुदाय को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त है। परन्तु व्यवहार में वर्तमान समय में 545 सदस्य हैं जिनमें 530 राज्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं, 13 संघ राज्य क्षेत्रों से और 2 राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत। राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों को लोकसभा में स्थानों का आवंटन

निर्वाचन - लोकसभा के सदस्यों का निर्वाचन भारतीय नागरिकों द्वारा सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है। मूल संविधान के अनुसार मताधिकार हेतु न्यूनतम उम्र 21 वर्ष रखी गई थी जबकि 61 वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा इस आयु को घटाकर 18 वर्ष कर दी गई। अर्थात् 18 वर्ष की आयु का भारतीय नागरिक अपनी पसन्द के प्रत्यासीको मतदान कर सकता है।

कार्यकाल- लोकसभा की अवधि का निर्धारण उसकी बैठक की तिथि से किया जाता है। अपनी बैठक की प्रथम तिथि से 5 वर्ष की अवधि होती है। परन्तु भारतीय संविधान के अनुच्छेद 83 (2) के अनुसार राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की सिफारिश पर 5 वर्ष के पूर्व भी विघटित कर सकता है। किन्तु यह

विघटन अवधि 6 माह से अधिक नहीं हो सकती है। अर्थात् विघटन के 6 माह बीतने के पूर्व ही लोकसभा का निर्वाचन हो जाना चाहिए। इस प्रकार के उपबन्ध को रखने का कारण यह कि लोकसभा के दो सत्रों के बीच की अवधि 6 माह से अधिक का नहीं होनी चाहिए।

अधिवेशन - एक वर्ष में लोकसभा के कम से कम दो अधिवेशन होने चाहिए। साथ ही पिछले अधिवेशन की अन्तिम तिथि और आगामी अधिवेशन की प्रथम तिथि के बीच का अन्तराल 6 माह से अधिक का नहीं होना चाहिए। परन्तु यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह अवधि एक ही स्थिति में 6 माह से अधिक हो सकती है जब आगामी अधिवेशन के पूर्व लोकसभा विघटित हो जाए।

पदाधिकारी- लोकसभा में दो मुख्य पदाधिकारी होते हैं- 1. अध्यक्ष 2. उपाध्यक्ष।

अपने सभी सदस्यों में से ही लोकसभा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष, अध्यक्ष के रूप में कार्य करते हैं। परन्तु यदि दोनों अनुपस्थित हो तो सदन का वह व्यक्ति अध्यक्ष के दायित्वों का निर्वहन करेगा जिसे राष्ट्रपति इस हेतु नियुक्त करे।

अध्यक्ष के द्वारा शपथ, अध्यक्ष के रूप में नहीं वरन लोकसभा के सदस्य के रूप में ग्रहण करता है। यह शपथ उसे लोकसभा का कार्यकारी अध्यक्ष (प्रोटेम स्पीकर) दिलाता है जो सदन का सबसे वरिष्ठ सदस्य होता है। इस परम्परा का अनुसरण फ्रान्स की परम्परा से लिया गया है।

अध्यक्ष को पद से हटाया जाना - लोकसभा के समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित प्रस्ताव के द्वारा, अध्यक्ष को हटाया जा सकता है। इस प्रकार के प्रस्ताव रखने के 14 दिन पूर्व सूचना देना आवश्यक है। यहाँ यह पक्ष महत्वपूर्ण है कि जब अध्यक्ष को हटाने का प्रस्ताव विचाराधीन हो तो, अध्यक्ष, लोकसभा की अध्यक्षता नहीं करेगा।

लोकसभा की शक्तियाँ - हमारे देश में लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है। जिसका तात्पर्य है कि अन्तिम रूप से सत्ता जनता में निहित है। लोकसभा जनप्रतिनिधि सदन है क्योंकि इनके सदस्यों का निर्वाचन जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। इसलिए लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों और परम्पराओं के अनुरूप लोकसभा को राज्यसभा की अपेक्षा शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया है। इसलिए संसद, लोकसभा, राज्यसभा और राष्ट्रपति से मिलकर होता है। अब हम लोकसभा के कार्यों और शक्तियों का अध्ययन करेंगे।

1. विधायी शक्ति- जैसा कि हम पहले ऊपर देख चुके हैं कि साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में लोकसभा और राज्यसभा को समान शक्ति प्राप्त है। यह विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। और यह तभी पारित समझा जाएगा जब दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग पारित हो।

परन्तु वित्तीय विधेयक लोकसभा में ही पेश किए जा सकते हैं। साथ ही वित्त विधेयक उसी रूप में पारित हो जाता है, जिस रूप में लोकसभा चाहती है। क्योंकि लोकसभा द्वारा पारित वित्त विधेयक को राज्य सभा केवल 14 दिन रोक सकती है। इसके पश्चात वह उसी रूप में पारित समझा जाएगा जिस रूप में उसे लोकसभा ने पारित किया था। राज्यसभा के किसी भी संशोधन को स्वीकार करना या अस्वीकार करना लोकसभा की इच्छा पर निर्भर है।

कार्यपालिका शक्ति-

भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप से लिखा है भारत की संघीय कार्यपालिका सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। यहाँ यह भी जानना आवश्यक है कि उसी दल को सरकार बनाने का अधिकार होता, और उसी दल के नेता को राष्ट्रपति प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करते हैं, जिसे लोकसभा में समस्त सदस्यों का बहुमत प्राप्त हो। सरकार तभी तक अस्तित्व में रहती है जब तक उसको लोकसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। मन्त्रिपरिषद पर प्रश्न पूछकर, पूरक पत्र, अविश्वास प्रस्ताव, कामरोको प्रस्ताव, कटौती प्रस्तावों के माध्यम से नियंत्रण रखते हैं।

संविधान संशोधन की शक्ति - संविधान संशोधन के महत्वपूर्ण कार्य में भी लोकसभा को शक्तियाँ प्राप्त हैं। संविधान संशोधन विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किए जा सकते हैं और यह तभी पारित समझा जाएगा जब दोनो सदन, अलग-अलग संविधान में वर्णित रीति से पारित करें।

महत्वपूर्ण तथ्य यह है इस सम्बन्ध में संयुक्त अधिवेशन का प्रावधान नहीं है। इसलिए दोनों की शक्तियाँ समान हैं।

निर्वाचन सम्बन्धी कार्य- लोकसभा , राज्यसभा के साथ मिलकर उपराष्ट्रपति का निर्वाचन तथा राज्यसभा और राज्य विधानसभा के साथ मिलकर राष्ट्रपति का निर्वाचन करती है।

7.7 संसद की शक्तियाँ

भारतीय संसद यद्यपि ब्रिटिश संसद के समान सर्वशक्तिमान नहीं है। परन्तु देश की सर्वोच्च विधायी संस्था है जिसकी प्रमुख शक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

1- कानून निर्माण की शक्तियाँ- शासन के तीन अंग होते हैं। व्यवस्थापिका ,कार्यपालिका और न्यायपालिका जो क्रमशः कानून निर्माण, कार्यकारी कार्य और न्यायिक कार्य करते हैं। संसद को संघ सूची, समवर्ती सूची और अवशिष्ट शक्तियों पर कानून निर्माण का अधिकार है। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्यसूची के विषयों पर भी कानून निर्माण का अधिकार है-

1. जब राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा चल रही हो।
2. जब राज्यसभा, अनुच्छेद 249 के अनुसार, दो तिहाई बहुमत से राज्यसूची के विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर संसद से विधि निर्माण हेतु आग्रह करें।
3. जब दो या दो से अधिक राज्य विधानमंडल द्वारा प्रस्ताव पारित कर राज्य सूची के विषय पर कानून निर्माण हेतु संसद से आग्रह करें।

2. कार्यकारी कार्य- संसद का अंग लोकसभा होती है। जिसके बहुमत प्राप्त दल के नेता को ही राष्ट्रपति प्रधानमंत्री उन्हीं में से अपने मन्त्रिपरिषद का गठन करते हैं।

अनु0 75 (3) के अनुसार मन्त्रिपरिषद लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है।

वित्तीय कार्य- संसद ही संघ के वित्त नियंत्रण रखती है। वित्त का नियमन करने में संसद की भूमिका निर्णायक होती है। जिसमें उसकी दो महत्वपूर्ण समितियाँ लोकलेखा समिति, प्राक्कलन समिति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत के संचित निधि से धन, संसद की स्वीकृति से ही प्राप्त हो सकता है। वार्षिक बजट और रेल बजट संसद के समक्ष पेश किया जाता है। उक्त के साथ-साथ संसद विनियोग विधेयक, अनुपूरक अनुदान, अतिरिक्त अनुदान, लेखानुदान आदि के सम्बन्ध में निर्णायक शक्ति है।

निर्वाचन सम्बन्धी कार्य-

राज्यों से सम्बन्धित कार्य- नए राज्य के गठन, उसकी सीमा और नाम में परिवर्तन का अधिकार संसद को है। इसके तहत वह एक राज्य को विभाजित कर सकती है, दो या दो से अधिक राज्यों को मिलाकर एक राज्य बना सकती है।

महाभियोग सम्बन्धी कार्य- संविधान के अनुच्छेद 61में स्पष्ट उल्लेख है कि संसद साबित कदाचार या संविधान के अतिक्रमण के आरोप में राष्ट्रपति पर विशेष प्रक्रिया से महाभियोग लगा सकती है। इसी प्रकार उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को भी पदच्युत कर सकते हैं। संविधान संशोधन की शक्ति - उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संसद की शक्तियाँ व्यापक हैं। परन्तु वे अमर्यादित नहीं हैं क्योंकि भारतीय संसद अपनी सीमाओं में ही कार्य करती है।

अभ्यास प्रश्न

1. राष्ट्रपति संसद का अंग है। सत्य / असत्य
2. संसद, राज्य सभा और लोक सभा से मिलकर बनती है। सत्य / असत्य
3. राज्य सभा संसद का जनप्रतिनिधि सदन है। सत्य / असत्य
4. लोक सभा के सदस्यों का जनता के द्वारा निर्वाचन किया जाता है। सत्य / असत्य
5. राज्य सभा का कार्य कल 6 वर्ष है। सत्य / असत्य
6. राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव जनता करती है। सत्य / असत्य
7. राज्य सभा में वर्तमान समय में 543 सदस्य हैं। सत्य / असत्य

7.8 सारांश

इस इकाई में हमने संसद के संगठन और कार्यों का अध्ययन किया है जिसमें हमने यह देखा है कि किस प्रकार से राष्ट्रपति संसद का अंग है और उसके पद में संसदीय शासन की प्रमुख विशेषता का समावेश किया गया है। क्योंकि संसदीय शासन की मुख्य विशेषता, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप है। कार्यपालिका के सभी सदस्यों के लिए व्यवस्थापिका का सदस्य होना अनिवार्य होता है। और राष्ट्रपति के पद में ये दोनों विशेषताएँ पाई जाती हैं क्योंकि एक

तरफ वह कार्यपालिका का प्रमुख होता है तो दूसरी तरफ वह संसद का अंग होता है। कोई भी विधेयक तबतक कानून का रूप नहीं लेता है जब तक कि उसे राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति नहीं प्रदान कर देता है।

साथ ही हमने इस इकाई में यह भी अध्ययन किया है कि राज्य सभा प्रथम दृष्टया तो कानून निर्माण में समान दिखाई देती है परन्तु संवैधानिक संशोधन विधेयक के अतिरिक्त सामान्य विधेयक और वित्तीय विधेयक के मामले में स्थिति गौण है क्योंकि राज्य सभा सामान्य विधेयक को अधिकतम 06 माह तक रोक सकती है और वित्त विधेयक को केवल 14 दिन तक रोक सकती है, इसके पश्चात वह उसी रूप में पारित होगा जिस रूप में लोक सभा चाहेगी। राज्य सभा की आपत्तियाँ का उस विधेयक पर कोई निर्णायक प्रभाव नहीं छोड़ सकती हैं। फिर भी जल्दबाजी में कोई विधेयक न पारित हो, उसके सभी पक्षों पर विचार हो सके इस दृष्टि से राज्य सभा अति महत्वपूर्ण सदन है। उस समय तो और भी जबकि लोक सभा में किसी दल या संगठन को बहुमत हो जबकि राज्य सभा में किसी दल या संगठन को।

7.9 शब्दावली

संसद -- राष्ट्रपति + राज्य सभा + लोक सभा

नाम मात्र की कार्यपालिका – संसदीय शासन प्रणाली में नाम मात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में अंतर पाया जाता है। नाम मात्र की कार्यपालिका वह होता है जिसमें संवैधानिक रूप से सभी शक्तियाँ निहित होती हैं परन्तु उन शक्तियों का वह स्वयं प्रयोग नहीं करता है, वरन मंत्रिपरिषद करती है। भारत में नाम मात्र की कार्यपालिका राष्ट्रपति और ब्रिटेन में सम्राट होते हैं।

वास्तविक कार्यपालिका – यह वह कार्यपालिका जो नाम मात्र की कार्यपालिका को प्रदान की गई शक्तियों का प्रयोग उसके नाम से करती है। जैसे भारत और ब्रिटेन में मंत्रिपरिषद।

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. असत्य 6. असत्य 7. असत्य

7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय संविधान	-	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन	-	बी.एल. फड़िया
भारतीय लोक प्रशासन	-	अवस्थी एवं अवस्थी

7.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	डी.डी. बसु
भारतीय लोक प्रशासन	-	एस.सी. सिंहल

7.13 निबंधात्मक प्रश्न -1. संसद के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिये ?

इकाई 8 : केन्द्रीय सचिवालय, मन्त्रिमण्डल सचिवालय, प्रधानमंत्री कार्यालय

इकाई की संरचना

- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 उद्देश्य
- 8.3 केन्द्रीय सचिवालय
 - 8.3.1 केन्द्रीय सचिवालय के कार्य
- 8.4 कैबिनेट(मन्त्रिमण्डल) सचिवालय
 - 8.4.1 कैबिनेट (मन्त्रिमण्डल) सचिवालय के कार्य
- 8.5 प्रधानमंत्री कार्यालय
 - 8.5.1 प्रधानमंत्री कार्यालय के कार्य
- 8.6 सारांश
- 8.7 शब्दावली
- 8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 8.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 8.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 8.11 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

भारतीय प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने हेतु कई मंत्रालयों एवं विभागों में विभाजित किया गया है जिनसे मिलकर केन्द्रीय सचिवालय का निर्माण होता है। मंत्रियों द्वारा सचिवालय से विचार-विमर्श करके नितियों का निर्माण किया जाता है।

मंत्रिमण्डल सचिवालय की स्थापना एक ऐसे प्रशासनिक संस्थान के रूप में की गई है जो मंत्रिमण्डल के कार्यों में सहयोग देने के लिए है। मंत्रिमण्डल सचिवालय देश के एक नीति निर्माण अभिकरण के रूप में स्थापित किया गया है।

भारत में संसदीय प्रणाली होने के कारण व्यावहारिक शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री करता है। सरकार के अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री को शासन कार्यों में कार्यालयीन सहायता करने के लिए 15 अगस्त, 1947 को प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना की गई। इस कार्यालय का निर्माण उन कार्यों का सम्पादन करने के उद्देश्य से किया गया है जिन्हें 15 अगस्त 1947 से पूर्व गवर्नर जनरल के व्यक्तिगत सचिव द्वारा किया जाता था।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात

- 1 - हम केन्द्रीय सचिवालय के संगठन और कार्यों को जान सकेंगे।
- 2 - हम मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय के संगठन और कार्यों को जान सकेंगे।
- 3- हम प्रधानमन्त्री कार्यालय के संगठन और कार्यों को जान सकेंगे

8.3 केन्द्रीय सचिवालय

भारतीय प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने हेतु कई मंत्रालयों एवं विभागों में विभाजित किया गया है जिनसे मिलकर केन्द्रीय सचिवालय का निर्माण होता है। मंत्रियों द्वारा सचिवालय से विचार-विमर्श करके नितियों का निर्माण किया जाता है। नीतियों को क्रियान्वित करने के लिए संलग्न, अधीनस्थ तथा क्षेत्रीय कार्यालय होते हैं। इस प्रकार सचिवालय एक अवधारणा है जिसका अभिप्राय केन्द्र सरकार के स्तर पर गठित मंत्रालयों एवं विभागों के समुच्चय से है जिनका राजनीतिक अध्यक्ष मंत्री होता है एवं प्रशासनिक अध्यक्ष सचिव होता है।

केन्द्रीय सचिवालय की अवधारणा दो विचारधाराओं पर आधारित है-

1 राजनीतिक-प्रशासन द्वैतभाव की विचारधारा:- जिसके अन्तर्गत नीति निर्माण को नीति क्रियान्वयन से पृथक किया गया है। इसके अन्तर्गत सचिवालय की भूमिका को नीति निर्धारण से जोड़ा गया है एवं क्रियान्वयन हेतु क्षेत्रीय संस्थान का निर्माण किया गया है।

2 अवधि प्रणाली की विचारधारा:- केन्द्रीय सचिवालय केन्द्र सरकार के मुख्यालय की हैसियत से नीति निर्माण के लिए उत्तरदायी है परन्तु नीति के क्रियान्वयन के लिए केन्द्रीय सचिवालय के अन्तर्गत क्षेत्रीय संस्थान का निर्माण किया गया है। केन्द्र सरकार के स्तर पर क्षेत्रीय संस्थान मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं-

1.संबंधित कार्यालय या संलग्न कार्यालय:- इसके दो मौलिक कार्य हैं। पहला, नीति निर्माण की प्रक्रिया में तकनीकी परामर्श प्रस्तुत करना एवं दूसरा नीति के क्रियान्वयन का परिवीक्षण करना।

2.अधीनस्थ कार्यालय:- यह केन्द्र सरकार की नीति के वास्तविक एवं क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी माना गया है।

इन दोनों के अतिरिक्त क्षेत्रीय संस्थान निम्नांकित प्रकार के भी हो सकते हैं, जैसे - विभागीय उपक्रम, लोक निगम सरकारी कंपनी आदि। ये तीनों मौलिक स्वरूप हैं। जिनके माध्यम से सरकार वाणिज्यिक एवं व्यावसायिक कार्यों का संचालन करती है।

केन्द्रीय सचिवालय का संगठन:- केन्द्रीय सचिवालय में अनेक मंत्रालय और विभाग हैं जिनकी संख्या घटती बढ़ती रहती है। इसके संगठन को निम्नांकित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

पदाधिकारी	स्तर
मंत्री	मंत्रालय का राजनीतिक अध्यक्ष
सचिव	मंत्रालय का प्रशासनिक अध्यक्ष
विशेष या अतिरिक्त सचिव	-----

अधिकारी वर्ग	संयुक्त सचिव	उपविभाग का अध्यक्ष
उपसचिव/निदेशक		प्रभाग का अध्यक्ष
अवर सचिव		शाखा
अनुभाग अधिकारी		अनुभाग
सहायक		अनुभाग अधिकारी का सहायक
कार्यालय		ग्रुप- ब कर्मचारी
ग्रुप- क कर्मचारी		

इस प्रकार निदेशक तथा उपसचिव के पदों को समान स्तर का मानते हुए केन्द्रीय सचिवालय के ढांचे को सचिव से लेकर निम्न श्रेणी तक 9 ग्रेडों में रखा गया है। सचिवालय में अधिकारियों की ये श्रेणियाँ अधिदित सिद्धान्त पर आधारित हैं जिसके अन्तर्गत प्रत्येक श्रेणी के अधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह जितना अधिक कार्य कर सके, उतना करे और केवल महत्वपूर्ण मामले ही उच्च स्तर पर पहुँचे।

अधिकारी वर्ग प्रायः भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य होते हैं। इन अधिकारियों की भर्ती केन्द्रीय सरकार के द्वारा विभिन्न राज्यों की भारतीय प्रशासनिक सेवा श्रेणियों में से कार्यकाल पद्धति के अन्तर्गत की जाती है। यह पद्धति 1905 से लार्ड कर्जन के समय शुरू हुई। इस वर्ग में भर्ती के दूसरे स्रोत केन्द्रीय सचिवालय सेवा का गठन 1951 में किया गया। केन्द्रीय सचिवालय सेवा के अधिकारियों को मंत्रालयों एवं विभागों से इसलिए सम्बद्ध किया जाता है ताकि सचिवालयी कार्यों में निरन्तरता बनी रही। सन् 1957 से केन्द्रीय सचिवालय के उच्चस्थ अधिकारियों की नियुक्ति हेतु केन्द्रीय स्टाफिंग योजना प्रारंभ की गई है।

8.3.1 केन्द्रीय सचिवालय के कार्य

सरकारी हैण्डबुक के अनुसार सचिवालय के प्रमुख कार्य निम्नांकित हैं-

1. नीति का निर्धारण तथा समय-समय पर आवश्यकतानुसार नीति के संशोधन में मंत्री की सहायता करना।
2. नियम, विधान तथा विनियम बनाना।
3. क्षेत्रीय कार्यक्रम और योजना तैयार करना।
4. मंत्रालय या विभाग के कार्यों के सन्दर्भ में बजट तैयार करना और व्यय पर नियन्त्रण करना।

5. प्रारम्भ होने वाले कार्यक्रमों और योजनाओं की वित्तीय तथा प्रशासनिक अनुमति देना और उनमें आवश्यक संशोधन करना।
6. कार्यपालिका विभागों एवं अर्द्ध स्वायत्त क्षेत्रीय अभिकरणों द्वारा निर्मित नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का पर्यवेक्षण करना।
7. नीतियों की व्याख्या करना एवं उनमें समन्वय लाना।
8. मंत्रालय या विभाग में कार्यरत कर्मचारियों एवं संगठन की क्षमता बढ़ाने के लिए कदम उठाना।
9. मंत्री को उसके संसदीय उत्तरदायित्व को पूरा करने में सहायता देना।

इस प्रकार सचिवालय एक प्रशासनिक परामर्शदात्री निकाय है। वह एक ओर तो नीति निर्धारक, समन्वयकर्ता और नियंत्रक निकाय है तो दूसरी ओर सरकार का प्रमुख कार्यपालिका निकाय ही है।

सचिवालय कार्यप्रणाली की आलोचना:- भारत में सचिवालय प्रशासन की रीढ़ है फिर भी सचिवालय की कार्यप्रणाली की निम्नांकित आधारों पर आलोचना की जाती है -

- 1 अनावश्यक रूप से बढ़ता हुआ आकार।
- 2 सचिवालय के कर्मियों की संख्या में इतनी अधिक वृद्धि कि वह एक भीड़ भरा संगठन बन गया है।
- 3 अत्यन्त खर्चिला।
- 4 विलम्बकारी प्रक्रिया।
- 5 विलंब की समस्या से प्रजातंत्र के स्वरूप में भ्रष्टाचार का उदय।
- 6 सचिवालय यद्यपि नीति निर्माण करने वाली संस्था है तथापि आजकल यह कार्यकारी विभागों के कार्यों का संचालन अधिकाधिक मात्रा में करने लगा है, परिणामस्वरूप एक ओर तो सचिवालय अपना ध्यान नीति निर्माण के कार्य पर क्रेन्द्रित नहीं कर पाता और दूसरी ओर कार्यकारी इकाईयों की शक्ति में ह्रास होता जा रहा है।
- 7 वर्तमान समय में सचिवालय अपना क्षेत्राधिकार बढ़ाने की मनोवृत्ति से पीड़ित।
- 8 सचिवालय के कार्यकारी अपने आपको इकाईयों के कार्मिकों से अधिक योग्य मानने की प्रवृत्ति से पीड़ित दिखाई देते हैं।

सचिवालय सुधार के लिये प्रयास एवं सुझाव:- भारत सरकार सचिवालय के दोषों को दूर करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रही है। प्रशासनीक सुधार आयोग के सुझावों पर आवश्यकतानुसार अमल किया गया है, जैसे -

1. निर्णय प्रक्रिया में पदसोपानों की संख्या में कमी करने की दिशा में कदम उठाए गये है।
2. निम्न स्तर पर प्रशासनिक कुशलता लाने के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाती है।
3. सचिवालय में अनावश्यक नियुक्तियों को तथा अनावश्यक व्ययों को हतोत्साहित किया जा रहा है।

4. कर्मचारियों की पदोन्नति के नये नियम लागू हो रहे हैं और यह समझा जाने लगा है कि वरिष्ठ पदों को भरने के लिए आयु को अनावश्यक महत्व न दिया जाए।

5. यह भी सुझाव दिया गया है कि एक मंत्रालय के साथ संलग्न सचिव को दोवर्ष के स्थान पर लगातार पांच वर्ष के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए।

इस के अतिरिक्त सचिवालय की कार्य पद्धति को सरल एवं गतिमान बनाया गया है और लालफीताशाही को समाप्त करने पर जोर दिया जा रहा है। सचिवालय सुधार के लिए कुछ सुझाव निम्नांकित है-

1. सचिवालय की कार्य प्रणाली को अधिक गति देने के लिए यह आवश्यक है कि सचिवालय केवल नीति निर्माण का ही कार्य करें।

2. सचिवालय के कार्यों में कुशलता लाने के लिए विभागाध्यक्ष, सचिव तथा मंत्री तीनों के मध्य की दूरीयाँ कम की जाए।

3. प्रशासनिक विभागों की अध्यक्षता हेतु विशेषज्ञ अधिकारियों को प्राथमिकता दी जाए।

अवधि प्रणाली:- अवधि प्रणाली की शुरूवात लार्ड कर्जन के द्वारा 1905 में की गई। इसके अन्तर्गत क्षेत्रीय संस्थान के स्तर पर कार्य करने वाले अधिकारियों को एक निर्धारित अवधि के लिए मुख्यालय के स्तर पर पद स्थापित किया जाता था। आजादी के उपरांत अवधि प्रणाली से राज्य सरकार के स्तर पर कार्य कर रहे अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों को एक निश्चित समय तक कन्द्रीय सचिवालय में पद स्थापित किया जाता है। अपने इस कार्यकाल को पूरा करने के उपरान्त उन्हें पुनः संबन्धित राज्य सरकार की सेवा में वापिस भेज दिया जाता है।

अवधि प्रणाली के पक्ष में तर्क (गुण)-

1. केन्द्र एवं राज्य के बीच अधिक प्रभावी प्रशासनिक समन्वय प्राप्त किया जा सकता है।

2. अवधि प्रणाली केन्द्र एवं राज्य सरकार दोनों के लिए फायदे मन्द है। केन्द्र सरकार अधिक वास्तविक तरीके से स्थानीय अनुभव के आधार पर नीति का निर्माण कर सकती है क्योंकि राज्य सरकार के स्तर कार्य करने वाले अधिकारियों के पास जिला प्रशासन का वास्तविक अनुभव होता है। राज्य सरकार इन अधिकारियों के माध्यम से अपनी प्रशासनिक गतिविधियों में व्यापक राष्ट्रीय दृष्टिकोण को प्राप्त कर सकती है।

3. भारतीय प्रशासन में समरूपता प्राप्त करने के दृष्टिकोण से अवधि प्रणाली का विशेष योगदान है।

4. अवधि प्रणाली देश की एकता एवं अखण्डता बनाये रखने में सहयोगी है।

5. अवधि प्रणाली की विचारधारा भारतीय संघवाद की विचारधारा से मेल रखती है।

6. अवधि प्रणाली अधिकारियों के बीच समानता के अवसर उपलब्ध कराती है।

7. राज्य सरकार के स्तर पर कार्य करने वाले अधिकारी अधिक राजनीतिक निष्पक्षता के साथ अपने कार्यों का संचालन कर सकते हैं अर्थात् लोक सेवा के स्वतंत्र एवं निष्पक्ष कार्यों के सन्दर्भ में अवधि प्रणाली की भूमिका महत्वपूर्ण है।

8. अवधि प्रणाली के माध्यम से केन्द्र सरकार अपनी नीतियों पर जनता की सामान्य प्रतिक्रिया को प्राप्त कर सकती है।

अवधि प्रणाली के विपक्ष में तर्क -

1. जब राज्य प्रशासन के अधिकारी केन्द्रीय सचिवालय के अन्तर्गत किसी पद को ग्रहण करते हैं तो ऐसी परिस्थिति में संबंधित मंत्रालय की कार्यपद्धति से परिचित न होने के कारण उस अधिकारी की निर्भरता कार्यालय पर बनी रहती है। अतः जिस अवधि प्रणाली के माध्यम से अधिकारियों की कार्यकुशलता को अधिक करने का प्रयास किया गया है उससे वैसा हो पाना संभव नहीं हो रहा है।

2. केन्द्र सरकार के स्तर पर कुछ एसी गतिविधियाँ संचालित की जाती हैं जिनमें जिला प्रशासन का स्थानीय अनुभव अनिर्वाय नहीं है। अतः ऐसे क्षेत्रों में अवधि प्रणाली की उपयोगिता काफी सीमित हो जाती है।

3. कई परिस्थितियों में ऐसा भी देखने को मिलता है कि राज्य प्रशासन के अधिकारी जब अवधि प्रणाली के अन्तर्गत केन्द्र सरकार के स्तर पर सेवा प्रदान करने जाते हैं तो इसके उपरांत पुनः राज्य प्रशासन की सेवा में वापिस जाने में दिलचस्पी नहीं रखते। अतः अवधि प्रणाली के माध्यम से जो लाभ राज्य प्रशासन को होना चाहिए वह संभव नहीं हो पाता।

4. केन्द्रीय सचिवालय सेवा को स्थापित करने के उपरांत अनुभाग अधिकारी पदोन्नति के माध्यम से उच्चतर अधिकारी वर्ग में शामिल किये जाते हैं। ऐसा होने के कारण अवधि प्रणाली के अन्तर्गत राज्य प्रशासन के अधिकारियों को सीमित अवसर प्राप्त होते हैं।

5. अवधि प्रणाली के अंतर्गत केन्द्रीय सचिवालय के स्तर पर आने वाले अधिकारियों की संख्या में अनिश्चितता बनी रहती है।

6. सचिवालय सेवा के अधिकारियों के पदोन्नति के अवसर कम, मनोबल प्रभावित, समन्वय की समस्या

8.4 मंत्रिमण्डल सचिवालय

मंत्रिमण्डल सचिवालय की स्थापना एक ऐसे प्रशासनिक संस्थान के रूप में की गई है जो मंत्रिमण्डल के कार्यों में सहयोग देने के लिए है। मंत्रिमण्डल सचिवालय देश के एक नीति निर्माण अभिकरण के रूप में स्थापित किया गया है। भारतीय शासन प्रणाली के अन्तर्गत मंत्रिमण्डल प्रमुख

नीति निर्माणकर्ता अभिकरण है। अतः मंत्रिमण्डल सचिवालय के द्वारा सरकार की नीतियों का अंतिम निर्धारण किया जाता है।

मंत्रिमण्डल प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में अपने कार्यों को सम्पन्न करता है। प्रधानमंत्री मंत्रिमण्डल के अध्यक्ष के रूप में मंत्रिमण्डल सचिवालय से परामर्श एवं सहयोग प्राप्त करता है जिसकी अध्यक्षता मंत्रिमण्डल सचिव के द्वारा की जाती है। मंत्रिमण्डल सचिव पूरे देश का सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी है। विभिन्न मंत्रालयों के बीच समन्वय को प्राप्त करने के लिए मंत्रिमण्डल सचिवालय को उत्तरदायी माना गया है।

जब प्रधानमंत्री सरकार के अध्यक्ष के रूप में अपने कार्यों का निष्पादन करते हैं तो दैनिक प्रशासनिक सहयोग प्रधानमंत्री कार्यालय के द्वारा प्रदान किया जाता है। ऐसी स्थिति में मंत्रिमण्डल सचिवालय एवं प्रधानमंत्री कार्यालय के बीच आजादी के उपरान्त ही समय समय पर विवादस्पद मुद्दे उठते रहे हैं। संसदीय प्रणालीकी विचारधारा के अनुसार भारतीय शासन में मंत्रिमण्डलीय सचिवालय की भूमिका निर्णायक होनी चाहिए, परन्तु प्रधानमंत्री के बदलते हुए व्यक्तित्व के संदर्भ में मंत्रिमण्डल सचिवालय की निर्णायक भूमिका प्रधानमंत्री कार्यालय में देखने को मिलती है।

संगठन:- मंत्रिमण्डल सचिवालय सीधे प्रधानमंत्री के अधीन कार्य करता है। इसका सचिव कैबिनेट, सचिव होता है जो कि प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठ अधिकारी होता है। उसकी सहायता के लिए अन्य अधिकारी एवं कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं।

8.4.1 कैबिनेट सचिवालय के कार्य

कैबिनेट सचिवालय केन्द्रीय प्रशासन का केन्द्र-बिन्दु है। भारत में कैबिनेट की कार्यकुशलता तथा प्रशासन की सुव्यवस्था बहुत हद तक मंत्रिमण्डल सचिवालय की क्षमता पर निर्भर करती है। मंत्रिमण्डल सचिवालय के कार्यों का विवरण निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत दिया जा सकता है-

1. कैबिनेट सचिवालय के रूप में

केन्द्रीय मंत्रिमण्डल तथा उसकी समितियों को दैनिक कार्य से संबंधित सचिवालय सहायता प्रदान कराना।

कैबिनेट की बैठकों की कार्यसूची तैयार करना, वाद-विवाद तथा निर्णयों का अभिलेख रखना।

केन्द्रीय मंत्रिमण्डल, उसकी समितियों, राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति को विभिन्न सरकारी संस्थाओं से संबंधित आवश्यक सूचनायें उपलब्ध कराना।

मंत्रिमण्डल की बैठकों के निर्णयों की सूचना संबंधित विभागों को पहुँचाना।

2. प्रारम्भकर्ता के रूप में:- इस रूप में कैबिनेट सचिवालय तीन प्रकार के प्रारम्भिक कार्य करता है-

मंत्रिपरिषद के मंत्रियों की नियुक्तियाँ, उनके बीच विभागों के वितरण, शपथ ग्रहण, त्यागपत्र आदि से संबंधित समस्त कार्य।

ऐसे कानूनों का निर्माण करना जो सरकार के कार्यों को सुविधापूर्वक सम्पन्न करने में सहायता करते हों।

सरकार की नितियों को लागू करने तथा उनमें समन्वय लाने से सम्बन्धित विभागों की देखरेख रखना।

3. समन्वयकर्ता विभाग के रूप में:- केन्द्रीय प्रशासनिक स्तर पर कैबिनेट सचिवालय एक प्रमुख समन्वय संस्था है। इस रूप में यह निम्नांकित कार्य करता है-

भारत सरकार में कार्यरत विभिन्न मंत्रालयों, विभागों, समितियों आदि के बीच समन्वय स्थापित करना।

सरकार की प्रमुख नीतियों और गतिविधियों में समन्वय।

केन्द्र सरकार एवं विभिन्न राज्य सरकारों के बीच समन्वय।

कैबिनेट सचिव विभिन्न समितियों का अध्यक्ष होने के नाते विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

4. मंत्रिमण्डल के निर्णयों को क्रियान्वित करने के रूप में-

प्रधानमंत्री तथा मंत्रियों को समय-समय पर महत्वपूर्ण विषयों से सम्बन्धित नीतियों के निरूपण एवं निष्पादन के विषय में परामर्श देना।

मंत्रिमण्डल के समक्ष प्रस्तुत सभी विषयों के सम्बन्ध में मंत्रिमण्डल की सहायता और कार्यवाही करना जैसे -संसद में व्यवस्थापन के लिए प्रस्तुत किये जाने वाले प्रस्ताव तैयार करना, सार्वजनिक जांच समितियों की नियुक्ति, संसद के अधिवेशन प्रारम्भ करने, समाप्त करने आदि पर विचार, विदेशों के साथ सन्धियां एवं समझौते इत्यादि।

कैबिनेट सचिवालय का एक महत्वपूर्ण कार्य यह देखना भी है कि मंत्रिमण्डल या उसकी समितियों द्वारा लिये गये निर्णय लागू हो रहे हैं या नहीं। इस कार्य हेतु यह सचिवालय मासिक प्रतिवेदन तैयार करता है।

इस प्रकार प्रशासनिक व्यवस्था में मंत्रिमण्डल सचिवालय का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना के बाद इसके महत्व में धीरे-धीरे कुछ कमी अवश्य देखी जा सकती है। फिर भी मंत्रिमण्डल सचिवालय, मंत्रिमण्डल के सचिवालय सम्बन्धी कार्यों के लिए स्टाफ भुजा के समान है। अतः उसे सरकारी कार्यों का सम्पादन करने हेतु एक सरकारी विभाग मात्र नहीं मान लेना चाहिए।
मंत्रिमण्डल सचिव –

कैबिनेट सचिवालय का प्रमुख कैबिनेट सचिव होता है जो प्रधानमंत्री के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में रहता है। कैबिनेट सचिव द्वारा मंत्रिमण्डल सचिवालय की एवं सचिवों के सम्मलेन की अध्यक्षता की जाती है। कैबिनेट सचिव भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठतम सदस्य होता है। इसे भारतीय प्रशासन का सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न एवं प्रतिष्ठित पद माना जाता है।

प्रशासनिक सुधार आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार-

1. योग्यतम एवं वरिष्ठतम अधिकारियों को ही कैबिनेट सचिव बनाया जाता है।
2. इस पद को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है कि इसकी अवधि 3 या 4 वर्ष की हो।
3. कैबिनेट सचिव को अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा के वेतन का अधिकतम वेतनमान का अधिकतम वेतन दिया जाये।
4. आयोग के अनुसार महत्वपूर्ण नीति निर्धारक विषयों में उसे अधिक महत्व दिया जाना चाहिए, क्योंकि वह प्रधानमंत्री, मंत्रिमण्डल तथा मंत्रिमण्डलीय समितियों का प्रमुख सलाहकार होता है। देशमुख टीम के अनुसार इस पद को अन्य सचिवों की तुलना में अधिक वेतनमान दिया जाए। यह टीम इस पद के क्रियान्वयन के तरीके से संतुष्ट नहीं थी और उसने इस पद की गरिमा एवं भूमिका में सुधार के लिए अनेक सिफारिशों की, जैसे -

1. दो या अधिक मंत्रालयों के बीच मतभेद की स्थिति में उन मामलों को कैबिनेट सचिव के पास भेजा जाना चाहिए।
2. कौन सा मामला किस मंत्रालय से सम्बंधित है इसका निराकरण कैबिनेट सचिव पर छोड़ देना चाहिए। साथ ही कैबिनेट सचिव को समय-समय पर अन्य सचिवों से सम्पर्क स्थापित करते रहना चाहिए।

मंत्रिमण्डल सचिवालय एवं मंत्रिमण्डल सचिव की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कारण -

1. मंत्रीमण्डलीय सचिव को प्रधानमंत्री का अपेक्षित संरक्षण न मिलना।
2. मंत्रियों और सचिवालय के उच्चस्थ अधिकारियों में पारस्परिक हितों के लिए गठजोड़, जिसका प्रभाव मंत्रिमण्डलीय सचिव के समन्वय सम्बन्धि कार्यों पर।
3. कार्मिक प्रशासन मंत्रालय का प्रधानमंत्री के नियंत्रण में रखा जाना और कई महत्वपूर्ण विषयों के सन्दर्भ में इस मंत्रालय का हस्तक्षेप तथा मंत्रिमण्डल सचिव की उपेक्षा।
4. प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना के पश्चात कई बार प्रधानमंत्री की मंत्रिमण्डलीय सचिवालय के बजाय प्रधानमंत्री कार्यालय पर अधिक निर्भरता।
5. कई अवसरों पर मंत्रिमण्डलीय सचिवों की नियुक्ति, सेवा विस्तार कार्य आदि के सम्बन्ध में राजनीतिक हस्तक्षेप।

मंत्रिमण्डल सचिव की कार्यात्मकता को सुदृढ़ करने हेतु कुछ सुझाव:- मंत्रिमण्डल सचिवालय एक प्रभावकारी समन्वयकर्ता निकाय है किन्तु यह प्रभावशाली समन्वय में उतना सक्षम नहीं हो पाता है। इसके पुनर्गठन और क्षमता के विकास के लिए निम्नांकित सुझाव दिये जा सकते हैं-

1. प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार सांख्यिकी विभाग को वित्तीय विभाग में मिला देना चाहिए तथा सैन्य शाखा को रक्षा मंत्रालय को सौंप देना चाहिए। ऐसा करने से इस सचिवालय के पास अधिकांशतः मंत्रिमण्डल मामलों से सम्बंधित विभाग ही बचे रहेंगे।

2. कैबिनेट सचिव के पद का कार्यकाल तीन या चार साल किया जाना चाहिए।
3. मंत्रिमण्डल सचिव की नियुक्ति के पहले विभिन्न पदों पर प्राप्त प्रशासनिक अनुभव जैसे किसी राज्य में मुख्य सचिव की भूमिका, आदि पर ध्यान देना चाहिए।
4. मंत्रिमण्डल सचिव की नियुक्ति के लिए वरिष्ठता के साथ-साथ योग्यता, प्रभावशीलता, कर्तव्य-निष्ठा इत्यादि को ध्यान में रखा जाना चाहिए।
5. मंत्रिमण्डल सचिव की नियुक्ति, सेवा-विस्तार आदि के सन्दर्भ में राजनैतिक कारकों को कम से कम किया जाना चाहिए।
6. प्रधानमंत्री कार्यालय और मंत्रिमण्डल सचिवालय के कार्य क्षेत्र को और अधिक स्पष्ट किया जाना चाहिए।
7. मंत्रिमण्डलीय सचिवालय एवं सचिव को प्रधानमंत्री का उपयुक्त संरक्षण प्राप्त होना चाहिए।

8.5 प्रधानमंत्री कार्यालय

भारत में संसदीय प्रणाली होने के कारण व्यावहारिक शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री करता है। सरकार के अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री को शासन कार्यों में कार्यालयीन सहायता करने के लिए 15 अगस्त, 1947 को प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना की गई। इस कार्यालय का निर्माण उन कार्यों का सम्पादन करने के उद्देश्य से किया गया है जिन्हें 15 अगस्त 1947 से पूर्व गवर्नर जनरल के व्यक्तिगत सचिव द्वारा किया जाता था। ज्ञातव्य है कि प्रधानमंत्री ने इसी तिथि से वह सभी कार्य अपने हाथों में लिए, जो इसके पहले गवर्नर जनरल सरकार की कार्यपालिका के प्रमुख के रूप में किया करता था।

स्वतंत्रता के पश्चात विकास:- आजादी के उपरान्त पंडित नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने। नेहरू संसदीय प्रजातान्त्रिक विचारधारा का आदर करते थे एवं मंत्रिमंडल के सामूहिक निर्णय पर विश्वास करते थे। अतः प्रधानमंत्री कार्यालय का सम्बन्ध सीमित दैनिक प्रशासनिक कार्यों से था जो कि प्रधानमंत्री को सरकार के अध्यक्ष के रूप में चाहिए था। अतः इस समय महत्व की दृष्टि से प्रधानमंत्री कार्यालय, कैबिनेट सचिवालय के बाद आता था और प्रधानमंत्री कार्यालय को निर्णयकारी भूमिका प्राप्त नहीं थी।

जब लालबहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बने, तब उनके पास प्रशासनिक दक्षता नहीं थी। अतः शास्त्री ने कार्यालय की भूमिका को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस समय प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिका देश के उच्चतर नीति निर्णायक अभिकरण के रूप में स्थापित हुई और शास्त्री के कार्यालय में एल. के. झा. जैसे प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले प्रशासनिक अधिकारी को प्रधानमंत्री कार्यालय का सचिव नियुक्त किया गया। झा काफी प्रभावशाली हो गये और उन्हें 'सुपर सचिव' की संज्ञा दी जाने लगी। शास्त्री के समय यह अत्यन्त शक्तिशाली होकर उभरा और प्रधानमंत्री कार्यालय का नामकरण प्रधानमंत्री सचिवालय कर दिया गया।

इन्दिरा गांधी द्वारा प्रधानमंत्री का पद ग्रहण करते समय उनके पास भी प्रशासनिक अनुभव तथा ज्ञान नहीं था अतः स्वाभाविक रूप से उनकी निर्भरता प्रधानमंत्री सचिवालय पर अधिक थी। देश की आर्थिक नीति एवं विदेश नीति जैसी जटिल विषय वस्तु पर इन्दिरा गांधी काफी हद तक प्रधानमंत्री सचिवालय पर निर्भर करती थी। ऐसी दशा में इन्दिरा गांधी के प्रधानमंत्रित्व काल में शास्त्री द्वारा शुरू की गई परम्परा को और अधिक प्रोत्साहन मिला और इस समय प्रधानमंत्री सचिवालय के आकार एवं भूमिका दोनों में वृद्धि हुई, विशेष कर राष्ट्रीय आपातकाल के समय प्रधानमंत्री सचिवालय एक वास्तविक प्रशासनिक सत्ता के एक अतिरिक्त संवैधानिक केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। प्रधानमंत्री सचिवालय एक निर्णायक अभिकरण के रूप में स्थापित हुआ एवं मंत्रिमण्डल सचिवालय एक ऐसा अभिकरण बन गया, जिसका कार्य प्रधानमंत्री सचिवालय के निर्णयों को लागू करना था।

जनता सरकार के समय प्रधानमंत्री सचिवालय का नामकरण पुनः प्रधानमंत्री कार्यालय के रूप में किया गया। इसकी भूमिका सत्ता एवं आकार दोनों की दृष्टि से सीमित करते हुए मंत्रिमण्डल सचिवालय को एक उचित नीति निर्णायक अभिकरण माना गया तथा प्रधानमंत्री कार्यालय की राष्ट्रीय मामलों में नीति निर्धारण की कोई भूमिका नहीं रही। यहां तक रॉ संगठन को भी इससे हटा दिया गया। कैबिनेट सचिवालय का कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग जो लोक सेवाओं पर नियंत्रण रखता है, पहले के समान गृह मंत्रालय को और राजस्व जांच विभाग वित्त मंत्रालय को लौटा दिया गया।

1980 में इन्दिरा गांधी पुनः प्रधानमंत्री बनी और उनके द्वारा जनता सरकार के समय किये गये अनेक कार्यों में परिवर्तन किये गये। साथ ही प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिका में बढ़ोत्तरी भी हुई, लेकिन प्रधानमंत्री कार्यालय वह स्थान प्राप्त न कर सका जो उसे पहले प्राप्त था।

1984 में राजीव गांधी के प्रधानमंत्री बनने के उपरान्त प्रधानमंत्री कार्यालय के प्रमुख प्रशासनिक विषयवस्तुओं पर परामर्शदाताओं की नियुक्ति की गई, जिससे भारतीय प्रशासनिक तंत्र में प्रधानमंत्री कार्यालय का प्रभाव अधिक हुआ। राजीव गांधी के पास भी प्रशासनिक दक्षता की कमी होने के कारण प्रधानमंत्री कार्यालय पर उनकी निर्भरता बनी रही। अतः इस समय मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों दृष्टियों से विस्तार हुआ और वह अपनी खोई शक्ति एवं प्रतिष्ठा को प्राप्त करने में सफल हुआ। नरसिंहाराव के प्रधानमंत्रित्व काल में विशेषकर अंतिम वर्षों में प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिका पुनः अपनी चरम सीमा पर पहुंच गई। नरसिंहाराव के द्वारा एक अल्पमत सरकार का नेतृत्व किया गया। अतः प्रधानमंत्री कार्यालय पर उनकी निर्भरता का अत्यधिक होना स्वाभाविक था।

इण्डिया टुडे के अनुसार वाजपेयी के नेतृत्व में प्रधानमंत्री कार्यालय केवल सजावटी चीज बन कर रह गया है। वैसे सर्वशक्तिमान प्रधानमंत्री कार्यालय को निष्प्रभाव करने का फैसला खुद वाजपेयी ने किया था। वाजपेयी के मित्रों का मानना है कि प्रधानमंत्री ने निगरानी और सुधार तंत्र को प्रभावी

तरीके से विकसित किए बगैर अपने मंत्रियों को आजादी देकर गलती की। इससे जहां नियमों की चकाचौंध और उनका असर खत्म हो गया, वही वाजपेयी की निजी छवि को चोट पहुंची। प्रधानमंत्री और उनके प्रमुख सचिव की रूचि अधिकतर रक्षा और विदेशी मामलों में होने से मौजूदा प्रधानमंत्री कार्यालय पहले के मुकाबले अन्य मामलों में बहुत कम हस्तक्षेप करता है। इसकी वजह आर्थिक मामले हैं जहां वाजपेयी कमजोर पड़ जाते हैं लेकिन धीरे-धीरे प्रधानमंत्री की सरकार पर पकड़ मजबूत होने के साथ ही प्रधानमंत्री कार्यालय की एवं प्रधानमंत्री के प्रधान सचिव ब्रजेश मिश्र की भूमिका में वृद्धि हुई। रक्षा, विदेश के अतिरिक्त अन्य कई मामलों में प्रधानमंत्री का हस्तक्षेप देखा गया एवं प्रधानमंत्री कार्यालय तथा प्रधान सचिव गतिविधियों में प्रत्यक्ष रूप से भूमिका निभाते नजर आये।

संयुक्त सरकार की विचारधारा के अन्तर्गत प्रधानमंत्री एक राजनैतिक असुरक्षा की भवना में कार्य करते हैं ऐसी स्थिति में प्रधानमंत्री कार्यालय पर उनकी निर्भरता स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त संयुक्त सरकार में कई अन्य राजनैतिक दलों के सदस्यों को मिलाकर मंत्रिपरिषद का निर्माण किया जाता है। अतः प्रधानमंत्री विश्वसनीय परामर्शों के लिए प्रधानमंत्री कार्यालय पर ज्यादा निर्भर होते हैं लेकिन संयुक्त सरकार में प्रधानमंत्री संतुलन एवं अवरोध के नियम के अन्तर्गत अपने कार्यों का संचालन करते हैं। ऐसी अवस्था में प्रधानमंत्री की तुलना में मंत्रिमण्डल का विशेष महत्व होता है। अतः मंत्रिमण्डल सचिवालय की भूमिका का विशेष महत्व होना स्वभाविक है।

संयुक्त सरकार के सन्दर्भ में प्रधानमंत्री कार्यालय गोपनीय विचार हेतु प्रधानमंत्री के लिए एक आरक्षित एवं सुरक्षित स्थान नहीं माना जाता है। अतः सत्ता का हस्तांतरण प्रधानमंत्री कार्यालय के निवास की ओर देखने को मिल रहा है।

आज भारतीय प्रशासन में प्रधानमंत्री कार्यालय का न केवल महत्व बढ़ा है बल्कि उसकी अहम भूमिका है। आज यह असाधारण रूप से शक्तिशाली संगठन है जिससे अनेक विशेषज्ञ सम्बद्ध हैं। प्रधानमंत्री कार्यालय जो केन्द्रीय सचिवालय संगठनों में सबसे छोटा है मंत्रिमण्डल सचिवालय से भी बड़ा हो गया है। वस्तुतः प्रधानमंत्री कार्यालय के सचिव की भूमिका मित्र, मार्गदर्शक और परामर्शदाता जैसी हो, तो वह अधिक उपयोगी होगा।

संगठन:- प्रधानमंत्री कार्यालय का शीर्षस्थ अधिकारी प्रधान सचिव कहलाता है अनुबंध के आधार पर नियुक्त किया जाता है। प्रधानमंत्री अपनी पसन्द के किसी भी व्यक्ति को इस पद पर नियुक्त कर सकते हैं और यह पद कार्याकाल पद्धति से मुक्त है। उपसचिव और उसे उपर के पदों पर नियुक्ति मंत्रिमण्डल की नियुक्ति समिति की स्वीकृति से होती है। अवर सचिव और नीचे के पद गृह मंत्रालय द्वारा भरे जाते हैं।

8.5.1 प्रधानमंत्री कार्यालय के कार्य:-

साधारणतः प्रधानमंत्री कार्यालय के क्षेत्राधिकार में वह सभी विषय आते हैं जो कि व्यक्तिगत विभाग या मंत्रालय को नहीं सौंपे गये हैं। प्रधानमंत्री कार्यालय की निम्नांकित भूमिकाएं हैं-

1. प्रधानमंत्री को सरकार के अध्यक्ष के रूप में या मुख्य कार्यापालिका के रूप में कार्य करते समय प्रधानमंत्री कार्यालय, प्रधानमंत्री को सहयोग देता है।

2. यदि कोई प्रशासनिक विषयवस्तु किसी मंत्री को न सौंपी गई हो, तो उस विषयवस्तु का कार्यभार प्रधानमंत्री पर होता है एवं उन विषयवस्तुओं पर प्रधानमंत्री कार्यालय, प्रधानमंत्री को सहयोग देता है।

३ . इस कार्यालय के माध्यम से प्रधानमंत्री अन्य केन्द्रीय मंत्रियों, राष्ट्रपति, राज्यपालों, मुख्यमंत्रियों, राजदूतों आदि से सम्पर्क सूत्र स्थापित करता है।

४ . यदि जनता की कोई शिकायत प्रधानमंत्री के पास भेजी जाए, तो प्रधानमंत्री कार्यालय उन शिकायतों का निराकरण सुनिश्चित करता है।

५ . प्रधानमंत्री कार्यालय में ससंद में सामान्य विषयों पर पूछे गये प्रश्नों का उत्तर किया जाता है जिन्हें किसी मंत्रालय को नहीं सौंपा गया है।

६ . प्रधानमंत्री के आवश्यक रिकार्ड रखना, उनके अतिथियों के स्वागत सत्कार की व्यवस्था करना तथा प्रधानमंत्री द्वारा मांगी गई सूचना प्रदान करना प्रधानमंत्री कार्यालय के उत्तरदायित्व है।

७ . प्रधानमंत्री के आदेश एवं संदेश को मंत्रिमण्डलीय सचिवालय को सूचित करना भी प्रधानमंत्री कार्यालय का कार्य है। आजकल यह प्रधानमंत्री के महत्वपूर्ण भाषण तैयार करने, राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था की देखरेख करने तथा प्रधानमंत्री के विदेश यात्रा के कार्यक्रम बनाने का भी कार्य करने लगा है।

इसके अतिरिक्त भूकंप, बाढ़, सूखा आदि संकटों के समय या अन्य अवसरों पर प्रधानमंत्री कोष से राज्यों या व्यक्तियों को जो आर्थिक सहायता पहुंचाई जाती है उसका लेखा-जोखा भी प्रधानमंत्री कार्यालय रखता है।

अभ्यास प्रश्न

1. केन्द्रीय सचिवालय सेवा का गठन 1951 में किया गया। सत्य/असत्य

2. भारतीय प्रशासनिक सेवा श्रेणियों में कार्यकाल पद्धति, 1905 से लार्ड कर्जन के समय शुरू हुई। सत्य/असत्य

3. राजीव गांधी किस सन में प्रधानमंत्री नियुक्त किये गए थे। सत्य/असत्य

8.6 सारांश

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि, सचिवालय एक प्रशासनिक परामर्शदात्री निकाय है। वह एक ओर तो नीति निर्धारक, समन्वयकर्ता और नियंत्रक निकाय है तो दूसरी ओर सरकार का प्रमुख कार्यपालिका निकाय है।

इसके साथ ही प्रशासनिक व्यवस्था में मंत्रिमण्डल सचिवालय का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना के बाद इसके महत्व में धीरे-धीरे कुछ कमी अवश्य देखी जा सकती है। फिर भी मंत्रिमंडल सचिवालय, मंत्रिमण्डल के सचिवालय सम्बन्धी कार्यों के लिए स्टाफ भुजा के समान है। अतः उसे सरकारी कार्यों का सम्पादन करने हेतु एक सरकारी विभाग मात्र नहीं मान लेना चाहिए।

आज भारतीय प्रशासन में प्रधानमंत्री कार्यालय का न केवल महत्व बढ़ा है बल्कि उसकी अहम भूमिका है। आज यह असाधारण रूप से शक्तिशाली संगठन है जिससे अनेक विशेषज्ञ सम्बद्ध है। प्रधानमंत्री कार्यालय जो केन्द्रीय सचिवालय संगठनों में सबसे छोटा है मंत्रिमण्डल सचिवालय से भी बड़ा हो गया है। वस्तुतः प्रधानमंत्री कार्यालय के सचिव की भूमिका मित्र, मार्गदर्शक और परामर्शदाता जैसी हो, तो वह अधिक उपयोगी होगा। लेकिन यदि प्रधानमंत्री कार्यालय समानांतर सरकार का प्रतिरूप ग्रहण करने का प्रयास करता है तो उसके प्रशासनिक दृष्टि से लाभकारी परिणाम नहीं होंगे।

8.7 शब्दावली

सचिवालय:- सरकार को नीति निर्माण में सहयोग करने वाला निकाय है। नीति निर्माण के उपरान्त, उसके क्रियान्वयन के संबंध में प्रमुख कार्यपालिका निकाय है।

प्रधानमंत्री कार्यालय:- प्रधानमंत्री को उनके कार्यों के सम्पादन में (कार्यपालिका प्रमुख के रूप में) सहयोग करने वाला निकाय है।

मंत्रिमंडलीय सचिवालय:- भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों, विभागों, समितियों के बीच समन्वय स्थापित करने वाला निकाय है।

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य

8.9 संदर्भ ग्रंथ सूची -

भारतीय शासन एवं राजनीति	-	डॉ रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति	-	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति	-	महेन्द्रप्रतापसिंह

8.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	ब्रज किशोर शर्मा
----------------	---	------------------

भारतीय लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

- 1- केन्द्रीय सचिवालय के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिए।
- 2- मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिए।
- 3- प्रधानमन्त्री कार्यालय के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिए।

इकाई 9 - राजनीति और प्रशासन में सम्बन्ध

इकाई की संरचना

- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 उद्देश्य
- 9.3 राजनीति का अर्थ एवं महत्व
- 9.4 राजनीति की चिरसम्मतधारणा
- 9.5 राजनीतिक स्थिति की विशेषताएँ
- 9.6 प्रशासन
- 9.7 राजनीति एवं प्रशासन में सम्बन्ध
- 9.8 सारांश
- 9.9 शब्दावली
- 9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 9.11 संदर्भ ग्रन्थ
- 9.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

राजनीतिक चिंतक आज के युग में राजनीति को मनुष्य की एक विशेष गतिविधि मानता है। मनुष्यों की यह गतिविधि समाज के विभिन्न समूहों के माध्यम से व्यक्त होती है। इसके क्षेत्र में वही सत्ता आती है जिसका प्रयोग या तो शासन स्वयं करता है अथवा जिसका प्रयोग शासन को प्रभावित करने के लिए होता है।

वर्तमान में शासन को प्रभावित करने के लिए जन लोकपाल एवं भ्रष्टाचार पर राजनीति विशेष रूप से हो रही है। प्रशासन का अर्थ कार्यों को प्रबन्ध करने से है। यद्यपि राजनीति एवं प्रशासन के सम्बन्ध को इस अध्याय में विस्तृत चर्चा की गई है।

प्रशासन एवं राजनीति एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों में ही सत्ता एवं शक्ति का प्रयोग होता है। पूर्व में दोनों में काफी अन्तर एवं भेद की चर्चा होती थी परन्तु वर्तमान में यह भेद लगभग समाप्त हो चुका है और दोनों ही एक दूसरे के अंगीकार बन गये हैं।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत हम

1. राजनीति का अर्थ एवं महत्व को जान सकेंगे।
2. राजनीति की चिरसम्मतधारणा को जान सकेंगे।
3. राजनीतिक स्थिति की विशेषताओं के सम्बन्ध में जान सकेंगे।
4. राजनीति एवं प्रशासन में सम्बन्ध में जान सकेंगे।

9.3 राजनीति का अर्थ एवं महत्व

राजनीति शब्द का व्यवहार सामाजिक समूह के लिए किया जाता है जो क्लबों और परिवार जैसे छोटे मानव समूहों से लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ तक व्याप्त है। मानव समाज में यूनानी दार्शनिक प्लेटो से लेकर अब तक के जितने चिंतक आदर्श लोक की कल्पना करते रहे हैं वे सभी अंत में समाज के राजनीतिक पुनर्गठन की बात किसी न किसी रूप में करते हैं। सामाजिक सहयोग, संघर्ष और प्रतिस्पर्धा नामक गतिविधियों को राजनीति कहते हैं।

अरस्तू ने कहा है कि मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है। इसका अर्थ है कि मनुष्य किसी न किसी राज्य ;पोलिस के अन्तर्गत रहता है, अर्थात् एक सामूहिक सत्ता के माध्यम से अपने जीवन को व्यवस्थित करता है ताकि एक नैतिक प्राणी के नाते वह सदजीवन और आत्म सिद्धि प्राप्त कर सके। अतः अरस्तू की दृष्टि में राजनीति मनुष्य के सम्पूर्ण अस्तित्व को समेट लेती है। मनुष्यों की गतिविधियों समाज के विभिन्न समूहों के माध्यम से व्यक्त होती है, जैसे राजनीतिक दलों के द्वारा। राष्ट्रों में यह गतिविधि शांति के समय राजनय के रूप में व्यक्त होती है और अशांति के समय युद्ध के रूप में। परन्तु युद्ध राजनीति का उपयुक्त तरीका नहीं है। युद्ध का सहारा तब लिया जाता है जब राजनीति विफल हो जाती है। युद्ध के नियमों का पालन राजनीति का विषय अवश्य है। निष्कर्ष में राजनीतिक गतिविधि शक्ति के संघर्ष के रूप में व्यक्त होती है, यह संघर्ष अनेक राष्ट्रों के बीच हो सकता है, एवं एक ही राष्ट्र के भीतर विभिन्न समूहों के बीच भी चल सकता है। दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा की स्थिति में, समाज के दुर्लभ संसाधनों पर अपना प्रभुत्व और नियंत्रण स्थापित करने के प्रयास को राजनीति की संज्ञा दी जाती है। राजनीति के क्षेत्र में सत्ता वह कहलाती है जिसका प्रयोग या तो शासन स्वयं करता है, या जिसका प्रयोग शासन को प्रभावित करने के लिए होता है अरस्तू द्वारा रचित प्रसिद्ध कृति पालिटिक्स में इस तर्क का खंडन भी किया है कि सत्ता का स्वरूप एक ही होता है परन्तु सभी तरह की सत्ता एक जैसी नहीं होती है। मैक्स वेबर जो जर्मन समाज वैज्ञानिक थे उन्होंने भी सत्ता को वैधानिक एवं तार्किक बताया है। अरस्तू ने सत्ता, शक्ति को राजनीतिक सम्बन्ध का आवश्यक लक्षण माना है, वहीं मैक्स वेबर ने भी सत्ता के प्रयोग क्षेत्र की ओर संकेत किया है।

राजनीति शब्द दैनिक जीवन में बहुत प्रचलित है। राजनीतिक गतिविधियों को लेकर समाज मानता है कि इसका सरोकार केवल सार्वजनिक क्षेत्र से है। अर्थात् संसदों विधायकों, चुनावों और मंत्रिमंडलों से है। आम आदमी राजनीति को संकुचित दायरे में रखकर सोचता है। वह तो इसे या तो केवल मंत्रियों और विधायकों की गतिविधि समझ लेता है अथवा राजनितिज्ञों का चातुर्यपन और चुनाव के पैतरो के साथ जोड़ता है। परन्तु यदि हम राजनीति से घृणा करते हुए उससे दूर भागेंगे तो यह डर है कि राजनीति सचमुच गलत लोगों के हाथों में चली जायेगी और सार्वजनिक समस्याओं का समाधान नहीं हो सकेगा। वर्तमान में राजनीति ऐसे ही लोगों के द्वारा की जा रही है।

9.4 राजनीति की चिरसम्मत धारणा

प्लेटों, अरस्तू एवं उनके समकालिक विचारकों का मत है कि राज्य मनुष्य के जीवन के लिए अस्तित्व में आता है और सदजीवन के लिए बना रहता है। राज्य के बगैर किसी मनुष्य को मनुष्य

रूप में नहीं पहचाना जा सकता। राज्य में सद्जीवन की प्राप्ति के लिए मनुष्य जो कुछ भी करता है, जिन जिन गतिविधियों में भाग लेता है एवं जो नियम संस्थाएं और संगठन को निर्मित करता है, उन सबको अरस्तू ने राजनीति का विषय माना है। इसे ही राजनीति को चिरसम्मतधारणा कहते हैं। मनुष्य के समस्त सामाजिक सम्बन्धों और सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं का अध्ययन राजनीति के अन्तर्गत होता था। अरस्तू ने राजनीति को सर्वोच्च विज्ञान का रूतवा दिया। मानव समाज के अन्तर्गत विभिन्न सम्बन्धों को व्यवस्थित करने में राजनीति निर्णायक भूमिका निभाता है। परन्तु आज के युग में राजनीति जनसाधारण के समर्थन पर आश्रित हो गई है, इसलिए यह जन साधारण के जीवन के साथ निकट से जुड़ गई है।

राजनीति की आधुनिक धारणा

राजनीति की चिरसम्मत धारणा के विपरीत, आज के युग में राजनीति का प्रयोग क्षेत्र तो सीमित हो गया है, परन्तु इसमें भाग लेने वालों की संख्या बहुत बढ़ गई है। राजनीति के अध्ययन में मनुष्य के सामाजिक जीवन की समस्त गतिविधियों पर विचार नहीं किया जाता, बल्कि केवल उन गतिविधियों पर विचार किया जाता है जो सार्वजनिक नीति और सार्वजनिक निर्णयों को प्रभावित करती हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सर्वाजनिक नीतियाँ और निर्णय इन गिने शासकों, विधायकों या सत्ता धारियों की इच्छा को व्यक्त नहीं करते बल्कि समाज के भिन्न भिन्न समूहों की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप उभरकर सामने आते हैं। इस तरह राजनीति जन साधारण की उन गतिविधियों का संकेत देती है जिनके द्वारा भिन्न-भिन्न समूह अपने-अपने परस्पर विरोधी हितों में तालमेल स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं।

परम्परागत राजनीति शास्त्र का मुख्य सरोकार 'राज्य' से था, इसीलिए इसको राज्य के विज्ञान से भी परिभाषित करते हैं। उस काल के राजनीति शास्त्र के विद्वानों एवं लेखकों के लेख में भी इन्हीं बातों का अभिलेख मिलता है। इन लेखों में लेखकों ने अपना ध्यान निम्नलिखित समस्याओं पर ही केन्द्रित किया, जैसे राज्य के लक्षण, मूलतत्त्व एवं संस्थाएं, सर्वगुण सम्पन्न राज्य परन्तु आधुनिक काल में उपरोक्त विचारों के अतिरिक्त और भी पक्षों का समावेश किया है। उदाहरणार्थ 'राजनीति' मनुष्य की व्यापक क्रिया है, यह केवल राज्य की परिधि में हो नहीं निहित है वरन् सम्पूर्ण सामाजिक संगठन के साथ जुड़ी रहती हैं। इसीलिए राजनीति को आज के संदर्भ में एक सामाजिक प्रक्रिया माना जाता है।

9.5 राजनीतिक स्थिति की विशेषताएँ

उपरोक्त कथन से स्पष्ट हो गया कि राजनीति एक विशेष मानवीय क्रिया है। इन क्रियाओं के कार्यान्वयन में मनुष्य का ही योगदान है तथा क्रियान्वित कार्य राजनीतिक स्थिति कहलाती है। इसके समर्थन में भिन्न विद्वानों ने अपने मत भी प्रकट किये हैं। जैसे एलेन बाल द्वारा रचित पुस्तक 'मार्डन पालिटिक्स एण्ड गवर्नमेंट' के अन्तर्गत लिखा है: राजनीतिक क्रिया में मतभेद और उन मतभेदों का समाधान निहित होता है। जे. डी. बी. मिलर ने अपनी पुस्तक 'द नेचर और पालिटिक्स' में लिखा है कि राजनीतिक स्थिति में संघर्ष के समाधान के लिए शासन या सरकार का प्रयोग किया जाता है।

इसका तात्पर्य है कि राजनीतिक गतिविधि मतभेद की स्थिति से पैदा होती है और इसका सरोकार परिवर्तन की दिशा में या परिवर्तन की रोकथान के लिए संघर्ष के समाधान में प्रयोग से है। इस तरह राजनीतिक प्रक्रिया में दो बातों का होना आवश्यक है, पक्षों में मतभेद या संघर्ष की मौजूदगी एवं सरकार की सत्ता माध्यम से उस संघर्ष के समाधान का प्रयास।

राजनीति का संबंध समाज में 'मूल्यों' के आधिकारिक आवंटन से है। इस परिभाषा में तीन महत्वपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया गया है ये शब्द हैं मूल्य, आधिकारिक एवं आवंटन। मूल्य का अभिप्राय समाज में मिलने वाली वे वस्तुएं जो दुर्लभ हैं जैसे रोजगार, स्वास्थ्य सेवा, परिवहन सेवा, शिक्षा, मनोरंजन, मान प्रतिष्ठा इत्यादि से है। इसको ऐसे भी समझा जा सकता है कि वे अभीष्ट वस्तुएं, लाभ अथवा सेवायें जिन्हें हर कोई पाना चाहता है, परन्तु वे इतनी कम हैं कि उन्हें सभी नहीं पा सकते हैं। 'आवंटन' शब्द का अर्थ विभिन्न व्यक्तियों या समूहों में इन वस्तुओं का वितरण या बंटवारे से है। इस बंटवारे के लिए निर्णयन प्रक्रिया को अपनाया पड़ता है। निर्णय तो नीति के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। निर्णय का अर्थ है, अनेक में से एक का चयन। नीति में निर्णय तक पहुँचना और उसे कार्यान्वित करना भी शामिल है।

उपरोक्त दो शब्दों की व्याख्या के बाद 'आधिकारिक' शब्द की विवेचना करना भी आवश्यक है। नीति जिन लोगों के लिए बनाई जाती है, और वही जोग जब नीति का पालन करना आवश्यक समझते हैं तब वह नीति आधिकारिक होती है। इस प्रकार से सम्पूर्ण प्रक्रिया में सरकार का ही योगदान है। शासन सत्ता पक्ष के द्वारा ही किया जाता है, सत्ता वैधानिक होती है एवं सत्ता में शक्ति भी निहित होती है। किसी विशेष निर्णय या कार्यवाही को लागू करने के लिए लोगों से सत्ता सहर्ष आज्ञापालन सुनिश्चित कराने की क्षमता रखता है। जब हम राजनीति की परिभाषा मूल्यों के आधिकारिक आवंटन के रूप में देखते हैं तब हम उसे सार्वजनिक सामाजिक घटना के रूप में पहचानते हैं, अथवा राजनीति एक विश्वव्यापी गतिविधि है। समाज में अभीष्ट वस्तुएं, लाभ और सेवाएं, इत्यादि थोड़ी होती है और उनकी मांग करने वाले लोग ज्यादा होते हैं। अतः वहाँ ऐसी आधिकारिक सत्ता की आवश्यकता पड़ती है जो परस्पर विरोधी मांगों को सामने रखकर कोई एक रास्ता निकाल सके और जिसे सब लोक स्वीकार कर लें। इसका अर्थ यह नहीं है कि सबके मांगे पूरी कर दी जाती है या कोई समाधान हमेशा के लिए स्वीकार कर लिया जाता है। वास्तव में एक समाधान स्वीकार करने के पश्चात नई मांगे नये-नये रूपों में प्रस्तुत की जाती है, और फिर नए समाधान की तलाश की जाती है। अतः राजनीति एक निरंतर प्रक्रिया है। राजनीति के इस दृष्टिकोण को हम साधारणतयः उदारवादी दृष्टिकोण के रूप में पहचानते या पुकारते हैं। राजनीति का यह आधुनिक दृष्टिकोण है।

राजनीति के प्राचीन दृष्टिकोण के अन्तर्गत सामाजिक जीवन का लक्ष्य या ध्येय पूर्व में ही निर्धारित रहता था और समाज के सदस्यों को पूर्व निर्धारित व्यवस्था के ही अन्तर्गत अपने कर्तव्यों का पालन करना पड़ता था। परन्तु आधुनिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत संघर्ष को सामाजिक जीवन का स्वाभाविक

लक्षण माना जाता है। इसे बल पूर्वक दबाने की चेष्टा नहीं की जाती है वरन इसका समाधान ढूँढने पर बल दिया जाता है।

किसी भी मतदभेद या संघर्ष के समाधान के लिए आधिकारिक सत्ता का प्रयोग आवश्यक होता है। इस सत्ता के प्रयोग के कारण ही आधिकारिक नीतियाँ, नियम एवं निर्णय समाज में स्वीकार किये जाते हैं और प्रभावशाली ढंग से लागू भी किये जाते हैं। सत्ता के दो मुख्य घटक होते हैं, शक्ति और वैधता। पहले भी इन दोनों शब्दों का प्रयोग किया जा चुका है परन्तु अब विस्तार से इनकी व्याख्या यहां पर की जा रही है। वैधता से तात्पर्य है कि सरकार द्वारा लिए गये निर्णय और उनके अनुरूप बनाये गये नियम सारे समाज में लिए उपयुक्त और कल्याणकारी है इसलिए समाज के सभी वर्ग उसे मन से स्वीकार करते हुए और उन नियमों का अनुपालन सुनिश्चित करने की तत्पर रहते हैं। शक्ति का अर्थ है समाज की इच्छा के विरुद्ध किसी नियम या निर्णय को बल पूर्वक आदेशानुसार पालन करवाना। समाज में व्यवस्था स्थापित रखने के लिए वैधता और शक्ति एक दूसरे के पूरक हैं। चूंकि राजनीति में सत्ता का प्रयोग आवश्यक है, और शक्ति के बिना सत्ता अधूरी है इसलिए राजनीति में शक्ति का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजनीति में शक्ति के तीन प्रकार हैं राजनीतिक शक्ति, आर्थिक शक्ति और विचारात्मक शक्ति। राजनीतिक शक्ति का अर्थ है नीतियाँ एवं कानून का निर्माण करना, कानून को लागू करना, कर लगाना, और वसूल करना, कानून का पालन न करने वालों को दण्डित करना तथा शत्रुओं एवं आक्रमण कारियों को नष्ट करने से है। साधारणतः राजनीतिक शक्ति का उपयोग सरकार के तीन विभिन्न अंगों द्वारा किया जाता है, विधान मण्डल, कार्यपालिका एवं न्याय पालिका इन्हें शक्ति के औपचारिक अंग कहते हैं। परन्तु इनके अलावा कुछ अनौपचारिक अंग भी है जैसे विभिन्न दबाव समूह, राजनीतिक दल आदि। ये अपने ढंग से राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करते हैं।

आर्थिक शक्ति का अर्थ है, धन सम्पदा, उत्पादन के साधनों या अन्य दुर्लभ साधनों के स्वामित्व के बल पर निर्धन लोगों या निर्धन राष्ट्रों के जीवन की परिस्थितियों पर नियन्त्रण स्थापित करने से है। आर्थिक शक्ति राजनीति पर व्यापक प्रभाव डालती है। उदार लोकतंत्र के अन्तर्गत बड़े-बड़े जमींदार, उद्योगपति और व्यापारिक घराने सार्वजनिक नीतियों और निर्णयों को व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं और विकास की प्राथमिकताएं निर्धारित करने में अपने हित को सर्वोपरि रखते हैं। बड़े बड़े पूंजीपति अक्सर अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक दलों और चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को भारी वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं। ऐसी सहायता पाने वाले राजनीतिज्ञ ऊपरी तौर पर जनसाधारण के हितों की दुहाई देते हैं परन्तु भीतर से वे अपने वित्तदाताओं के हितों के लिए प्रतिबद्ध होते हैं।

विचारात्मक शक्ति राजनीतिक शक्ति का एक गूढ़ आधार प्रस्तुत करती है। विचारात्मक शक्ति शासन की व्यवस्था को समाज की दृष्टि में उचित ठहराती है और इसीलिए उसे बैद्यता प्रदान करती है। समाज में शासक वर्ग सर्वोत्तम शासन प्रणाली के बारे में विचारों को बढ़ावा देते हैं जिन्हें राजनीतिक विचारधारा कहते हैं। आज के युग में भिन्न भिन्न देशों में विभिन्न प्रकार की सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक व्यवस्थाएं प्रचलित हैं और उन्हें उचित ढहराने के लिए पूंजीवाद, समाजवाद,

साम्यवाद, लोकतंत्रीय समाजवाद आदि सर्वोत्तम शासन प्रणाली सिद्ध करने को तत्पर रहती हैं ये सारे वाद विभिन्न विचारधाराओं के ही उदाहरण है।

9.6 प्रशासन

अंग्रेजी शब्द एडमिनिस्ट्रेसन की रचना लैटिन के दो शब्दों से मिलकर हुई है। वे शब्द है एड एवं मिनिस्टर, जिसका अर्थ है प्रबन्ध करना। अंग्रेजी शब्दकोष के अनुसार प्रशासन शब्द का अर्थ है कार्यों का प्रबन्ध। शासन करने से तात्पर्य है प्रबन्ध करना, निर्देशन करना इत्यादि। प्रशासन शब्द को विभिन्न विद्वानों ने निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया है।

पाल. एच. एपिलबी - यदि प्रशासन न हो तो सरकार तो केवल वाद विवाद का क्लब मात्र बन कर रह जायेगी बर्शते इस स्थिति में वह जीवित रह सके।

ई. एन. ग्लेडन के अनुसार प्रशासन का अर्थ है प्लोगों की परवाह करना या देखभाल करना, कार्यों का प्रबन्ध करना, किसी जाने बूझे कार्य की पूर्ति के लिए उठाया जाने वाला सुनिश्चित पग।

नीग्रो -किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए मनुष्य तथा सामग्रियों का जो संगठन तथा उपयोग किया जाता है उसे प्रशासन कहा जाता है।

एल. डी. व्हाइट ने प्रशासन को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया है किसी उद्देश्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति के लिए बहुत से व्यक्तियों के निर्देशन, समन्वय तथा नियंत्रण को ही प्रशासन की कला कहते हैं। फिफनर ने प्रशासन की परिभाषा इस प्रकार की है वांछित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मानवीय तथा भौतिक साधनों का संगठन तथा निर्देशन ही प्रशासन है।

हरबर्ट साइमन के शब्दों में प्रशासन सबसे अधिक व्यापक अर्थ में, समान लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वर्गों द्वारा मिलकर की जाने वाली क्रियाओं को प्रशासन कहा जा सकता है।

लूथर गूलिक के अनुसार प्रशासन का सम्बन्ध कार्यों के करवाने से, निश्चित उद्देश्य की पूर्ति कराने से है।

उपरोक्त परिभाषाओं से विदित है कि प्रशासन सर्वमान्य लक्ष्यों की पूर्ति के लिए सहयोग करने वाले वर्गों की क्रियाओं से तात्पर्य है। दूसरे शब्दों में प्रशासन में वे सभी क्रियाएं आती है जो किसी उद्देश्य या ध्येय की प्राप्ति के लिए की जाती है। प्रशासन शब्द का प्रयोग संकीर्ण अर्थ में भी किया जाता है जिसका अभिप्राय व्यवहार के उन सभी प्रतिरूपों से है जो विभिन्न प्रकार सहयोगी समूहों में एक जैसे होते हैं और जो उन निश्चित उद्देश्यों पर आधारित नहीं होते जिनके लिए वे परस्पर सहयोग करते हैं और न ही वे उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयोग की जा रही निश्चित पद्धतियों पर आधारित होते हैं।

9.7 राजनीति एवं प्रशासन में सम्बन्ध

प्रशासन को राजनीति से भिन्न रखने में आरम्भिक दौर के चिंतकों ने काफी भेद किया। उनकी दृष्टि में राजनीति नीतियों का निर्माण करती है, और प्रशासन का कार्य है कि वह यथासंभव कुशलता एवं मितव्ययिता से उन नीतियों को लागू करे। अतः क्रियाओं की दृष्टि से राजनीति और प्रशासन के क्षेत्र पृथक एवं भिन्न हैं। लोक प्रशासन के पितामह 'बुडरो विल्सन' ने अपने लेख 'स्टडी आफ एडमिनिस्ट्रेसन' में लिखा है कि प्रशासन का उचित क्षेत्र राजनीति से बाहर है। प्रशासनिक प्रश्न

राजनीतिक प्रश्न नहीं होते। यद्यपि प्रशासन के ध्येय राजनीति निश्चित करती है, किन्तु यह अनुमति नहीं दी जानी चाहिए कि वह प्रशासन के कार्यों में हस्तक्षेप करें। बल्लंश्री को समर्थन देते हुए उन्होंने बल्लंश्री के शब्दों को दोहराया, राजनीतिमहान और सर्वव्यापी विषयों में राज्य की क्रिया है। अतः राजनीत राजमर्मज्ञ का विशेष क्षेत्र है और प्रशासन तकनीकी अधिकारी का विशेष क्षेत्र है। कालान्तर में राजनीति एवं प्रशासन के भेद की काफी आलोचना हुई। प्रशासन के अराजनीतिक दृष्टिकोण पर इतना बल दिया गया कि इसने प्रशासन को अपरिवर्तनीय परिभाषा बना दिया जो अपने स्वतंत्र सिद्धान्तों का अनुसरण करता है, चाहे सरकार का स्वरूप कुछ भी क्यों न हो, और जिन राजनीतिक मूल्यों के अधीन इसे काम करना है वे कैसे ही क्यों न हों। यह दृष्टिकोण पूर्णतया गलत है, क्यों कि किसी देश की राजनीतिक व्यवस्था उसकी प्रशासन व्यवस्था से न तो बाहर है और न असम्बन्धित, अपितु यही तो इसका ताना बाना है। राजनीति और प्रशासन के बीच सम्बन्धों का विकास कालान्तर में हुआ। जान लाक तथा मांटेस्क्यू के समय से लेकर आजतक विद्वान, प्रशासक राजनीतिज्ञ इस विषय पर वाद विवाद करते रहे हैं। अपने गणतंत्र के प्रारम्भिक समय से ही अमेरिका के राजनेता नीति-निर्माण तथा प्रशासनिक विषयों में भेद करते आये हैं। इससे राजनीति और प्रशासन में द्विभाजन का विकास हुआ। यद्यपि इस धारणा का द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात अन्तिम तौर पर परित्याग कर दिया गया।

प्रशासन व राजनीति में भेद को लेकर काफी आलोचना हुई और लोक प्रशासन के विद्वानों ने इस भेद को अस्वीकृत कर दिया एवं एक सिरे से नकार दिया। तथ्य इस बात को सिद्ध करते हैं कि प्रशासन का नीति निर्माण या निर्धारण के कार्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है और वह इसमें सक्रिय भाग लेता है। यह एक पूर्णतया अतार्किक तर्क है कि नीति निर्धारण कार्य प्रशासनिक अधिकारी वर्ग की सहायता या परामर्श के बिना भी सम्पन्न किया जा सकता है। मन्त्री गण अधिकांश विधेयक अपने उच्च प्रशासनिक अधिकारी के प्रेरणा पर ही पारित करते हैं। हस्तांतरित विधान की सम्पूर्ण धारणा राजनीति व प्रशासन के विभाजन को अर्थहीन एवं तथ्यहीन सिद्ध करती है। तथ्यों व आंकड़ों के अभाव में किसी भी सफल नीति का निर्धारण असम्भव है। ये तथ्य तथा आंकड़े प्रशासनिक अधिकारी ही प्रदत्त करते हैं। कानूनों व नीतियों की व्यावहारिकता तथा अव्यावहारिकता प्रशासनिक अधिकारियों के परामर्श के आधार पर ही तय की जाती है। कहने का तात्पर्य है कि पग-पग पर राजनीति एवम प्रशासन परस्पर मिश्रित प्रतीत होते हैं, हर पल प्रशासन राजनीति को प्रभावित करता है। एपिलबी का कहना था कि नीति का निर्माण ही लोक प्रशासन है। उपरोक्त विचारों से यह सिद्ध हो गया कि राजनीति एवं प्रशासन अविभाज्य है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित तथ्य उसके साक्षी है।

राजनीतिक नेता को जटिल और तकनीकी विषयों पर नीति सम्बन्धी निर्णय करने के लिए ज्ञानपूर्ण परामर्श हेतु सर्वथा स्थायी कर्मचारियों पर आश्रित होना पड़ता है।

पेचीदा स्थितियों में नीति निर्माण तथा नीति परिपालन एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। प्रायः नीतियों की विभिन्न प्रकार से व्याख्या हो सकती है। ऐसी स्थिति में जो

प्रशासक एक नीति का परिपालन करने के लिए उत्तरदायी होते हैं, उस नीति की व्याख्या करते हुए स्वेच्छा-निर्णय का प्रयोग भी करते हैं।

अभ्यास प्रश्न

१. राज्य के चार तत्व होते हैं |सत्य/असत्य
२. राजनीति का सम्बन्ध नीति निर्माण से होता है | सत्य/असत्य
३. प्रशासन का सम्बन्ध नीतियों के क्रियान्वयन से होता है | सत्य/असत्य

9.8 सारांश

उपरोक्त लेख अध्ययन करने के बाद राजनीति एवं प्रशासन शब्द से भली भौति परिचित हो चुके होंगे। कानूनों व नीतियों की व्यावहारिकता तथा अव्यावहारिकता, प्रशासनिक अधिकारियों के परामर्श के आधार पर ही तय की जाती है। कहने का तात्पर्य है कि राजनीति एवं प्रशासन मिश्रित प्रतीत होते हैं।

इससे स्पष्ट है की नीति निर्माण और नीति क्रियान्वयन एक दूसरे से पूरी तरह से पृथक नहीं किये जा सकते हैं | क्योंकि मंत्री विभागाध्यक्ष होते हैं जो अपनी अनुभवहीनता और और विशेषज्ञता के अभाव में काफी हद तक प्रशासनिक अधिकारियों के परामर्श पर निर्भर करते हैं |

9.9 शब्दावली

राज्य –एक निश्चित भूभाग में रहने वाली जनसंख्या,जिसकी अपनी सरकार हो, जो अपने आंतरिक और वाह्य मामलों में पूरी तरह से स्वतन्त्र हो(संप्रभुता) |

आवंटन - व्यक्तियों या समूहों में वस्तुओं का विवरण

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१. सत्य २. सत्य ३. सत्य

9.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. गावा, ओ. पी. - राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा
2. जैन पुखराज - राजनीति विज्ञान

9.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- १ .शर्मा एवं सडाना- लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार
- २ .एन. सी. ई. आर. टी.

9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजनीति को परिभाषित करते हुए विभिन्न धारणाओं की व्याख्या कीजिए।
2. राजनीतिक स्थिति की विशेषताओं पर एक निबन्ध लिखिए।
3. राजनीति एवं प्रशासन से आप क्या समझते हैं, दोनों के मध्य सम्बन्धों पर अपनी समीक्षा कीजिए

इकाई-10 उत्तराखण्ड का इतिहास-प्रशासनिक संदर्भ में

इकाई की संरचना

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 उत्तराखण्ड का प्राचीन राजनीतिक इतिहास

10.2.1 कुणिन्द राजवंश

10.2.2 पौरव वंश

10.2.3. कत्यूरी प्रशासन

10.2.4 चंद वंश

10.2.5 रैका वंश

10.2.6 पंवार वंश

10.2.7 गोरखा शासन

10.3 अंग्रेजी शासन

10.4 उत्तराखण्ड ब्रिटिश राजतंत्र का उदय

10.5 सारांश

10.6 शब्दावली

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

10.10 निबंधात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

उत्तराखण्ड आन्दोलन ही दुनियाँ का ऐसा पहला आन्दोलन है जिसने गाँधीवादी सिद्धान्तों को सही मायने में आत्मसात किया है। पुलिस एवं प्रशासन की तरफ से इतनी हिंसा हुई पर प्रतिहिंसा की एक भी घटना आज तक देखने को नहीं मिली। गरीबी, विषमता, अभाव एवं शोषण की बुनियाद पर टिका यह एक अहिंसक आन्दोलन रहा। अभूतपूर्व धैर्य, आत्मसंयम और अनुशासन जिसकी खासियत रही। उत्तराखण्ड में विकास व प्रशासन का जो ढाँचा आज खड़ा है उसकी बुनियाद ब्रिटिश काल (1815-1947) में पड़ी थी। ब्रिटिश प्रशासकों ने विकास का जो ढाँचा उत्तराखण्ड में खड़ा किया था, उसमें यहाँ की जन और जमीनी सम्पदा से अधिक से अधिक राजस्व कमाने के साथ-साथ उत्तराखण्ड से लगी तिब्बत, नेपाल की सीमाओं को ध्यान में अधिक रखा गया था। कम्पनी राज के प्रथम कुमाऊँ कमिश्नर गार्डनर का कार्यकाल 1815 से प्रारंभ होता है। गार्डनर कुमाऊँ मात्र छः वर्ष तक रहा। इन वर्षों में उसने राजस्व, सामान्य प्रशासन, फौज, मजदूरी व्यवस्था और खाद्यान्न जैसे कार्यक्रमों की शुरुआत की। गार्डनर के बाद 20 वर्षों तक जार्ज विलियम ट्रेल ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। ट्रेल के कार्यकाल में वन प्रबन्ध, डाक व्यवस्था, ट्रेजरी व्यवस्था, जेल, चिकित्सालय, सड़को, पुलों की व्यवस्था, पुलिस व्यवस्था, कुलियों के उत्थान, भूमि बन्दोबस्त आदि प्रारम्भ हुए।

इन कार्यों के अतिरिक्त प्राथमिक शिक्षा का वर्तमान स्वरूप तथा शराब की बिक्री व्यवस्था कम्पनी शासन काल से प्रारंभ हो गयी थी। कम्पनी की भूमि बन्दोबस्त, शराब व्यापार, और वन व्यवस्था को लेकर लोग संतुष्ट नहीं थे। आजादी के संग्राम में यहाँ के लोगों का बढ़-चढ़ कर भाग लेने के पीछे मुख्य कारण भूमि बन्दोबस्त और वन प्रबन्ध को लेकर उपजा असंतोष प्रमुख थे। सन 1815 में विकास का जो क्रम उत्तराखण्ड में प्रारम्भ हुआ था, आजादी के बाद उसी विकास व्यवस्था को आगे बढ़ाया गया। स्वतंत्रता आन्दोलन के बाद उत्तराखण्ड की धरती पर जो सबसे बड़ा आन्दोलन हुआ वो था उत्तराखण्ड राज्य की माँग। इस आन्दोलन ने जो गति पकड़ी वो राज्य बनने के बाद ही थी। इस अध्याय में आगे हम राज्य के उन सभी पहलुओं पर चर्चा करेंगे जो राज्य के गठन के प्रमुख कारक रहे।

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से हम समझेंगे कि-

१. उत्तराखण्ड राज्य का प्राचीन राजनीतिक इतिहास क्या रहा।
२. राज्य गठन से पूर्व प्रशासनिक संरचना क्या थी।

३. ब्रिटिश काल में उत्तराखण्ड की प्रशासनिक व्यवस्था कैसी थी।

४. उत्तराखण्ड राज्य आन्दोलन के क्या कारण थे।

५. उत्तराखण्ड के प्रशासनिक संरचना का अध्ययन।

10.2 उत्तराखण्ड का प्राचीन राजनीतिक इतिहास

अलबरूनी जैसे साहित्यकारों का यह आशयपूर्ण कथन है कि भारतीय इतिहास लेखन की कला से अनभिज्ञ हैं। इस अर्थ में यह उचित प्रतीत होता है कि भारतीय इतिहासकारों ने अपनी कृतियों में तत्कालीन घटनाक्रम का वर्णन तो किया है लेकिन तिथिक्रम के सम्बन्ध में भारतीय इतिहासकार मौन साधे रहे हैं। उत्तराखण्ड में कत्यूरी शासकों से पूर्व भी कई शासकों का वर्णन इतिहास में मिलता है। उत्तराखण्ड के शासकों का हम क्रमबद्ध अध्ययन कर सकते हैं।

10.2.1 कुणिन्द राजवंश

कुणिन्द राजवंश उत्तराखण्ड में शासन करने वाले प्रारम्भिक राजवंशों में है। प्राचीन भारतीय साहित्य में कुणिन्दों का उल्लेख मिलता है। अष्टाध्यायी में पाणिनी के द्वारा भी कुणिन्द जनपद का उल्लेख किया जाना दर्शाता है कि चौथी, पाँचवी सदी ईसा पूर्व कुणिन्दों का अस्तित्व था। टाल्मी(87ई0 से 165 ई0) के विवरण में भी कुणिन्दों का उल्लेख दर्शाता है कि कुणिन्द दूसरी सदी में भी अस्तित्ववान थे। कुणिन्दों से पूर्व उत्तराखण्ड के पर्वतीय अंचल में कई अन्य जातियों का शासन स्थापित हो चुका था, जिनमें किरात, खश, तगण, परतगण, अम्बसृष्ट इत्यादि का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है। कुणिन्दों का उत्तराखण्ड की भूमि में अस्तित्व महाभारत काल के प्रारंभ(सम्भवतः 1000ई0पू0-900ई0पू0) से दूसरी तीसरी शताब्दी तक ज्ञात होता है। कुणिन्दों के शासन काल को कुणिन्द जनपद में तीन काल खण्डों में विभक्त किया जा सकता है।

प्रथम काल- महाभारत काल से 5वीं-6वीं ई0पू0 ।

दूसरा काल- 5-6 ई0पू0 से 2-3 सदी ई0पू0।

तीसरा काल- 2-3 ई0पू0 से 2-3 सदी ई0 तक।

प्रथम काल के सम्बन्ध में महाभारत से पर्याप्त सूचनाएं प्राप्त होती हैं। महाभारत में सुबाहु नामक जिस शक्तिशाली शासक का उल्लेख मिलता है वह कुणिन्द जाति से सम्बन्धित था। सुबाहु ने पांडवों के पक्ष में महाभारत युद्ध में भाग लिया था। इस काल के प्रारंभ में कुणिन्द जनपद एक स्वतंत्र जनपद था। बाद में उसने पांडवों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। द्वितीय काल समस्त उत्तर-भारत के लिये

एक संक्रमण काल था। इस काल में धार्मिक क्षेत्र में महान क्रान्तियाँ हुईं। परिणाम स्वरूप महावीर तथा बुद्ध जैसे धर्मज्ञों द्वारा जैन एवं बौद्ध धर्म जैसे विचार प्रधान धर्मों की स्थापना की गयी। कुणिन्द जनपद के तीसरे काल को कुणिन्दों के चर्मोत्कर्ष काल माना जा सकता है। मौर्य एवं शुंग शासन के हास के कारण भारतवर्ष में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति नष्टप्रायः हो गयी थी। विकेन्द्रीकरण का प्रारंभ हो गया था। सम्भवतः इसी विकेन्द्रीकरण का प्रभाव था कि कुणिन्द जनपद अपने उत्कर्ष की ओर बढ़ चला।

किसी भी राजवंश का काल जानने या किसी कालखण्ड का इतिहास जानने में मुद्राओं का अपना महत्वपूर्ण स्थान होता है। कुणिन्द मुद्राएं खरोष्ठी एवं ब्राह्मी लिपी में उत्कीर्ण हैं। इस काल की कुछ मुद्राएं अल्मोड़े जिले से प्राप्त हुयी हैं। जिन्हें कुणिन्द शासनकाल में अल्मोड़ा प्रकार की मुद्राओं के नाम से जाना जाता था। ये मुद्राएं ताम्र धातु से निर्मित की गयी हैं। इनका वजन 119 ग्रेन से 327 ग्रेन है। अल्मोड़ा प्रकार मुद्राएं म-ग-ह-त-स, शिवदत्त, शिवपालित हरदत्त इत्यादि कुणिन्द शासकों द्वारा उत्कीर्ण की गयी हैं। ये मुद्राएं ब्राह्मी लिपि से उत्कीर्ण हैं। इन मुद्राओं में वृत्त, कुबड़ा बैल, वेदी, छत्र, लम्बवत् रेखाएं, नंदीपाद, नाग, मानवमूर्ति इत्यादि का अंकन किया गया है। अन्य प्रकार की मुद्राएं भी प्राप्त हुयी हैं। जो कि देहरादून, बेहट तथा भैड़ागाँव से प्राप्त हुयी हैं। इन मुद्राओं में भानू एवं रावण का नाम उत्कीर्ण किया गया है। कई ऐसी मुद्राएं भी प्राप्त हुयी हैं जिस पर कोई नाम उत्कीर्ण नहीं है। ये मुद्राएं ताम्र धातु से निर्मित हैं तथा इनमें ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया गया है। अब तक कुणिन्द काल की अनेक मुद्राएं भिन्न-भिन्न स्थानों से प्राप्त हुयी हैं। इन मुद्राओं में शासकों के नाम तथा उनकी उपाधियों का भी अंकन मिलता है। कई मुद्राएं तो ऐसी हैं जिनमें शासकों का नाम अंकित न होकर कुणिन्द इत्यादि शब्दों का अंकन किया गया है। कुणिन्द मुद्राओं से ज्ञात होता है कि कुणिन्द सत्ता स्वतंत्र रही होगी। किसी अन्य राज्य के अधीन नहीं रही होगी। कुणिन्द मुद्राओं से कुणिन्दों का अपने समकालीन अन्य गणराज्यों यथा यौद्येय तथा औदुम्बर से मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार कुणिन्द मुद्राएं तत्कालीन राजनीतिक स्थिति, साम्राज्य विस्तार तथा कुणिन्द शासकों की नीति तथा स्थिति पर व्यापक रूपेण प्रकाश डालती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. कुणिन्द शासन में अल्मोड़ा प्रकार की मुद्राएं किस धातु से निर्मित की गयी थी?
2. अष्टाध्यायी की रचना किसने की?

10.2.2 पौरव वंश

अल्मोड़ा जनपद के तालेश्वर नामक स्थान से ताम्र एवं अष्टधातु के अभिलेख प्राप्त हुए हैं। ये अभिलेख पौरव वंश से सम्बन्धित हैं। ये अभिलेख 1915 ई० में प्राप्त हुए। पौरव वंश का उद्भव हर्ष के पश्चात तथा कत्यूरी एवं कन्नौज के यशोवर्मा से पूर्व हुआ था। हर्ष ने 600 ई० से 647 ई० तक शासन किया था। जबकि कन्नौज के शासक यशोवर्मा का शासनकाल डॉ० आर०एस० त्रिपाठी 725 ई० से 752 ई० मानते हैं। पौरव वंश की सत्ता 647 ई० के पश्चात से प्रारम्भ होकर 725 ई० के आसपास तक अस्तित्व में रही होगी। पौरव वंश के सम्बन्ध में जानकारी देने वाले ताम्रपत्रों के अनुसार इस वंश की राजधानी ब्रह्मपुर थी। पौरव वंश का राज्य गढ़वाल से सम्बन्धित था। कनिंघम के मतानुसार ब्रह्मपुर राज्य में अलकनंदा और करनाली नदियों का मध्यवर्ती सम्पूर्ण पर्वतीय प्रदेश वर्तमान गढ़वाल एवं कुमाऊँ सम्मिलित रहा होगा। इस प्रकार पौरव वंश की राजसत्ता सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में स्थापित थी। इसमें भाबर का क्षेत्र भी शामिल था।

शासन प्रबन्ध

पौरव वंशीय ताम्र अभिलेखों से इस वंश के शासन प्रबन्ध का अनुमान लगाया जा सकता है। विद्वानों ने माना है कि इस वंश के अनेक पदाधिकारियों की समानता गुप्त व हर्ष के पदाधिकारियों से की जा सकती है। पौरव वंश चूंकि हर्ष का परवर्ती था। अतः पौरवों ने हर्ष की शासन व्यवस्था को अपनाया। पौरव शासन का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था। इसकी उपाधी महाराजाधिराज परम भट्टारक की थी। पौरव अपने को गौ ब्राह्मण हितैषी कहलाना पसन्द करते थे। वे दानी प्रवृत्ति के थे। उनके अभिलेख उनके द्वारा दिये गये दानों का उल्लेख करते हैं। वे निरंकुश नहीं थे।

शासन की सहायता हेतु मंत्री परिषद होती थी। मंत्रीपरिषद का कार्य शासक को विभिन्न कार्यों के सम्बन्ध में परामर्श देना होता था। परिषद की नियुक्ति शासन को चुस्त, दुरूस्त करने हेतु की जाती थी। मंत्री परिषद में अमात्य, बलाध्यक्ष, सन्धि विग्रहक, राजदौवारिक, कोटाधिकरण, कुमारमात्य, सर्व विषय प्रधान देव द्रोणाधिकृत तथा कारगिक इत्यादि अधिकारी सम्मिलित थे। राजा जिस स्थान पर परिवार के साथ रहता था उसे कोट कहते थे। कोट का सुरक्षा प्रबन्ध कोटाधिकरण नामक अधिकारी के पास था। जिसका कार्य राज परिवार को सुरक्षा प्रदान करना था। राज देवारिक राजप्रासादा में आने-जाने वालों की देख-रेख करता था। कारगिक नामक अधिकारी राजाज्ञाओं को तथा शासन को की गयी प्रार्थनाओं को उनके गन्तव्य तक पहुँचाने का कार्य करता था। एक सुपकारपति नामक कर्मचारी होता था जो राजा के भोजनालय की व्यवस्था देखता था।

1. बालाध्यक्ष सैन्य प्रमुख था। सेना तीन भागों में विभक्त थी- गज, अश्व एवं पैदल जो सेनानायक के अधीन थे। इसके सेनानायक गजपति, अश्वपति जयनपति कहलाते थे। सन्धि विग्रहक युद्ध व संधि विभाग का प्रधान था। पौरव शासन प्रबन्ध में आन्तरिक शान्ति एवं सुरक्षा हेतु पुलिस विभाग की

व्यवस्था थी। पौरव शासकों की आय का मुख्य श्रोत भूमि कर था। भूमिकर को भाग कहते थे। इसको वसूलने वाला अधिकारी भागिक कहलाता था। भूमिकर उपज का छठा भाग लिया जाता था। चूकी हिमालय की घाटियों में बसा होने के कारण पौरव वंश खनिज, वन तथा औषधियों से भरा पड़ा था अतः इनसे भी आय होती थी। भोटान्तिक व्यापार अवश्य ही राज्य की आय के लिये वृद्धिकारक रहा होगा। अभिलेखों में दिविरपति तथा कायस्थ का उल्लेख भी मिलता है। इनका कार्य राज्य की आय तथा भूमि सम्बन्धी सूचनाओं का आंकड़ा रखना था। इस काल में केदार एवं सारी नामक भूमि के दो वर्ग थे। केदार भूमि सिंचाई वाली भूमि कहलाती थी तथा सारी ऐसी भूमि थी जिसकी सिंचाई नहीं की जाती थी। भूमि नाप के लिये द्रोणवापम, खारीवापम तथा कुल्यवापम आदि विधियों का प्रचलन था। सम्पूर्ण भूमि शासक की थी वह भूमि का दान व विक्रय कर सकता था। उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि पौरव काल में उच्च प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित थी, उनकी प्रशासनिक व्यवस्था पूर्व काल में स्थापित बड़े राजवंशों की प्रतिलिपि प्रतीत होती है। ऐसा स्वभावतः उचित भी था क्योंकि मानव प्रवृत्ति अपने से श्रेष्ठ की नकल की होती ही है।

अभ्यास प्रश्न-

3 - पौरव वंश में सेना कितने भागों में विभक्त थी?

4 - केदार भूमि से क्या क्या तात्पर्य है?

10.2.3. कत्यूरी वंश

उत्तराखण्ड में 750 ई० के आस-पास तक नंद, मौर्य, कुषाण, मौखरी, वर्धन व पौरव वंशों का प्रभुत्व रहा। 750 से 1223 ई० तक कत्यूरी राजाओं का एक छत्र राज्य रहा। महापंडित राहुल सांकृत्यायन इस वंश का शासन काल 850 से 1060 ई० तक मानते हैं। विक्रम की 11वीं सदी में उत्तराखण्ड पश्चिमी व पूर्वी दो प्रशासनिक इकाईयों में विभाजित हुआ। लेकिन दोनों पर ही कत्यूरी राजाओं का शासन बना रहा। उत्तराखण्ड भौगोलिक दृष्टि से एक स्वतंत्र इकाई होने के बाद भी उसके मध्य में स्थित नंदा देवी हिमालय, बधाण, चॉदपुर के पठार तथा रामगंगा-उपत्यका के घने वन उसे पश्चिमी व पूर्वी दो भागों में बाँटते हैं। उत्तर में इन भागों के बीच आवागमन की सुविधा पिंडर-उपत्यका तक उतरने पर ही प्राप्त होती है। दक्षिणी भाग में भाबर, घने वन व हिंसक पशुओं से भरे वन आवागमन में बाधक रहे। इस प्राकृतिक बाँधा के कारण जोशीमठ से पूरे उत्तराखण्ड का शासन करना कठिन हो रहा था। अतः प्रकृति के प्रकोप व प्रशासनिक कठिनाईयों से बचने तथा उत्तराखण्ड के पश्चिमी व पूर्वी भागों पर सुदृढ़ शासन रखने के लिये कत्यूरी नरेश नर सिंह देव ने चमोली जिले के जोशीमठ से बागेश्वर जनपद स्थित बैजनाथ में राजधानी स्थापित की थी। यह घटना सम्वत् 1057 विक्रमी(सन1000) की है। इससे उत्तराखण्ड के पूर्वी भाग कमादेश(कुमाऊँ) पर शासन करना सरल

हुआ। फलतः कत्यूरी नरेशों को 1191 तक इस प्रदेश पर अपनी सत्ता बनाये रखने में सफलता मिली। किन्तु उत्तराखण्ड के पश्चिमी भाग केदार भूमि गढ़देश पर उनका शासन शिथिल हो गया।

शासन प्रबन्ध

कत्यूरी वंश के सम्बन्ध में ज्ञान कराने वाले प्रमुख साधन इस काल के अभिलेख हैं। इन अभिलेखों से कत्यूरी काल के केन्द्रीय एवं प्रान्तीय प्रशासन के सम्बन्ध में अनेक सूचनाएं प्राप्त होती हैं। कत्यूरी शासन दो भागों में बटों था।

अ-केन्द्रीय प्रशासन

ब-प्रान्तीय प्रशासन

केन्द्रीय प्रशासन- केन्द्रीय प्रशासन का प्रधान शासक होता था। कत्यूरी वंश के अधिकांश शासक परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर की उपाधी धारण करते थे। उनकी अन्य उपाधियाँ परम माहेश्वर तथा परम ब्राहमण थी। परवर्ती कत्यूरी शासकों को छोड़कर सभी कत्यूरी शासक प्रजा हितेषी, विद्वानों के आश्रयदाता, दानी तथा धार्मिक प्रवृत्ति के थे। उन्होंने अनेक मंदिरों का निर्माण किया तथा मंदिरों को अनेक ग्राम अग्रहार के रूप में भी दान दिये। अधिकतर कत्यूरी शासक शैव मतावलम्बी थे। परन्तु उन्होंने अन्य मतों या सम्प्रदायों को मानने वालों के साथ भेदभाव नहीं किया। उनके द्वारा वैष्णव मंदिरों को भी भूमि दान दी गयी। कत्यूरी काल में ब्राहमण धर्म को उत्तराखण्ड में व्यापक सम्मान मिला। कत्यूरी शासक अपने राजा का प्रशासन मंत्री परिषद के मंत्रियों तथा उच्च पदाधिकारियों द्वारा संचालित करते थे। कत्यूरी शासकों के अभिलेखों में मंत्रियों तथा पदाधिकारियों की एक लम्बी सूची उत्कीर्ण मिलती है। इन मंत्रियों तथा पदाधिकारियों की नियुक्ति शासक द्वारा स्वयं की जाती थी। भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये भिन्न मंत्री व अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। कत्यूरी काल के कुछ प्रमुख पदाधिकारियों के नाम निम्नलिखित थे-

अमात्य, राजामात्य, महासंधिविग्रहाधिकृत, कुमारमात्य, महादानाक्षपटलाधिकृत, महादण्डनायक, महाप्रतिहार, महाराज प्रमातार, उपरिक, महाकर्ता, गौल्मिक एवं शौल्मिक आदि। कत्यूरी वंश शासकों ने 250 वर्षों से भी अधिक समय तक उत्तराखण्ड में शासन किया। कत्यूरी सेना चार भागों में विभक्त थी- पैदल, अश्व, हाथी तथा ऊँट। अन्तिम तीन सेनाओं के मुखिया अश्वबलाधिकृत, हस्तिबलाधिकृत, ऊष्टबलाधिकृत कहे जाते थे। इन तीनों का भी एक संयुक्त सर्वोच्च अधिकारी होता था। जिसे हस्त्यश्वोष्ट्रबलाधिकृत कहा जाता था। सेना का संचालन शासक द्वारा ही होता था। कत्यूरी सेना के हाथी एवं ऊँटों का प्रयोग तराई, भाबर के क्षेत्रों में ही होता था। प्रांतपाल नामक एक अधिकारी का भी उल्लेख मिलता है जो कि राज्य की सीमाओं की सुरक्षा करता था। नदी घाटों पर

आवागमन की सुविधा कर वसूली तथा अवांछित व्यक्तियों के कार्यकलापों की देख रेख का कार्य तरपति नामक अधिकारी करता था। पुलिस अधिकारियों के अतिरिक्त दण्डक, चाट भाट आदि कर्मचारी भी थे। अपराधियों को धर पकड़ने वाला अधिकारी दोषापराधिक कहलाता था। गुप्त चर विभाग की व्यवस्था भी थी। इस विभाग का मुख्य अधिकारी दुःसाध्य साधनिक था। चोरोद्वरणिक नाम अधिकारी भी होता था जो चोर लुटेरों को पकड़ता था। इससे ज्ञात होता है कि कत्यूरी शासकों ने राज्य की आंतरिक शान्ति एवं जनसुरक्षा का पूर्ण ध्यान रखा। कत्यूरी काल में उत्तराखण्ड का मुख्य व्यवसाय कृषि था। भूमिकर राज्य की आय का प्रमुख साधन था। भूमिकर के अतिरिक्त वन एवं खनिजों से भी कर लिया जाता था। प्रमावतार भूमि नाप करने वाला अधिकारी था। भूमि नापने हेतु द्रोणवापम तथा नालीवापम प्रणाली प्रचलित थी। भूमि के पट्टे या अभिलेख पट्टकोपचरिक नामक अधिकारी के पास रहते थे। कत्यूरी अभिलेखों ने उत्कीर्ण भोगपति, शौल्किक अधिकारी भोग शुल्क आदि करों को वसूला करते थे। कत्यूरी शासक के आय के अन्य श्रोत वन खनिज तथा पशु थे। वनों की रक्षा के लिये खण्ड रक्ष तथा पशुओं के लिये गायभैंस अधिकारियों की भी नियुक्ति की जाती थी। दान में दी गयी अग्रहार भूमि करमुक्त थी। भौटान्तिक व्यापार से भी कत्यूरी राज्य को अवश्य कुछ न कुछ आय होती होगी।

प्रान्तीय प्रशासन-कत्यूरी शासकों द्वारा उत्कीर्ण लेखों में उपरिक्त नामक अधिकारी का उल्लेख मिलता है। इसकी समानता गुप्त कालीन प्रांतपति से की जा सकती है। प्रांत पति या उपरिक्त के अधीन अनेक आयुक्त होते थे जो प्रान्तीय प्रशासन की देख रेख करते थे। सम्भवतः इस काल में पूर्ववर्ती भारतीय साम्राज्यों की भाँति प्रान्तों को भुक्ति कहा जाता था। कत्यूरी अभिलेखों में जय कुल भुक्ति का उल्लेख मिलता है। कत्यूरी वंश के अभिलेखों में कार्तिकेयपुर, टंकणपुर, अन्तरागविषय तथा एशालविषय का उल्लेख मिलता है। जिससे सिद्ध होता है कत्यूरी प्रांत अनेक विषयों में विभक्त था। राज्य में प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। ग्रामों में राज्य की ओर से महामनुष्यम् तथा मुकद्दम नामक अधिकारी नियुक्त किये गये थे।

अभ्यास प्रश्न-

- 5-कत्यूरी काल में उत्तराखण्ड का मुख्य व्यवसाय क्या था?
- 6- इस काल में राज्य में प्रशासन की सबसे छोटी इकाई क्या थी?

10.2.4 चंद वंश

चंद वंश उत्तराखण्ड के इतिहास का एक महत्वपूर्ण राजवंश था। इस वंश का प्रारम्भ 10वीं-11वीं सदी से प्रारम्भ हो गया था, तथा 18वीं सदी तक इसका अस्तित्व उत्तराखण्ड की धरती पर बना रहा। इस वंश का सबसे पुरातन अभिलेख 1317 ई० में राजा अभय चंद द्वारा प्रचलित किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य परवर्ती चंद राजाओं के समय उत्कीर्ण किये गये अभिलेख भी प्राप्त हुए हैं। ये

अभिलेख दानपात्रों के रूप में उत्कीर्ण किये गये हैं। चंद कालीन अभिलेखों के अतिरिक्त इस काल से सम्बन्धित अनेक मंदिर, महल, किले, नौले उत्तराखण्ड की भूमि में यत्र-तत्र प्राप्त हुए हैं।

शासन प्रबन्ध

चंद वंश पूर्वी उत्तराखण्ड का अंतिम क्षेत्रीय राजवंश था। इस वंश के पतन के पश्चात 132 वर्षों तक यहाँ विदेशी शासन रहा जो कि क्रमशः गोरखों तथा अंग्रेजों द्वारा स्थापित किया गया। चंद काल में प्रशासन का मुख्य कार्यकारी अधिकारी राजा होता था। वह अनेक पदाधिकारियों की नियुक्ति करता था जिसकी सहायता से राजा के विभिन्न कार्य सम्पन्न किये जाते थे। चंद राजा वीर, साहसी, धैर्यवान, दानदाता, धार्मिक, विद्या प्रेमी, विद्वानों के आश्रयदाता होने के साथ-साथ कुशल प्रशासक, कुशल राजनीतिज्ञ थे। चंद राजाओं ने शासन प्रबन्ध में सहायता हेतु अनेक पदाधिकारियों की नियुक्ति की। युवराज, मंत्री, दीवान, राजगुरु, राजपुरोहित, सेनापति, फौजदार, रसोई दरौगा, खजानची, ह्यूपाल काराखेड़ा, राजचेली(राजमहल की दासी) आदि अधिकारियों एवं कर्मचारियों की सहायता से चंद राजा अपनी प्रशासनिक व्यवस्था का संचालन करते थे। उन्होने प्रशासनिक सुविधा हेतु प्रजा को कई भागों में विभाजित किया था यथा- चार बुढ़ा, पाँच थोक, चार चौथानी, छः धरिया, बारह अधिकारी, पंचबिडिया, खतीमन ब्राहमण, पौरी पन्द्रह विश्वा। चंद काल में ग्रामों का प्रशासन ग्राम प्रधान के द्वारा चलाया जाता था उसका कार्य भू-राजस्व वसूलना तथा ग्रामों की सुरक्षा प्रबन्ध की देख-रेख होता था। उसकी सहायता के लिये कोटाल तथा पहरी गाँव की चौकीदारी करता था। पहरी निम्न जाती से सम्बन्धित होता था।

आय के स्रोत

1.भू-राजस्व- भू-राजस्व भूमि के आधार पर निर्धारित किया जाता था। उपजाऊ भूमि पर अन्य भूमि की अपेक्षा अधिक कर लगाया जाता था। भूमि कर कठोरता से वसूला जाता था। यद्यपि प्राकृतिक प्रकोपों का लाभ कृषकों को मिलता था। भू-राजस्व के अतिरिक्त चंद राज्य की आय के अन्य स्रोत राजाओं द्वारा प्रजा पर लगाये गये अन्य विभिन्न प्रकार के कर थे। यथा झूलिया, सिरती बैकर, कूत, भेंट, घोड़ियालों, कुकरियालों, मॉगाकरक, स्यूक गरखानेगी, भुकड़िया बाजदार बाजनियौ, चराई कर, गृह कर इत्यादि। इन करों के अतिरिक्त वन तथा खनिजों से सम्बन्धित कर भी आय के स्रोत थे। भोटान्तिक-तिब्बत व्यापार से भी चंदों को अच्छी आय प्राप्त होती थी।

2.सेना- चंद राज्य के पास शक्तिशाली सेना थी। सेना पैदल तथा घुड़सवारों से मिलकर बनी थी। सेना का मुख्य अधिकारी सेनापति होता था। सेनिकों व सेनाधिकारियों को उनका वेतन जागीर के रूप में दिया जाता था। अपनी शक्तिशाली सेना के कारण ही चन्द राजाओं ने पंवार, डोटी जैसे शत्रु राज्यों को पराजित करने में सफलता प्राप्त की।

3.लोकहितकारी कार्य-चंद राजाओं ने लोकहितकारी कार्यों की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया। उन्होंने पेय जल हेतु अनेक नौलों का निर्माण कराया। मंदिरों का निर्माण एवं पुर्ननिर्माण करवाया।

फलदार बाग लगवाये। संस्कृत शिक्षा हेतु विद्यालय तथा छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की। विद्वानों को आश्रय दिया। मंदिरों को भू-दान दिया।

अभ्यास प्रश्न-

- 7-चन्द वंश का प्रारम्भ किस सदी से हुआ?
- 8-चंद काल में प्रशासन का मुख्य अधिकारी कौन होता था?
- 9-चंद काल में ग्रामों का प्रशासन किसके द्वारा होता था?

10.2.5 रैका वंश

कत्यूरी वंश की राजशक्ति कमजोर पड़ जाने के कारण एक शक्तिशाली शासक के अभाव में कत्यूरी वंश के सामन्तों ने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली, तथा एक स्वतंत्र राजा की भाँति अपनी अधिकृत क्षेत्र में राज्य करने लगे। सीरा व डोटी भी ऐसे ही क्षेत्रों में थे जहाँ कत्यूरी वंश के सामन्तों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित की। इन्हें कत्यूरियों की एक शाखा माना गया तथा रैका नाम से जाना गया। रैका वंश के इतिहास के सम्बन्ध में जानकारी देने वाले मुख्य स्रोत इस वंश सम्बन्धित ताम्र अभिलेख तथा डोटी एवं सीरा से प्राप्त वंशावलियाँ हैं। रैका वंश के सम्बन्ध में रैकाओं द्वारा लिखित अभिलेख तथा चंद राजाओं के अभिलेख महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं। सीरा तथा डोटी के रैका कत्यूरी शासकों की भाँति ब्राह्मण धर्म को मानने वाले थे।

10.2.6 पंवार वंश

मध्यकालीन उत्तराखण्ड के इतिहास में दो राजवंशों का स्थान महत्वपूर्ण है। पूर्वी उत्तराखण्ड का चंद वंश तथा पश्चिमी उत्तराखण्ड का पंवार वंश। कत्यूरी वंश के पतन के बाद कत्यूरी वंश के वंशजों ने अनेक स्थानों पर अपने-अपने स्वतंत्र राज्यों की स्थापना कर ली। पश्चिमी उत्तराखण्ड में भी कत्यूरी राज्य क्षेत्र अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। ये छोटे-छोटे राज्य गढ़ कहलाने लगे। गढ़ उस समय संख्या में 52 थे। इनमें एका न था। ये छोटी-छोटी बातों के लिये लड़ते रहते थे। पंवार वंश के राजाओं के गढ़ का नाम चॉदपुर था। पंवार राजा शक्तिशाली थे। इन्होंने अपनी शक्ति के बल पर समस्त गढ़ों को अपने अधीन कर लिया और एक गढ़ देश की स्थापना की। इसी गढ़ देश को गढ़वाल कहा जाता है। पश्चिमी राजाओं के दरबारी कवियों के अनुसार ये राजा चन्द्र वंश से सम्बन्धित थे। जबकि इस वंश के परवर्ती राजाओं ने अपने वंश को पंवार वंश कहा। विशेषकर राजा सुदर्शन शाह ने (1815-1859ई0) को अपने वंश को पंवार वंश कहा।

पंवार वंशीय प्रशासन:

पंवार वंश के राजाओं ने जिस प्रकार पक्षी तिनका-तिनका कर घोंसले का निर्माण करते हैं ठीक वैसे ही 52 गढ़ों को मिला कर पंवार राज्य का निर्माण किया। पंवार राज्य का प्रधान राजा होता था। वह समस्त भूमि, वन तथा खनिज का स्वामी समझा जाता था। वह भूमिदान कर सकता था। पंवार वंशी राजा निरंकुश नहीं थे। वे प्रजा की धार्मिक भावनाओं का सम्मान करते थे। प्रजाहित का ध्यान रखते

थे। विद्वानों तथा कलाकारों के संरक्षक भी थे। राजकार्यों में कार्य करने के लिये वे उच्च अधिकारियों की नियुक्ति भी करते थे। राजा द्वारा निम्न उच्चाधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। यथा वजीर, दिवान, फौजदार, दफ्तरी, नेगी, धर्माधिकारी गोलदार, वकील इत्यादि।

राजा के बाद सबसे शक्ति सम्पन्न अधिकारी मुख्तार होता था। वह वजीर या दीवान के समान था। शक्तिहीन राजाओं के काल में वह राज्य का सर्वेसर्वा बन जाता था। दफ्तरी का कार्यालय सचिवालय की भाँति था। वह राज्य के कर्मचारियों की नियुक्ति, स्थानान्तरण, वेतन, पुरस्कार, दण्ड, जागीर आदि से सम्बन्धित होता था। वह राजा के आदेशों का प्रसार भी करता था। फौजदार सैनिक अधिकारी थे। जो परगनों में नियुक्त किये जाते थे। पंवार राज्य में नेगी भी उच्चाधिकारी होते थे। ये कुलीन परिवारों के प्रतिनिधि थे। राजा इनसे महत्वपूर्ण मामलों में परामर्श लेता था। नेगी का पद वंशानुगत था। धर्माधिकारी धर्म विभाग का प्रधान था। वह वंशानुगत पद था। गोलदार का कार्य राज्य के प्रमुख स्थलों राजमहल राजकोष आदि की सुरक्षा करना था। वकील दूत का कार्य करते थे। इन अधिकारियों के अतिरिक्त अनेक कर्मचारी भी होते थे। यथा खवास-खवासिन(सेवक-सेविकाएं), चोपदार यह राजा के साथ चाँदी का दण्ड लेकर चलता था। सोदी राजपरिवार के लिये भोजन की व्यवस्था करता था। चन्ड संदेशवाहक का कार्य करता था। उच्चपदाधिकारियों को वेतन, जागीर के रूप में दिया जाता था। दैनिक व्यय व कर्मचारियों को व्यय के लिये कुछ नकद राशि भी दी जाती थी। कुछ कर्मचारियों को प्रत्येक फसल के समय गाँव से कुछ अन्न नाली के रूप में दिया जाता था। आय के स्रोत-पंवार राज्य के आय का प्रमुख स्रोत कृषि से प्राप्त भू-राजस्व था। राजा को समस्त भूमि का स्वामी माना जाता था। किसी भी व्यक्ति को भूमि दान में दे सकता था। भूमि रौत, जागीर तथा संकल्प के द्वारा दान में दी जाती थी। रौत उस भूमि को कहा जाता था जो सैनिकों को युद्ध में वीरता तथा साहस दिखाने के लिये दी जाती थी। भूमि अनेक थातों में विभक्त थी। प्रत्येक थात थातवान के अर्न्तगत आता था। वह एक जमींदार की भाँति था। उसका कार्य अपनी थात का भू-राजस्व एकत्रित कर राजकोष में जमा करना था। खायकर एक प्रकार के स्थाई कृषक थे जबकि सिरतान अस्थाई कृषक। ये जमींदार को भू-कर के अतिरिक्त समय-समय पर भेंट, दस्तूर तथा मिठाई के रूप में कर देते थे। भू-राजस्व की वसूली करने वाले अन्य अधिकारी थोकदार प्रधान तथा बूढ़ा थे। थोकदार परगनों से भू-राजस्व एकत्रित करते थे प्रधान ग्रामों से राजस्व की वसूली करते थे। भोटान्तिक भू-राजस्व वसूली करने वाले अधिकारी को बूढ़ा कहा जाता था। थोकदार को समाणा नाम से भी जाना जाता था। सम्पूर्ण राज्य के भू-राजस्व के दस्तावेज तथा आकंड़े राज्य की राजधानी में दफ्तरी के पास रहते थे। भूमि नाप की इकाई नाली थी। भू-राजस्व की दर उपज के 1/3 भाग से 1/2 भाग तक थी। साधारण भूमि से भू-राजस्व उपज का 1/3 भाग तथा उपजाऊ भूमि से भू-राजस्व उपज का 1/2 भाग लिया जाता था। कुल 68 प्रकार के आय के अन्य स्रोत थे जिनमें से 36 कर थे तथा 32 देय।

इस प्रकार पंवार राजाओं ने एक व्यवस्थित प्रशासन की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की। निरन्तर युद्धों में उलझे रहने पर भी राज्य का प्रशासन सुचारू रूप से चलता रहता था।

10-पंवार वंश में खायकर किन्हें कहा जाता था?

11-पंवार वंश में भूमि नाप की इकाई क्या थी?

10.2.7 गोरखा शासन

गोरखा राज्य के उद्भव से पूर्व नेपाल अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था। यथा भाट गॉव वेलपा, डूलू, डोटी, जुमला काठमांडू या कांतिपुर इत्यादि। इन राज्यों में किरात एवं वैश्य वंश के राजा राज्य करते थे। चंद राज्य पर आक्रमण के समय गोरखों का राजा रणबहादुर शाह(1777-1804ई0) था। इसके सत्ता प्राप्त करने तक गोरखा राज्य में नेपाल के अनेक छोटे-छोटे राज्यों का समावेश हो चुका था। एक शक्तिशाली गोरखा सेना का संगठन भी हो चुका था। सन1790 ई0 तक गोरखा राजा ने चंद राजा द्वारा पदच्युत हर्षदेव जोशी से भी समझौता कर उसे अपनी सहायता हेतु मना लिया। चंद राज्य पर विजय प्राप्त करने के पश्चात 1791ई0 में गोरखा सेना ने पंवार राज्य पर आक्रमण कर दिया। गोरखा सेना पंवार राज्य पर विजय बनाने की योजना बनाती उसी समय चीन ने नेपाल पर आक्रमण किया गया। अतः गोरखा सेनापतियों ने पंवार राजा प्रद्युम्न शाह से श्रीनगर की सन्धि कर ली। यह सन्धि 1792 में हुई। सन्धि की शर्तानुसार पंवार राजा को नेपाल की अधीनता स्वीकार कर उसे कर देना था। सन1803 ई0 तक पंवार राज्य की स्थिति अत्यन्त कमजोर हो चुकी थी। उसे प्राकृतिक प्रकोपों को भी सहना पड़ा। गोरखा सेना ने सुअवसर जान 1803 ई0 में पंवार राज्य में आक्रमण कर दिया और श्रीनगर पर अधिकार कर लिया।

गोरखा प्रशासन: गोरखों का उत्तराखण्ड में शासन 1815 ई0 तक रहा। गोरखों ने उत्तराखण्ड को सैन्य शक्ति के द्वारा विजित किया था। अतः उनका प्रशासन भी सैन्य प्रशासन के द्वारा नियंत्रित होता था। फिर भी उन्होंने नेपाल तथा उत्तराखण्ड में प्रचलित शासन व्यवस्था के मिश्रित रूप को अपनाया। गोरखा शासन सैनिक शासन था। उसके सभी उत्तराधिकारी सेना सम्बन्धित होते थे। गोरखा सेना एक शक्तिशाली सेना थी। अपनी शक्ति के द्वारा ही उन्होंने विस्तृत भू-भाग पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त की। गोरखा सेना में प्रतिदिन परेड, उपस्थिति तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था थी। सैनिक सामान्यतः एक वर्ष के लिये ही नियुक्त किये जाते थे। नियुक्ति काल में सैनिक जागरिया कहलाते थे। एक वर्ष बाद नई नियुक्तियाँ पुरानों के स्थान पर की जाती थी। जिन सैनिकों को एक वर्ष बाद परिवर्तित किया जाता था। इन्हें दो वर्षों तक सेना में नहीं लिया जाता था। ये सैनिक ढाकरिया कहलाते थे। आपात काल में इन्हें पुनः सैन्य सेवा में रख लिया जाता था। अस्थायी सेना में गोरखा लोगों से भिन्न लोगों की नियुक्ति की जाती थी। गोरखा जिन क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करते थे उन क्षेत्रों की जनता से भी सैनिकों की भर्ती कर लेते थे। सैनिक विजित क्षेत्र में शान्ति एवं सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान देते थे। अस्थाई सेना से कभी उच्च एवं निम्न अधिकारी नहीं बनाया जाता था। गोरखा प्रशासन सैनिक

प्रशासन था अतः उसका न्याय प्रशासन भी सैनिक न्याय व्यवस्था पर आधारित था। मामलों की सुनवाई विचारी नामक अधिकारी द्वारा की जाती थी। विचारी की सहायता के लिये सेना होती थी। विचारी निरंकुश होता था। इस पर राजा के नियंत्रण की कोई व्यवस्था नहीं थी।

आय के स्रोत-गोरखा शासन के लिये मजबूत आर्थिक स्थिति का होना आवश्यक शर्त थी। गोरखा अधिकारी अधिकांशतः युद्धों में ही अपना समय व्यतीत करते थे। अतः उनके पास नई राजस्व नीति निर्मित करने का समय नहीं था। भू-राजस्व वसूलने वाले अधिकारी भी पूर्व काल की भाँति रहे। राजस्व की वसूली में कमीण, सयाणा एवं ग्राम के प्रधान का महत्व बना रहा। भूमिकर का निर्धारण करते समय कृषक के हित के बजाय सैनिकों के हित का ध्यान रखा जाता था। सैनिकों को वेतन देने के लिये मुख्य स्रोत भू-राजस्व ही था। जो लोग भूमि-कर देने में असमर्थ होते थे उन्हें दास बना कर बेच दिया जाता था।

अन्य स्रोत- गोरखा शासकों द्वारा भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य प्रकार के अनेक कर भी लिये जाते थे। पूर्व काल में प्रचलित कर समाप्त कर दिये गये थे। इनके स्थान पर नये कर लगाये गये। कुछ प्रमुख कर निम्नलिखित थे- जैसे मौकर(गृहकर), बुनाई कर, घी कर, सलामी या नजराना जो उच्चाधिकारी को उपहार स्वरूप दिया जाता था। गोरखा शासन में लोगों को दास बना कर बेचा जाता था जिसकी आय भी गोरखों की प्रमुख स्रोत थी। गोरखा शासन में उत्तराखण्ड के अनेक पुरूष स्त्रियों को दास बना कर बेचा गया था।

इस प्रकार गोरखा शासन में सैनिक शासन होने के कारण गुणों की अपेक्षा दुर्गुण अधिक थे। गोरखा सैनिकों के अत्याचारों से जनता पीड़ित थी। सैनिक स्वयं लूटमार तथा व्यभिचार में लिप्त रहते थे। गोरखा शासन की न्याय तथा राजस्व व्यवस्था अन्यायपूर्ण थी।

4 गोरखा शासन किस प्रकार का शासन था?

5 गृहकर को गोरखा प्रशासन में क्या कहते थे?

10.3 अंग्रेजी शासन

अप्रैल 1815 ई0 में उत्तराखण्ड क्षेत्र के गोरखा प्रशासक चौतरिया बमशाह तथा अंग्रेजों के प्रतिनिधि ई0 गार्डनर द्वारा एक सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर किये गये। इस प्रकार उत्तराखण्ड का राज्य भी अंग्रेजों के अन्तर्गत आ गया। सम्पूर्ण उत्तराखण्ड पर अंग्रेजों का शासन स्थापित हो गया। उत्तराखण्ड एक बार फिर विदेशी शासकों के चंगुल में जा फसाँ। इस स्थिति के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि आसमान से गिरे खजूर पर अटके। अंग्रेजों ने सम्पूर्ण उत्तराखण्ड के दो भाग कर दिये। एक भाग को अन्य देशी रियासतों की भाँति टेहरी रियासत के रूप में जाना गया। दूसरा भाग अंग्रेजी सरकार के अधीन हो गया। टेहरी रियासत पूर्व पंवार वंश के वंशजों के अधीन कर दी गयी। टेहरी रियासत की राजधानी टेहरी थी। टेहरी रियासत नाममात्र को पंवार वंश अधीन थी उसका वास्तविक शासन तो अंग्रेजों के द्वारा ही चलाया जाता था। टेहरी रियासत का प्रथम राजा सुदर्शन शाह था। जिसने

1815ई0 से 1859 तक शासन किया। उसके वंशजों ने 1949 ई0 तक टेहरी रियासत में शासन किया। टेहरी रियासत में अंग्रेजी सरकार का एक एजेन्ट भी नियुक्त किया जाता था। प्रारम्भ में यह एजेन्ट कुमाऊँ का कमीश्रर होता था परन्तु 1825 ई0 से 1842 ई0 तक देहरादून जिले के डिप्टी कमीश्रर को टेहरी रियासत में सरकार का एजेन्ट बनाया गया। परन्तु 1842 ई0 में पुनः कुमाऊँ कमीश्रर को यह जिम्मेदारी सौंपी गयी। टेहरी रियासत को 1937ई0 में पंजाब हिल स्टेट एजेन्सी के साथ संयुक्त कर दिया गया था। 1949 ई0 में टेहरी रियासत का भी अन्य भारतीय रियासतों की भाँति विलीनीकरण कर दिया गया तथा टेहरी रियासत के राजा को पेन्शन दे दी गयी। टेहरी रियासत के अतिरिक्त सम्पूर्ण उत्तराखण्ड अंग्रेजों के द्वारा शासित किया गया। इसे प्रारम्भ में बंगाल प्रेसिडेन्सी से सम्बद्ध किया गया था। उत्तराखण्ड में प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिये उसे कमीश्ररियों में बाँटा गया था। कमीश्ररियों का प्रमुख कमीश्रर होता था। उसकी सहायता के लिये डिप्टी कमीश्रर, डिप्टी कलेक्टर, तहसीलदार, नायब तहसीलदार, पटवारी, थोकदार, प्रधान, सयाणा आदि अधिकारी होते थे। उत्तराखण्ड में कमीश्रर का पद एक शक्तिशाली पद था। उत्तराखण्ड के प्रारंभिक कमीश्ररों ने तो स्वतंत्र रूप से निरंकुश शासक की भाँति राज्य किया। प्रारम्भ में उत्तराखण्ड एक ज़िला था परन्तु 1839 ई0 में गढ़वाल ज़िले का निर्माण किया गया। इस प्रकार उत्तराखण्ड में दो ज़िले कुमाऊँ तथा गढ़वाल(ब्रिटिश) हो गये। कालांतर में इनमें और वृद्धि की गयी यथा तराई ज़िला 1842 व नैनीताल ज़िला 1891। कुमाऊँ कमीश्ररी के प्रारम्भिक कमीश्रर बहुत शक्तिशाली थे। हैनरी रामजे तक यह स्थिति बनी रही। रामजे के बाद कमीश्ररों की स्थिति पूर्व की भाँति न रही वह केवल प्रशासक बने रहे। इन्हें अनेक न्यायिक व प्रशासनिक अधिकार प्राप्त थे। सन1815 ई0 से 1947 ई0 तक उत्तराखण्ड में अनेकों कमीश्ररों का प्रशासन रहा।

10.4 उत्तराखण्ड में ब्रिटिश राजतंत्र का उदय

उत्तराखण्ड में इस समय हैनरी रामजे का शासन चल रहा था। 1857 की क्रान्ति का प्रभाव अभी तक उत्तराखण्ड की धरती पर नहीं पड़ा था। इस पर अंग्रेजी प्रशासन सतर्क था। अपने प्रशासनिक क्षेत्र में उन्होंने मार्शल लॉ लगा दिया। उत्तराखण्ड के कुछ इलाकों में छोटी-छोटी घटनाएं घटित होने लगीं। 17 सितम्बर 1857 में आन्दोलनकारियों द्वारा हल्द्वानी पर अधिकार कर लिया गया। परन्तु कैप्टन मैक्सवेल ने उन्हें पराजित कर दिया। बाद में 16 अक्टूबर को आन्दोलनकारी हल्द्वानी पर पुनः अधिकार करने में सफल रहे। परन्तु इस बार फिर उन्हें अंग्रेजी सेना ने खदेड़ दिया। उत्तराखण्ड का पड़ोसी क्षेत्र बरेली 1857ई0 में क्रान्ति का प्रमुख केन्द्र रहा। सन1858 ई0 में भारत का शासन कम्पनी सरकार से जाता रहा। अब भारत ब्रिटिश सरकार के हाथों प्रत्यक्ष रूप से आ गया। महारानी विक्टोरिया को भारत के साम्राज्ञी घोषित कर दिया गया। साथ में भारतवर्ष में सुशासन का आश्वासन भी दिया गया। इस प्रकार सन1858 ई0 से उत्तराखण्ड भी साम्राज्ञी के अधीन आ गया।

10.5 सारांश

उत्तराखण्ड की शासन व्यवस्था में यहाँ के शासकों की शासन व्यवस्था व उनकी प्रशासनिक संरचना का प्रभाव आज भी देखने को मिलता है। उत्तराखण्ड क्षेत्र का प्राचीनतम् उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में मिलता है। पांचवी सदी ईसा पूर्व में कई बौद्ध हरिद्वार क्षेत्र में वास करते थे। चौथी सदी ईसा पूर्व में चन्द्रगुप्त मौर्य के हाथों नन्दों की पराजय के बाद यह क्षेत्र मौर्य साम्राज्य का अंग बन गया। इसके बाद उत्तराखण्ड में कई राजवंश आये। उनकी शासन प्रणालियों व प्रशासनिक व्यवस्थाओं ने यहाँ के सामाजिक ताने बाने में अपना प्रभाव छोड़ा जो आज भी हमें देखने को मिलता है। हमने अपने अध्ययन में पाया कि उत्तराखण्ड में प्रारंभ के राजवंशों में कुणिन्दों का उल्लेख मिलता है। कुणिन्द शासकों की सत्ता स्वतंत्र रही है। इसके बाद पौरव वंश का उल्लेख आता है। जिनकी प्रशासनिक व्यवस्था बहुत मजबूत थी। पौरव वंशीय शासक धार्मिक प्रवृत्ति के थे तथा शासन को धार्मिक ग्रन्थों व स्मृतियों के अनुसार चलाने में विश्वास करते थे। उत्तराखण्ड के महत्वपूर्ण राजवंशों में कत्यूरी शासन रहा है। कत्यूरी शासन सुव्यवस्थित व जनहितकारी था। इसके बाद चंद, पंवार, गोरखा व अंग्रेजी शासन का प्रभाव उत्तराखण्ड में रहा जिसने उत्तराखण्ड की राजनीतिक चेतना को दिशा देने का काम किया।

10.6 शब्दावली

विकेन्द्रीकरण	- प्रान्तों या प्रदेशों के अधिकार में सत्ता का आवंटन करना।
ग्रेन	- वजन नापने की इकाई।
भोटान्तिक व्यापार	- भोटिया जनजाति के साथ होने वाला क्रय-विक्रय
अधिवेशन	- सम्मेलन
उत्कीर्ण	- उकेरे हुए या धातुओं में छपे हुए

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ताम्र धातु
2. पाणिनी
3. तीन
4. सिचाई वाली भूमि
5. कृषि
6. ग्राम
7. 10-11वीं सदी
8. राजा
9. ग्राम प्रधान
10. एक प्रकार के स्थाई कृषक
11. नाली
12. सैनिक शासन
13. मौकर।

10.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. उत्तराखण्ड का इतिहास - शिव प्रसाद डबराल
2. कुमाऊँ का इतिहास - बद्री दत्त पाण्डे
3. पाणिनी कालीन भारतवर्ष - बासुदेव शरण अग्रवाल
4. केदार खण्ड - शिवानंद नौटियाल
5. कुमाऊँनी भाषा साहित्य - त्रिलोचन पाण्डे

10.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गढ़वाल का इतिहास - पं० हरिकृष्ण रतूड़ी

2. स्वतंत्रता संग्राम में कुमाऊँ गढ़वाल का योगदान - धर्मपाल सिंह मनराल
3. उत्तराखण्ड: इतिहास एवं संस्कृति - घनश्याम जोशी, चन्द्रशेखर दुम्का

10.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. कुणिन्द राजवंश के प्रशासन पर निबन्ध लिखिये?
2. पौरव वंश में शासन प्रबन्ध किस प्रकार से होता था?
3. कत्यूरी काल की केन्द्रीय प्रशासन व्यवस्था के विषय में जानकारी दें?
4. चन्द वंश व उसके शासन प्रबन्ध पर एक लेख लिखिये?
5. पंचार वंशीय प्रशासन का विस्तृत वर्णन करिए?
6. गोरखा राज्य में प्रशासन सम्बन्धी व्यवस्था को स्पष्ट कीजिए?

इकाई-11 उत्तराखण्ड में राज्य प्रशासन: एक पारिस्थिकी विश्लेषणइकाई की संरचना

- 11.0 प्रस्तावना
- 11.1 उद्देश्य
- 11.2 उत्तराखण्ड में आरम्भिक पुलिस व्यवस्था
 - 11.2.1 तहसीलें
 - 11.2.2 कमीश्नर
 - 11.2.3. तहसीलदार
 - 11.2.4 कानूनगो
 - 11.2.5 पटवारी
 - 11.2.6 थोकदार, परगने और पट्टीयों
- 11.3 स्वतंत्रता के बाद उत्तराखण्ड का प्रशासनिक ढाँचा
- 11.4 उत्तराखण्ड राज्य गठन के बाद प्रशासनिक संरचना
 - 11.4.1 विशेष राज्य की श्रेणी
 - 11.4.2 राज्य में आरक्षण की स्थिती
- 11.5 हिमालयी राज्यों की तुलना
- 11.6 सारांश
- 11.7 शब्दावली
- 11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 11.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 11.11निबंधात्मक प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

इससे पूर्व इकाई- में हमने उत्तराखण्ड के प्रशासनिक इतिहास पर विस्तृत चर्चा की और उत्तराखण्ड के सभी राजवंशों व उनके प्रशासनिक संगठनों व उनके कार्य प्रणालियों को समझने का प्रयास किया। पिछले अध्याय में हमने जाना कि उत्तराखण्ड क्षेत्र का प्राचीनतम् उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में मिलता है। पांचवी सदी ईसा पूर्व में कई बौद्ध हरिद्वार क्षेत्र में वास करते थे। चौथी सदी ईसा पूर्व में चन्द्रगुप्त मौर्य के हाथों नन्दों की पराजय के बाद यह क्षेत्र मौर्य साम्राज्य का अंग बन गया। इसके बाद उत्तराखण्ड में कई राजवंश आये। उनकी शासन प्रणालियों व प्रशासनिक व्यवस्थाओं ने यहाँ के सामाजिक ताने बाने में अपना प्रभाव छोड़ा जो आज भी हमें देखने को मिलता है।

उत्तराखण्ड की पारिस्थिकी हिमालयी प्रवर्तन-प्रक्रिया के महत्वपूर्ण एवं अत्यन्त जटिल इतिहास को प्रस्तुत करती है। हिमालय की पारिस्थितिकी के अध्ययन को हिमालय से अलग करके नहीं समझा जा सकता है। राज्य का प्रथक नियोजन व प्रबंधन प्रशासनिक इकाई के गठन का सशक्त आधार है। उत्तराखण्ड राज्य के गठन की अवधारणा भी यही थी कि भौगोलिक क्षेत्रफल के आधार पर बड़े राज्यों में समुचित प्रबन्ध नहीं हो पाता है। बड़े राज्य अपने जातीय-सांस्कृतिक समुदायों की आकांक्षाएं पूरी नहीं कर पाते हैं। उत्तर-प्रदेश का पर्वतीय क्षेत्र अपने आप में भाषा, संस्कृति सहित विभिन्न भौगोलिक विशिष्टताएं लिये हुए है। इसका समुचित प्रबन्ध अलग राज्य बनने से ही हो सकता था।

इस क्षेत्र की विषम भौगोलिक परिस्थिति को देखते हुए जिस प्रशासनिक ढाँचें को अंग्रेजी शासन ने बनाया और जो आज भी लगभग उसी तरह उत्तराखण्ड में लागू है। उस संरचना को भी हम इस अध्याय में अध्ययन करेंगे। अंग्रेजी शासन में प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिये उत्तराखण्ड में छोटी सी प्रशासनिक इकाई का सृजन किया गया उसे पटवारी हल्का कहा गया। जनता की सुविधा व प्रशासन की कुशलता के लिये पटवारी को राजस्व व पुलिस दोनों के अधिकार दिये गये। यह व्यवस्था आज भी पर्वतीय क्षेत्र में मौजूद है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ के लिये पूर्व से ही पृथक व्यवस्थाएं थी। उत्तराखण्ड के इन सभी प्रशासनिक पहलुओं पर हम इस इकाई में चर्चा करेंगे।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई से हम जान पायेंगे कि-

1. ब्रिटिश काल में उत्तराखण्ड की प्रशासनिक संरचना क्या थी।
2. उत्तराखण्ड की वर्तमान प्रशासनिक स्थिति क्या है।
3. राज्य की विशेष परिस्थितियाँ क्या हैं जिस कारण ये भारत के अन्य राज्यों से भिन्न है।
4. वर्तमान में उत्तराखण्ड राज्य की स्थिति क्या है।

5. राज्य की प्रशासनिक ईकाइयाँ कौन-कौन सी हैं तथा वो अपना काम कैसे करती है।

11.2 उत्तराखण्ड में आरम्भिक पुलिस व्यवस्था

ब्रिटिश काल में इस पर्वतीय राज्य को लेकर अंग्रेजों की नीति भिन्न थी। ट्रेल ने इस व्यवस्था पर विशेष टिप्पणी करते हुए कहा कि- “ इस प्रांत में चोरी का नितान्त अभाव और लोगों की परम नैतिकता को देखते हुए किसी भी प्रकार की पुलिस व्यवस्था अनावश्यक समझी जायेगी। “ पर्वतीय क्षेत्र में पुलिस प्रशासन का दायित्व मुख्यरूप से पटवारी, पेशकार आदि राजस्व अधिकारियों के हाथों में छोड़ दिया गया। अपने कार्य में उन्हें थोकदार व पधानों से सहायता मिलती थी। कुमाऊँ कमिश्नर रामजे ने इस व्यवस्था को संतोषजनक बताते हुए कहा कि- मैं समझता हूँ कि हमारा ग्रामीण पुलिस प्रशासन पूरे भारतवर्ष में सर्वोत्तम है। इसमें परिवर्तन करना समझदारी नहीं होगी। ग्रामीण पुलिस व्यवस्था बहुत कम खर्चीली है, क्योंकि सरकार को उस पर कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता है (भाबर पुलिस को छोड़ कर) साथ ही वेतनभोगी पुलिसकर्मियों के खर्चे से होनी वाली चिन्ताएं और मुसीबतें भी यहाँ पर नहीं हैं। ये तथ्य उसके पक्ष में हैं। ये व्यवस्था आज भी अधिकांश पर्वतीय हिस्सों में लागू है। आज भी पर्वतीय क्षेत्रों में पटवारी संचालित पुलिस प्रशासन व्यवस्था है।

पुलिस प्रशासन के लिये समस्त कुमाऊँ जिला एक पुलिस अधीक्षक के अधीन था। उसकी सहायता के लिये सहायक पुलिस सुपरिन्टेंडेंट, इन्सपेक्टर और सब-इन्सपेक्टर होते थे। पुलिस चौकियाँ, हैड कान्सटेबल के अधीन होती थी। 1838 में कुमाऊँ जिले का पुनर्गठन कर गढ़वाल और कुमाऊँ दो जिलों का निर्माण किया गया। उनके मुख्यालय क्रमशः श्रीनगर और अल्मोड़ा में स्थापित किये गये। गढ़वाल राज्य का वह भाग जो अंग्रेजों ने गढ़वाल नरेश से हस्तगत किया था 1815 में कुमाऊँ जिले का एक परगना बना दिया गया था। दोनों नवगठित जिलों को सीनियर असिस्टेंट कमीश्नर के अधीन कर दिया गया। गढ़वाल जिले के मुख्यालय को 1840 में श्रीनगर से पौड़ी तब्दील कर दिया गया। 1842 में भाबर और तराई क्षेत्र को, जिसे कि अच्छी पुलिस व्यवस्था के उद्देश्य से कुमाऊँ जिले से अलग कर दिया गया था पुनः कुमाऊँ में शामिल कर दिया। 1891 में कुमाऊँ जिले को अल्मोड़ा और नैनीताल दो जिलों में बाँट दिया गया और इन नवगठित जिलों के प्रधान प्रशासक को डिप्टी कमीश्नर कहा गया। इस नये जिले के निर्माण का मुख्य कारण कुमाऊँ जिले का आकार घटा कर उसे प्रशासनिक दृष्टि से अधिक सुविधा जनक बनाना था।

11.2.1 तहसीलें -- अंग्रेजी शासन काल में तहसील प्रशासनिक ढाँचें की एक महत्वपूर्ण इकाई थी। आरंभ में कुमाऊँ जिले की सात तहसीलें अल्मोड़ा, काली कुमाऊँ, पाली-पछौं, कोटा, सीर, फल्दाकोट और रामनगर में स्थापित थी। गढ़वाल तब कुमाऊँ जिले का एक परगना था और 1815 में वहाँ पर श्रीनगर और कैन्थूर(चाँदपुर) में दो तहसीलें थीं। 1823 में प्रशासनिक खर्चों में कमी करने के उद्देश्य से कुमाऊँ जिले में कुल चार तहसीलों का प्रावधान किया गया। हजूर और काली कुमाऊँ,

कुमाऊँ क्षेत्र में और श्रीनगर और चाँदपुर गढ़वाल क्षेत्र में। इस प्रकार जिलों और तहसीलों के संगठन में समय-समय पर फेर बदल होते रहे।

11.2.2 कमिश्नर--अंग्रेजी शासन के दौरान एक मात्र कमिश्नर ही ऐसा अधिकारी था जो सरकार का प्रतिनिधित्व करता था। उसके कार्य में कानून व व्यवस्था, पुलिस, कारागार, न्यायिक कार्य, राजस्व, यातायात, उत्पाद शुल्क, वन, प्रशासन आदि शामिल थे। 1894 तक उसे मृत्यु दण्ड देने का अधिकार भी था। 1894 से 1914 तक कमिश्नर ने सेशन जज का कार्य भार भी सम्भाला और तभी वहाँ पर एक अलग अदालत की भी स्थापना हुई। धीरे-धीरे मैदानी प्रदेश के नियम भी वहाँ लागू हो गये। प्रशासन की दृष्टि से देहरादून को एक अलग श्रेणी में रखा गया था। सन 1815 में उसे सहारनपुर जिले में शामिल किया गया था। 1815 में देहरादून को कुमाऊँ के कमिश्नर के अधीन कर दिया गया क्योंकि मैदानी क्षेत्रों के कायदे कानून देहरादून के पर्वतीय लोगों के लिये अनुपयोगी थे। सुपरिन्टेंडेंट देहरादून उस समय जिले का सर्वोच्च अधिकारी था। 1 मई 1829 को देहरादून को मेरठ डिवीजन में शामिल कर दिया गया। 1947 में सुपरिन्टेंडेंट का पदनाम जिला मजिस्ट्रेट अथवा कलेक्टर में बदल दिया गया। वो राजस्व और अन्य करों की वसूली और कानून व्यवस्था बनाये रखने के लिये उत्तरदायी था। कलेक्टर का दफ्तर कलक्ट्रेट कहलाता था, जो कि जिला मुख्यालय में स्थित होता था। कलक्ट्रेट में रिकार्ड रूम, कोर्ट स्टाफ, तहसील स्टाफ और लैन्ड रिकार्ड आफिस शामिल होते थे। आफिस सुपरिन्टेंडेंट सभी कर्मचारियों का मुखिया होता था। प्रशासन की यह पद्धति मामूली परिवर्तन के साथ आज भी लागू है।

11.2.3. तहसीलदार- जिलों को राजस्व वसूली के लिये तहसीलों में बाँटा गया। इसका कार्यभार तहसीलदार को सौंपा गया। तहसीलदार के दफ्तर के मुख्य कर्मचारियों में मोहरिर माल, न्यायिक मोहरिर, अहलमद, नाज़िर, अमीन और कुर्क अमीन शामिल थे। रजिस्ट्रार कानूनगो भूमि सम्बन्धी दस्तावेजों के संकलन और रखरखाव के लिये जिम्मेदार था। तहसील के प्रधान अधिकारी को सब-डिवीजनल आफिसर(एस.डी.ओ.) कहते थे। एस.डी.ओ. को सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट(प्रथम श्रेणी) और असिस्टेंट कलेक्टर(प्रथम श्रेणी) भी कहते थे। एस.डी.ओ. का कार्य शान्ति और व्यवस्था सम्बन्धी दायित्वों के अलावा राजस्व सम्बन्धी व अन्य आपराधिक मामले निपटाना, भूमि के नक्शे व दस्तावेज तैयार करना तथा राजस्व का निर्धारण और वसूली करना था।

11.2.4 कानूनगो -कानूनगो राजस्व सम्बन्धी मामलों में परगने का सर्वोच्च अधिकारी होता था। परगना तहसील से छोटी प्रशासनिक इकाई थी। हालांकि अंग्रेजों के आने से पहले भी उत्तराखण्ड परगनों में विभक्त था। कानूनगो के पास पुलिस अधिकार होते थे। राजस्व भी उनके अधीन होती थी। इतिहास में इस बात की जानकारी भी मिलती है कि राजाओं के शासन काल में कानूनगों पद पर कुछ परिवारों का वंशानुगत अधिकार माना जाता था। आज कानूनगों पद पूर्ण रूप से सरकारी हो

गया है। जो राजकीय स्तर पर महत्वपूर्ण कार्यों को अपने अधिकारियों के निर्देशानुसार सम्पन्न करके अपना योगदान दे रहे हैं।

11.2.5 पटवारी- परगना कई पट्टियों में विभक्त होता था। उत्तराखण्ड में राजवंश काल में पट्टी एक प्रशासनिक इकाई थी। अंग्रेजी शासन काल में एक अंग्रेज अधिकारी वैकेट ने पटवारियों के लिये सुविधाजनक मण्डल या हल्का बनाने के उद्देश्य से इसका पुनर्गठन किया। पटवारी पट्टी का राजस्व अधिकारी था। उसे पुलिस के कुछ अधिकार भी सौंपे गये थे। पटवारी के दफ्तर को पटवारी चौकी भी कहा जाता था। वहीं उसका निवास भी होता था। उसके क्षेत्र में यदि कोई आपराधिक घटना होती थी तो उसकी सूचना तुरन्त पटवारी को दी जाती थी। पटवारी पद की स्थापना सन 1819 में कमीश्नर ट्रेल ने लिखवाड़ के स्थान पर की थी। लिखवाड़ पहले कानूनगो के सहायक के रूप में काम करते थे। हर पट्टी में कई गाँव होते थे। गाँवों के मुखिया को पधान अथवा मालगुजार कहते थे, जिसका कार्य राजस्व सम्बन्धी एवं पुलिस दायित्वों को निभाना होता था। जिसके बदले में उसे थोड़ी ज़मीन आवंटित की जाती थी जिसे पधानचारी कहते थे। पधान एक सहायक को भी नियुक्ति देता था जिसे कोतल कहते थे। आज भी उत्तराखण्ड में परगने पट्टियों में विभक्त हैं तथा पटवारी पर्वतीय क्षेत्रों में आज भी एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक पद है। वो राजस्व कार्यों के साथ-साथ पुलिस का काम भी उसी भाँति कर रहा है जैसे अंग्रेजी शासन काल में कर रहा था।

11.2.6 थोकदार, परगने और पट्टियाँ -थोकदार एक महत्वपूर्ण व्यक्ति रहा है। राजाओं के शासनकाल में थोकदार एक मंत्रीवर्गीय अधिकारी होता था। थोकदार सामान्यतः वंशागत होता था। थोकदार का कार्य पुलिस और प्रशासनिक दायित्व निभाना होता था। अंग्रेजों ने थोकदार व्यवस्था को उपयोगी बनाने के उद्देश्य से थोकदार पट्टा देने की प्रथा शुरू की, जिसमें थोकदार के अधीन आने वाले गाँव, उसके दायित्व व उसकी फीस का उल्लेख होता था। 'हक्र थोकदारी' और दस्तूर थोकदारी ऐसे शुल्क थे जो गाँव के पधान थोकदारों को देते थे। थोकदारों को सयाना, कुमीन अथवा बूढ़ा कहा जाता था। 1821 में राजस्व वसूली की जिम्मेदारी थोकदारों के बजाय मालगुजारों अथवा पधानों को दे दी गयी। 1856 में उनके पुलिस अधिकार भी छीन लिये गये परन्तु अंग्रेजी शासन के अंत तक थोकदारों का पहाड़ी समाज में एक विशिष्ठ स्थान बना रहा।

उत्तराखण्ड के राजवंशीय काल में परगने और पट्टियाँ थीं, जिन्हें भली प्रकार से संगठित नहीं किया गया था। प्रशासनिक सुविधा के लिये 1821 में उन्हें पुनर्गठित करने का प्रयास किया गया। परिणामस्वरूप कई पट्टियों का विलय कर दिया गया व कई परगनों को समाप्त कर दिया गया। कुमाऊँ क्षेत्र में परगनों की संख्या 19 से घटाकर 14 कर दी गयी। गढ़वाल क्षेत्र में यह संख्या 17 से घटाकर 12 कर दी गयी। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि उचित भूमि व्यवस्था के लिये अंग्रेजी सरकार ने 1815 से 1928 के बीच गढ़वाल में 12 और कुमाऊँ में 10 बन्दोबस्त किये। टिहरी राज्य में इस प्रकार के 5 बन्दोबस्त किये गये। स्वतंत्रता के बाद उत्तराखण्ड क्षेत्र में केवल एक बन्दोबस्त हुआ है।

राजस्व प्रबन्ध के लिये अल्मोड़ा जिले के 12 परगनों को 4 तहसीलों में संगठित किया गया था। रानीखेत अथवा पल्ली तहसील, अल्मोड़ा, चम्पावत और पिथौरागढ़। जौहार, दर्मा, सीरा, सोर, अस्कोट के परगने तथा अठिगाँव बल्ला और अठिगाँव पल्ला परगनों के कुछ गाँवों को मिला कर 1960 में पिथौरागढ़ जिला संगठित किया गया। इस नवनिर्मित जिले में 5 तहसीलों की व्यवस्था की गयी। मुनस्यारी, धारचूला, डीडीहाट, पिथौरागढ़ एवं चम्पावत।

नैनीताल जिले के राजस्व प्रबन्ध के लिये 4 परगनों को 6 तहसीलों में संगठित किया गया। नैनीताल, हल्द्वानी, किच्छा, बाजपुर, खटीमा और काशीपुर। 1997 में तराई और भाबर के परगनों और काशीपुर पट्टी को मिला कर उधम सिंह नगर जिले का गठन किया गया। इस नवगठित जिले की 5 तहसीलों में काशीपुर, बाजपुर, रूद्रपुर, किच्छा और खटीमा शामिल हैं।

1823 में अंग्रेजों ने अपने अधीनस्थ गढ़वाल को 11 परगनों में संगठित किया व भाबर को इसका 12वाँ परगना बनाया। गढ़वाल जिले में राजस्व व्यवस्था के लिये 12 परगनों को चार तहसीलों में विभाजित किया गया था। पौढ़ी, लैन्सडाउन, थैलीसैण और कोटद्वारा। टिहरी रियासत 1949 में भारतीय संघ में शामिल हुयी। उसमें 11 परगने शामिल थे। राजस्व व्यवस्था के लिये इन परगनों को टेहरी, प्रतापनगर, देवप्रयाग तहसीलों में बाँटा गया। 1960 में रवाई और उत्तरकाशी परगनों को मिला कर उत्तरकाशी जिले का निर्माण किया गया।

11.3 स्वतंत्रता के बाद उत्तराखण्ड का प्रशासनिक ढाँचा

आजादी के समय कुमाऊँ मण्डल में अल्मोड़ा, नैनीताल और गढ़वाल जिले थे। 1949 में टेहरी रियासत को एक जिला बना कर कुमाऊँ मण्डल में शामिल कर दिया गया। यह व्यवस्था 1960 तक चली। उस दौरान चीन के साथ बिगड़ते सम्बन्धों के कारण सुरक्षा के दृष्टि से टेहरी, गढ़वाल और अल्मोड़ा के सीमान्त प्रदेशों को क्रमशः उत्तरकाशी, चमोली और पिथौरागढ़ जिलों में संगठित किया गया। इस प्रकार कुमाऊँ मण्डल में 7 जिले हो गये। जिलों की बढ़ती संख्या को देख कर 1970 में गढ़वाल मण्डल की स्थापना की गयी। जिसमें उत्तरकाशी, चमोली, गढ़वाल और टेहरी जिले शामिल किये गये। 1975 में देहरादून जिले को भी गढ़वाल मण्डल में मिला दिया गया। 1997 में गढ़वाल, चमोली और टेहरी जिलों के कुछ भागों को मिला कर रूद्रप्रयाग जिले का गठन हुआ। इसे भी गढ़वाल मण्डल में शामिल किया गया। 1970 में गढ़वाल मण्डल बन जाने के बाद कुमाऊँ मण्डल में अल्मोड़ा, नैनीताल और पिथौरागढ़ जिले रह गये। 1996 में नैनीताल जिले का तराई प्रदेश जिला उधम सिंह नगर नाम से गठित कर दिया गया। कुछ समय बाद बागेश्वर व चम्पावत क्षेत्र भी जिले बना दिये गये। ये तीनों जिले भी कुमाऊँ मण्डल में शामिल कर दिये गये।

उत्तराखण्ड के जनपदों, इनकी तहसीलों और क्षेत्रों को हम निम्न सूची के माध्यम से देख सकते हैं-

जनपद	तहसील/उपतहसील	विकासखण्ड
1. देहरादून	1 देहरादून	1 रायपुर
	2 ऋषिकेश	1 डोईवाला
	3 विकासनगर	1 सहसपुर 2- विकासनगर
	4 चकराता	1 चकराता 2- कालसी
1 हरिद्वार	1 हरिद्वार	1 बहादुराबाद
	2 लक्सर	1 खानपुर 2- लक्सर
	3 रूड़की	1 रूड़की 2- भगवानपुर 3-नारसन
3 टिहरी	1 टिहरी	1 चम्बा 2- जौनपुर 3.थौलधार
	2 प्रतापनगर	1 प्रतापनगर 2- जखनीधार
	3 घनश्याली	1 भिलंगना
	4 देवप्रयाग	1 कीर्तिनगर 2- देवप्रयाग (हिदोलाखाल)
	5 नरेन्द्रनगर	1 नरेन्द्रनगर (फकोट)
4 रूद्रप्रयाग	1 रूद्रप्रयाग	1 अगस्तमुनि
	2 ऊखीमठ	1 ऊखीमठ
	3 उपतहसील जखोली	1 जखोली
5 चमोली	1 जोशीमठ	1 जोशीमठ
	2 चमोली	1 दशोली 2- घाट
	3 पोखरी	1 पोखरी
	4 कर्णप्रयाग	1 कर्णप्रयाग
	5 गैरसैण	1 गैरसैण
	6 थराली	1 देवाल 2- थराली 3- नारायणबेगढ़
6 उत्तरकाशी	1 डुन्डा	1चिन्यालीसौरा 2. डुन्डा
	2. भटवाड़ी	1. भटवाड़ी

	3. राजगढ़ी या बरकोट	1. नौगाँव
	4. पुरोला	1. पुरोला 2. मोरी
7. पौड़ी	1. पौड़ी	1. पौड़ी 2. कोट 3. कजलीखाल 4. पाबा
	2. श्रीनगर	1. खिरसू
	3. कोटद्वार	1. दुगड्डा 2. यमकेश्वर
	4. लैन्सडाउन	1. जहरीखाल 2. पोखड़ा 3. पणखेत (एकेश्वर) 4. रिकणीखाल 5. द्वारीखाल
	5. दमवाकोट	1. नैनीडॉडा
	6. थैलीसैण	1. थैलीसैण 2. बीरोंखाल
8. अल्मोड़ा	1. अल्मोड़ा	1. ताकुला 2. हवालबाग 3. लमगड़ा 4. धोलादेवी 5. भैसियाछाना
	2. रानीखेत	1. द्वाराहाट 2. चौखुटिया 3. ताड़ीखेत
	3. भिकियासैण	1. भिकियासैण 2. स्याल्दे 3. सल्ट
9. बागेश्वर	1. बागेश्वर	1. बागेश्वर 2. गरूड़
	2. कपकोट	1. कपकोट
10. नैनीताल	1. हल्द्वानी	1. हल्द्वानी 2. रामनगर
	2. नैनीताल	1. कोटाबाग 2. रामगढ़ 3. भीमताल
	3. कोश्याकुटोली	1. बेतालघाट
	4. धारी	1. धारी 2. ओखलकाण्डा
11. चम्पावत	1. चम्पावत	1. बाराकोट 2. पाटी 3. चम्पावत 4. लोहाघाट
12. पिथौरागढ़	1. पिथौरागढ़	1. पिथौरागढ़ 2. मुनाकोट
	2. डीडीहाट	1. कनालीछीना 2. डीडीहाट 3. बेरीनाग
	3. गंगोलीहाट	1. गंगोलीहाट
	4. धारचूला	1. धारचूला
	5. मुन्स्यारी	1. मुन्स्यारी
13. उधमसिंह नगर	1. काशीपुर	1. जसपुर
	उपतहसील बाजपुर	1. बाजपुर
	उपतहसील गदरपुर	1. गदरपुर

	2. किच्छा	1. रूद्रपुर
	3. सितारगंज	1. सितारगंज
	4. खटीमा	1. खटीमा

11.4 उत्तराखण्ड राज्य गठन के बाद प्रशासनिक संरचना

9 नवम्बर, 2000 को उत्तर प्रदेश पुनर्गठन विधेयक 2000⁴ के अन्तर्गत उत्तरांचल (वर्तमान में उत्तराखण्ड) राज्य को देश का 27वाँ राज्य बनाया गया। 13 पर्वतीय जिलों को इस राज्य में स्थान दिया गया। राज्य के प्रथम मुख्यमंत्री नित्यानन्द स्वामी बनाये गए तथा प्रथम राज्यपाल श्री सुरजीत सिंह बरनाला थे।

संवैधानिक प्रावधान

संविधान के अनुच्छेद 3 के अनुसार संसद को यह अधिकार प्राप्त है कि यह राज्यों, जिसमें संघ राज्य क्षेत्र भी सम्मिलित है, के क्षेत्रों को मिलाकर नए राज्यों का निर्माण कर सकती है। संसद सामान्य बहुमत अथवा सामान्य संवैधानिक प्रक्रिया द्वारा नए राज्य का निर्माण, सीमा परिवर्तन या नाम बदल सकती है, लेकिन इससे पूर्व नए राज्य के निर्माण से सम्बन्धित विधेयक राष्ट्रपति द्वारा अनुमति प्राप्त होना चाहिए। राष्ट्रपति सम्बन्धित राज्यों को विधेयक विचारार्थ भिजवाता है। राज्य का विधानमण्डल विधेयक पर विचार-विमर्श करके अपने सुझावों सहित विधेयक को निर्धारित अवधि में वापस कर देता है। सुझावों को मानना संसद के लिए आवश्यक नहीं है। राष्ट्रपति द्वारा विचार-विमर्श की अवधि को बढ़ाया जा सकता है। लेकिन यदि राज्य इस विधेयक को निर्धारित अवधि में प्रेषित नहीं करता है, तो राष्ट्रपति विधेयक को संसद में ऐसे ही प्रस्तुत करवा सकता है। जम्मू-कश्मीर राज्य में इस आशय का विधेयक पारित होना अनिवार्य है।

11.4.1 विशेष राज्य की श्रेणी

केन्द्र सरकार द्वारा उत्तराखण्ड को 01 अप्रैल, 2001 से विशेष राज्य का दर्जा प्रदान करने का निर्णय लिया गया। विशेष राज्य का दर्जा पाने वाले सभी 11 राज्य पर्वतीय है।

विशेष श्रेणी का दर्जा प्राप्त राज्यों को केन्द्रीय सहायता एक विशेष रियायती पैमाने पर मिलती है। अब उत्तराखण्ड को मिलने वाली केन्द्रीय सहायता में 90% हिस्सा अनुदान का और 10% ऋणों का है। जबकि अन्य राज्यों को मिलने वाली सहायता में अनुदान का भाग 70% ऋण का हिस्सा 30% होता है। विशेष श्रेणी प्राप्त राज्यों को ये सुविधाएँ स्थायी रूप में जारी रहेंगी।

11.4.2 राज्य में आरक्षण की स्थिति

उत्तराखण्ड सरकार ने राज्याधीन सेवाओं, शिक्षण संस्थाओं, सार्वजनिक उद्यमों, निगमों एवं स्वायत्तशासी संस्थाओं में आरक्षण हेतु शासनादेश जारी किया जिसके तहत-

अनुसूचित जाति	19%
अनुसूचित जनजाति	04%
अन्य पिछड़ा वर्ग	14%

महिलाओं, भूतपूर्व सैनिकों, विकलांग व्यक्तियों तथा स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों के आश्रितों को क्षेत्रीय आरक्षण अनुमन्य होगा।

भूतपूर्व सैनिक	02%
विकलांग	03%

स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों के आश्रित 02%

आरक्षण के सम्बन्ध में स्थायी रूप से नीति का निर्धारण पृथक रूप से किया जाएगा। आरक्षण का लाभ उत्तराखण्ड के मूल निवासियों को ही प्राप्त होगा। मूल निवासी केवल उन्हीं व्यक्तियों को माना जाएगा जो कम-से-कम 15 वर्षों से राज्याधीन क्षेत्र में निवास कर रहे हैं।

विशेष श्रेणी प्राप्त राज्य

क्र०सं० राज्य	श्रेणी प्राप्ति वर्ष
1. असोम	1969
2. नागालैण्ड	1969
3. जम्मू-कश्मीर	1969
4. हिमाचल प्रदेश	1971
5. मणिपुर	1972
6. मेघालय	1972
7. त्रिपुरा	1972
8. सिक्किम	1975
9. मिजोरम	1975
10. अरुणाचल प्रदेश	1975
11. उत्तराखण्ड	2001

11.5 हिमालयी राज्यों की तुलना

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय असोम भारत का केवल एकमात्र हिमालयी राज्य था। देश के शेष हिमालयी क्षेत्र कसी-न किसी राज्य/रियासतों का भाग थे। 26 अक्टूबर, 1947 को जम्मू तथा कश्मीर के भारत में विलय होने के उपरान्त वह भारत का दूसरा हिमालयी राज्य बना था। जब भारत में विकास कार्यक्रम तथा पंचवर्षीय योजनाएँ क्रियान्वित हुईं तो देखा गया कि मैदानी क्षेत्रों की तुलना में पर्वतीय क्षेत्र विकास दौड़ में कहीं अधिक पिछड़ रहे हैं। यह भी अनुभव किया जाने लगा कि मैदानी क्षेत्रों के साथ पर्वतीय क्षेत्रों का विकास भी सम्भव नहीं है तथा व्यावहारिक दृष्टि से पर्वतीय क्षेत्रों का विकास मैदानी क्षेत्रों की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन है, क्योंकि दोनों के विकास की मूल आवश्यकताएँ, प्राथमिकताएँ, आधार तथा मानक न केवल भिन्न हैं बल्कि दोनों के विकास की आपसी समझ तथा अवधारणा भी भिन्न-भिन्न है। पर्वतीय क्षेत्रों के विकास की भिन्न अवधारणा का सबसे प्रमुख कारण उनकी भौगोलिक, आर्थिक एवं सांसाधनिक संरचना का मैदानी भागों से भिन्न होना था। भाषायी एवं सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना इस भिन्न अवधारणा का एक महत्वपूर्ण कारण था जिसके परिणामस्वरूप भारत में दूसरा महत्वपूर्ण कारण था, हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों को विकास के लिए एक भिन्न क्षेत्र अथवा 'विकास की एक भिन्न इकाई' के रूप में स्वीकार किया जाने लगा था। इन्हें भारत की भिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक इकाइयों के रूप में भी चिन्हित किया गया था। इसी क्रम में पर्वतीय (हिमालयी) राज्यों की अवधारणा का जन्म और विकास हुआ। देश के अनेक बुद्धिजीवियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, योजनाकारों और विभिन्न हिमालयी क्षेत्रों के निवासियों ने इस माँग को समय-समय पर आन्दोलनों के माध्यम से उठाया, फलतः हिमालयी राज्यों की अवधारणा ने मूर्त रूप ले लिया और वर्तमान समय के सभी हिमालयी राज्य अस्तित्व में आए। देखा जाए तो भारत के दक्षिण में भी पर्वतीय क्षेत्र हैं, पर वे न तो सांस्कृतिक रूप से भिन्न थे और न ही आर्थिक सांसाधनों की दृष्टि से ही। भारत में पर्वतीय राज्यों की अवधारणा मूलतः हिमालयी राज्यों की ही अवधारणा है। भारत में हिमालयी राज्यों के इतिहास क्रम को हम इस प्रकार समझ सकते हैं-

1. स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय सिर्फ असोम ही देश का एकमात्र हिमालयी राज्य था।
2. 26 अक्टूबर, 1947 को जम्मू तथा कश्मीर का भारत में विलय हुआ और उसके उपरान्त वह भारत का दूसरा हिमालयी राज्य बना।
3. सन 1963 में नागालैण्ड राज्य का गठन किया गया, जो तदुपरान्त भारत का तीसरा हिमालयी राज्य बना।
4. जनवरी, 1971 में हिमालयी प्रदेश को पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान किया गया। इससे पूर्व में सन 1966 में पंजाब के पहाड़ी भागों को भौगोलिक-सांस्कृतिक आधार पर हिमालयी प्रदेश में मिला दिया गया था।
5. सन 1972 में त्रिपुरा तथा मणिपुर भी हिमालयी राज्यों के रूप में अस्तित्व में आए।

6. सन 1972 में मेघालय एक नया पर्वतीय राज्य बनाया गया। इससे पूर्व सन 1970 में असोम के दो जिलों को राजनीतिक, भाषायी एवं समाजिक-सांस्कृतिक आधार पर उपरान्त का दर्जा दिया गया था।

7. सन 1975 में सिक्किम अपनी इच्छा से भारतीय गणराज्य में शामिल हुआ। इस प्रकार एक नया हिमालयी राज्य अस्तित्व में आया।

8. 9 नवम्बर, 2000 में उत्तराखण्ड को भारतीय गणराज्य का 27वाँ तथा 11वाँ हिमालयी राज्य बनाया गया है। हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में 11 राज्य बनाने के उपरान्त भी वर्तमान समय में फिर यह महसूस किया जाने लगा है कि देश के सामान्य भाग विकास और हिमालयी क्षेत्रों के विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं में भी अन्तर है। विकास के सन्दर्भ में सभी हिमालयी राज्यों के अनुरूप भिन्न-भिन्न रहे हैं। हिमालयी राज्यों के पूर्ण विकास पर विमर्श के लिए एक नयी परिषद् के लिए 'हिमालयी विकास प्राधिकरण' की माँग की जाने लगी है।

अभ्यास प्रश्न- अभ्यास प्रश्न-

1. कुमाऊँ जिले को कुमाऊँ और गढ़वाल में कब बाँटा गया?
2. 1838 में कुमाऊँ और गढ़वाल जिले का मुख्यालय कहाँ-कहाँ था?
3. तहसील के प्रधान अधिकारी को क्या कहते थे?
4. तहसील की छोटी प्रशासनिक इकाई को क्या कहा जाता था?
5. थोकदार को अन्य किन नामों से जाना जाता था?
6. उत्तराखण्ड को विशेष राज्य का दर्जा कब प्राप्त हुआ?
7. केन्द्रीय सहायता में कितना भाग अनुदान का होता है?
8. उत्तराखण्ड राज्य में लोक सभा की कितनी सीटें हैं?
9. हिमालयी राज्यों में उत्तराखण्ड का कौन सा स्थान है?
10. भारतीय गणराज्य में उत्तराखण्ड का कौन सा स्थान है?

11.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से हमने ये जाना कि पर्वतीय जिलों में प्रशासन की एक अनोखी व्यवस्था थी। जो भारत में अन्य कहीं नहीं पायी जाती थी। पटवारी की पुलिस के रूप में कार्य करना यहाँ की सबसे अनूठी प्रणाली है। पटवारी पट्टी का सबसे बड़ा प्रशासनिक अधिकारी के रूप में कार्य करता है। यह प्रणाली अंग्रेजी शासन काल से आज भी जस की तस चली आ रही है। राजस्व कार्यों के अलावा राजस्व पुलिस की यह व्यवस्था केवल उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में पायी जाती है। तहसीलदार, कानूनगो, परगनों के अधिकारी लगान व राजस्व के कार्यों के साथ-साथ न्याय का कार्य भी करते थे। यह परम्परा आज भी चली आ रही है। देश में स्वाधीनता के बाद शासन में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिये त्रिस्तरीय पंचायत प्रणाली का सुभारंभ किया गया है। इसका प्रमुख

उद्देश्य है कि जनता हितकारी विकास कार्यों में स्वयं पहल करे। इस प्रणाली को स्वशासन के नाम से जाना जाता है। स्वशासन की इस प्रणाली ने उत्तराखण्ड राज्य में नये प्रशासकीय व्यवस्था को विस्तार देने का काम किया है।

11.7 शब्दावली

परगना –प्रशासन की छोटी इकाई

होरिजेंटल – क्षेतिज

लगान –एक प्रकार का कर

त्रिस्तरीय – तीन सारीय

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.1838 में 2. अल्मोड़ा व श्रीनगर 3. एस.डी.ओ. 4. परगना 5.सयाना, कुमीन, बुढ़ा 6. 90 प्रतिशत 7. 1अप्रैल 2001 8. पाँच 9. 11वाँ 10 27वाँ

11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- | | |
|-----------------|--|
| 1.जे.एच.बैटन | - आफिसीयल रिपोर्ट आन द प्राविन्स ऑफ कुमाऊँ |
| 2.एम.एस.बर्थवाल | - गढ़वाल में कौन कहाँ |
| 3.एस.पी.डबराल | - उत्तराखण्ड का इतिहास |
| 4.एस.पी.नैथानी | - उत्तराखण्ड संस्कृति, साहित्य और पर्यटन |

11.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- | | |
|----------------------|---|
| 1.उमा प्रसाद थपलियाल | - उत्तरांचल ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक आयाम |
| 2.पी.एस.नयाल | - स्वतंत्रता संग्राम में कुमाऊँ का योगदान |
| 3.बी.डी.पाण्डे | - कुमाऊँ का इतिहास |
| 4.शेखर पाठक | - संपादक, पहाड़ |

11.11निबंधात्मक प्रश्न-

- 1.अंग्रेजी शासन काल में प्रशासनिक ढाँचे का विस्तृत वर्णन कीजिये?
- 2.कमिश्नर के अधिकार क्षेत्र को समझाइये?
- 3.उत्तराखण्ड राज्य में आरक्षण की स्थिति पर अपने विचार दें?
- 4.विशेष राज्य की श्रेणी वाले राज्यों को क्या-क्या लाभ प्राप्त होते हैं?
- 5.हिमालयी राज्यों के इतिहास पर एक निबन्ध लिखिये?

इकाई-12 केन्द्र राज्य सम्बन्ध: विधायी और प्रशासनिक

इकाई की संरचना

- 12.0 प्रस्तावना
- 12.1 उद्देश्य
- 12.2 केन्द्र राज्य सम्बन्धों को लेकर संवैधानिक शक्तियों का विभाजन
- 12.3 विधायी सम्बन्ध
- 12.4 प्रशासनिक संबंध
- 12.5 अवशिष्ट शक्तियाँ
 - 12.5.1 संसद की राज्यों के विषयों के सम्बन्ध में विधि निर्माण की शक्ति
- 12.6 उत्तराखण्ड की विधायी संरचना
 - 12.6.1 राज्य: विधायी संरचना
 - 12.6.2 राज्य कार्यपालिका (साधारण संरचना) राज्यपाल
 - 12.6.3 राज्य मंत्रिपरिषद
 - 12.6.4 राज्य मंत्रिपरिषद का गठन
 - 12.6.5 अन्य मंत्रियों की नियुक्ति
 - 12.6.6 राज्यपाल और मंत्रिपरिषद के मध्य सम्बन्ध
 - 12.6.7 मुख्यमंत्री की नियुक्ति
 - 12.6.8 शासन के विभाग एवं कार्यालय
 - 12.6.9 भारत सरकार द्वारा उत्तराखण्ड के कार्मिकों का विभाजन
- 12.7 सारांश
- 12.8 शब्दावली
- 12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 12.12 निबंधात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने उत्तराखण्ड में प्रशासनिक इकाईयों का विस्तृत अध्ययन किया। इस इकाई से हमने जाना कि उत्तराखण्ड में राजवंशीय काल व अंग्रेजी शासन काल में किस प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था को अपनाया गया था। कमिश्नरी से लेकर पटवारी तक किस प्रकार प्रशासनिक तंत्र कार्य करता था। इस पर विस्तृत चर्चा की गयी। इस इकाई में ये भी जाना गया कि उत्तराखण्ड की वर्तमान प्रशासनिक संरचना क्या है और वह कैसे काम कर रही है तथा इस बात का भी अध्ययन किया गया कि आज भी बहुत सी प्रशासनिक प्रणाली वैसे ही कार्य कर रही है जैसे कि अंग्रेजी या राजवंशीय शासन काल में करती थी। अब हम इकाई- में राज्यों का केन्द्र के साथ सम्बन्धों की चर्चा करने जा रहे हैं।

भारतीय संविधान ने देश में संघीय व्यवस्था की स्थापना की है। परन्तु उसका रूझान एकात्मकता की ओर है। कुछ आलोचक हालांकि यह कहते नहीं चूकते कि केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण जिस आधार पर किया गया है, उससे राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं की भाँति हो गयी है। आलोचक चाहे कुछ भी कहें भारतीय संविधान ने केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण कर दोनों को मजबूती देने का प्रयास किया है।

हमारे संविधान के अनुच्छेद 1 में भारत को "राज्यों का संघ" कहा गया है। भारतीय संविधान ने देश में संघीय व्यवस्था की स्थापना की है परन्तु निश्चय ही उसका रूझान एकात्मकता की ओर है। भारत वास्तव में एक संघ है यद्यपि यहाँ केन्द्र अन्य संघीय देशों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है। वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि हम संघ और राज्यों के आपसी सम्बन्धों की समीक्षा करें। भारत इस समय कठिन दौर से गुजर रहा है। केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के संवैधानिक विभाजन के अतिरिक्त केन्द्र राज्य का एक विशिष्ट लक्षण है -केन्द्र राज्य सम्बन्धों को निर्धारित करने वाला अतिरिक्त संवैधानिक तत्वा इन सभी तत्वों व संविधान द्वारा दिये गये प्रावधानों का हम इस इकाई अध्ययन करेंगे तथा केन्द्र और राज्य के बीच विधायी व प्रशासनिक सम्बन्धों को भी जानने का प्रयास करेंगे।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान पायेंगे कि-

केन्द्र और राज्य कैसे काम करते हैं।

- 1- केन्द्र और राज्य सम्बन्धों की संवैधानिक व्यवस्था क्या है।
- 2- केन्द्र राज्यों के बीच शक्तियों का आवंटन किस प्रकार होता है।

3. केन्द्र राज्यों के बीच विधायी सम्बन्ध।
4. केन्द्र और राज्यों के बीच प्रशासनिक सम्बन्ध
5. केन्द्र और राज्यों के सम्बन्ध उत्तराखण्ड के परिपेक्ष में क्या रहे हैं।
6. राज्य गठन से पूर्व केन्द्र की भूमिका व राज्य गठन के बाद केन्द्र की भूमिका क्या रही है।

12.2 केन्द्र राज्य सम्बन्धों को लेकर संवैधानिक शक्तियों का विभाजन

हम उपर चर्चा कर चुके हैं कि संविधान के अनुच्छेद-1 में कहा गया है कि “इण्डिया अर्थात् भारत राज्यों का संघ होगा।” संघ तथा घटक इकाईयों के बीच सम्बन्धों की चर्चा संविधान के भाग-11, 12, 13 और 18 में पर्याप्त रूप से की गयी है। भाग-11 दो अध्यायों में विभाजित है। अध्याय-1 में विधायी शक्तियों और सम्बन्धों की (अनु. 245 से 363) चर्चा की गयी है। अध्याय-2 प्रशासनिक सम्बन्धों से सम्बंधित है। संविधान के अनु. 256 से 263 तक इन सम्बन्धों के बारे में चर्चा की गयी है। भाग-12 में चार अध्याय हैं, जिनमें वित्तीय मामलों का वर्णन किया गया है। संविधान का भाग 18 संकटकालीन उपबन्धों से सम्बन्धित है। इन सम्बन्धों की चर्चा संविधान के अनु. 352 से 360 में की गयी है। केन्द्र व राज्यों के सम्बन्धों को जानने के लिये दोनों के बीच विधायी व प्रशासनिक सम्बन्धों को जानना अति-आवश्यक है।

12.3 विधायी सम्बन्ध

अनुच्छेद 245-255 में संघ तथा राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण का घोषणा पत्र है। संसद भारत के समूचे राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधियां बना सकती है। केन्द्र तथा राज्यों के बीच विधायी सम्बन्धों का संचालन तीन सूचियों संघ, राज्य व समवर्ती सूची के आधार पर होता है। इन सूचियों को संविधान की सातवीं अनुसूची में रखा गया है। किसी राज्य का विधान मंडल समूचे राज्य या उसके किसी भाग के लिए विधियां बना सकता है। राज्य की कोई विधि शून्य हो जाएगी, यदि उसका राज्य क्षेत्रातीत प्रवर्तन होता है। (कोचीन बनाम मद्रास राज्य, ए आई आर 1960 एस सी 1080) और जब तक कि उद्देश्य तथा राज्य के बीच पर्याप्त संबंध नहीं दर्शाया जा सकता (बंबई राज्य बनाम आर.एम.डी.सी., ए आई बार 1957 एस सी 699, टाटा आइरन एण्ड स्टील कंपनी बनाम बिहार राज्य, ए आई आर 1958 एस सी 452)। लेकिन संसद द्वारा बनाए गए कानूनों के बारे में राज्य क्षेत्रातीत प्रवर्तन के आधार पर आपत्ति नहीं की जा सकती (अनुच्छेद 245)। संविधान की सातवीं अनुसूची में तीन सूचियां हैं अर्थात् संघ सूची, समवर्ती सूची और राज्य सूची जिनमें क्रमशः 97, 52 और 66 मदें हैं। अनुच्छेद 246 में व्यवस्था है कि संघ सूची की मदों के बारे में संसद को विधियां बनाने की अनन्य अधिकारिता होगी, राज्य सूची की मदों में राज्य के विधान मण्डल को विधियां बनाने की अनन्य शक्तियां प्राप्त होगी और समवर्ती सूची में शामिल मदों में केन्द्र एवं राज्य दोनों को ही विधियां बनाने का अधिकार होगा। यदि समवर्ती सूची के मदों के बारे में संघ

के संसद एवं राज्य के विधान मण्डलों द्वारा बनाई गई विधियों के बीच कोई असंगति हो तो उन परिस्थितियों में संघ के संसद द्वारा बनाई गई विधियां प्रभावी रहेगी और राज्य की विधि उस विसंगति की मात्रा तक शून्य रहेगी सिवाय उस स्थिति के जहाँ राज्य की विधि राष्ट्रपति के पर विचार हेतु आरक्षित रखी गई हो और उस पर उसकी सहमति मिल गई हो (अनुच्छेद 245)। साथ ही संसद को यह शक्ति दी गई है कि वह किसी अन्तर्राष्ट्रीय संधि, करार, अभिसमय अथवा विनिश्चय को कार्यरूप देने के लिए समूचे देश या उसके किसी भाग के लिए कोई विधि बना सके।

संघ सूची में ऐसे विषय शामिल हैं जिनका संबंध संघ के सामान्य हित से है और जिनके बारे में समूचे संघ के भीतर विधान की एकरूपता अनिवार्य है। राज्य सूची में ऐसे विषय शामिल किये गये हैं, जो हित तथा व्यवहार की विविधता की छूट देते हैं। समवर्ती सूची में ऐसे विषय शामिल किये गये हैं जिनके बारे में समूचे संघ के भीतर विधान की एकरूपता वांछनीय तो है पर अनिवार्य नहीं है। भले ही राज्य सूची में शामिल विषयों के बारे में राज्यों को अनन्य शक्तियां प्रदान की गई है पर इस सामान्य नियम के दो अपवाद हैं। अनुच्छेद 249 के अधीन यदि राज्य सभा के उपस्थित तथा मत देने वाले दो तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प के जरिए यह घोषणा कर दी जाए कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या समीचीन है कि राज्य सूची में शामिल किसी विषय के बारे में संसद विधियां बनाए तो समूचे भारत या उसके किसी भाग के लिए उस विषय के बारे में संसद विधियां बनाने के वास्ते सक्षम होगी। ऐसा संकल्प एक वर्ष तक वैध रहता है। उसकी अवधि को और एक वर्ष के लिए बाद के संकल्प द्वारा बढ़ाया जा सकता है। ऐसे संकल्प के अधीन बनाई गई विधि संकल्प की अवधि बीत जाने के बाद 6 मास की समाप्ति पर प्रभावी नहीं रहेगी। पुनः अनुच्छेद 250 के अधीन, जब आपात की घोषणा लागू हो तो संसद को अधिकार दिया गया है कि वह समूचे भारत या उसके किसी भाग के वास्ते राज्य सूची में शामिल किसी मद के लिए विधियां बना सकती है। ऐसी विधियों की वैधता की अधिकतम अवधि आपात की समाप्ति के बाद छह मास की होगी।

यदि अनुच्छेद 249 तथा 250 के अधीन संसद द्वारा बनाई गई विधियां तथा राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा बनाई गई विधियों के बीच कोई असंगति हो तो संसद द्वारा बनाई गई विधि अभिभावी और राज्य की विधि विरोध की मात्रा तक शून्य होगी और संसद द्वारा बनाई गई विधि प्रभावी रहेगी। (अनुच्छेद 251)

अनुच्छेद 252 के अनुसार दो या दो अधिक राज्यों के विधानमंडल एक संकल्प पारित करके संसद से अनुरोध कर सकते हैं कि वह राज्य सूची के किसी विषय के बारे में विधियां बनाए। ऐसी विधियों का विस्तार अन्य राज्यों पर किया जा सकता है बशर्ते कि संबद्ध राज्यों के विधानमंडल उस आशय के संकल्प पारित करें।

12.4 प्रशासनिक संबंध

संविधान के अनुच्छेद 73 के अनुसार केन्द्र की प्रशासनिक शक्ति उन विषयों तक सीमित है जिन पर संसद को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है। इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 162 के अनुसार राज्यों की शक्तियाँ उन विषयों तक सीमित हैं जिन पर राज्य विधानमण्डलों को कानून बनाने का अधिकार है। अनुच्छेद 256 से अनुच्छेद 265 तक संघ तथा राज्यों के बीच प्रशासनिक संबंधों के विनियमन की व्यवस्था करते हैं। संघात्मक प्रणालियों में सामान्यतया ऐसा होता है कि संघ तथा राज्यों के आपसी प्रशासनिक संबंध झमेलों से ग्रस्त रहते हैं। भारत के संविधान का उद्देश्य है कि दोनो स्तरों के बीच संबंधों का निर्वाह सहज रूप से होता रहे। वह उपबंध करता है कि राज्य सरकार की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार हो कि संसद द्वारा बनाई गई विधियों का पालन सुनिश्चित हो सके। संघ की कार्यपालिका को राज्यों को ऐसे निर्देश देने का भी अधिकार प्राप्त है जो भारत सरकार को इस प्रयोजन के लिए आवश्यक प्रतीत हों।

इसी प्रकार अनुच्छेद 257 का उपबंध है कि हर राज्य की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार किया जाए कि वह संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में बाधक न हो। संघ इस संबंध में तथा रेलों के संरक्षण एवं राष्ट्रीय या सैनिक महत्व के संचार-साधनों को बनाए रखने के बारे में आवश्यक निर्देश जारी कर सकता है। केन्द्रीय निर्देशों के पालन में जो अतिरिक्त व्यय राज्य करेगा, केन्द्र उसकी भरपाई राज्य को करेगा। अनुच्छेद 261 का उपबंध निर्देश देता है कि भारतीय राज्य क्षेत्र के सभी भागों में संघ तथा राज्यों के सार्वजनिक कार्यों, अभिलेखों तथा न्यायिक कार्यवाहियों को पूरा विश्वास एवं पूरी मान्यता दी जाएगी। यह बात संघ एवं राज्यों के आपसी संबंधों के सुचारू निर्वाह में अति सहायक होती है। अंतर्राज्यिक नदियों पर संसदीय नियंत्रण तथा अंतर्राज्यिक जल-विवादों के न्याय-निर्णयन संबंधी उपबंधों के कारण संघ तथा राज्यों के बीच तथा स्वयं राज्यों के बीच संघर्ष की ढेर सारी संभावनाएं समाप्त हो गई हैं (अनुच्छेद 262)। वास्तविकता तो यह है कि संविधान-निर्माता किसी बात की संभावना नहीं छोड़ना चाहते थे। अतः उन्होंने अंतर्राज्यिक परिषदों की व्यवस्था की। अनुच्छेद 263 राष्ट्रपति को अंतर्राज्यिक परिषद की स्थापना का अधिकार प्रदान करता है। इन परिषदों को उद्देश्य है कि वे राज्यों के आपसी विवादों तथा राज्यों के या संघ एवं राज्यों के सामान्य हित के आपसी मामलों के बारे में जांच करें और उन्हें सलाह दे और नीति एवं कार्यवाही के बेहतर समन्वय के बारे में सिफारिशें करें।

अनुच्छेद 258 के अधीन राष्ट्रपति किसी राज्य सरकार की सहमति से उस सरकार को या उसके अधिकारियों को ऐसे किसी विषय से संबंधित कृत्य सौंप सकेगा जिन पर संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है। इसी प्रकार अनुच्छेद 258 के अधीन किसी राज्य का राज्यपाल भारत सरकार

की सहमति से उस सरकार को या उसके अधिकारियों को ऐसे किसी विषय से संबंधित कृत्य सौंप सकेगा जिन पर उस राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है।

प्रशासनिक सम्बन्धों के क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार राज्यों पर आश्रित रहती है। प्रत्येक संघ में दो प्रकार की सेवाओं का प्रावधान होता है। प्रथम संघीय या केन्द्रीय सेवाएं व द्वितीय राज्य की सेवाएं। ये दोनों सेवाएं अपने-अपने क्षेत्र में काम करती हैं। भारत में संघीय सेवाएं न होने के कारण उसे अपनी विधियों को लागू करने के लिये राज्य की सेवाओं पर निर्भर रहना पड़ता है। भारत में केवल अखिल भारतीय सेवाएं हैं।

12.5 अवशिष्ट शक्तियाँ

अवशिष्ट शक्तियाँ वे शक्तियाँ होती हैं, जिनका उल्लेख किसी भी सूची में नहीं होता। यह तथ्य है कि संविधान निर्माता चाहे कितने ही सावधान और सतर्क क्यों न रहें वे ऐसी व्यापक सूची नहीं बना सकते जिसमें समस्त शासकीय शक्तियाँ का स्पष्टतः उल्लेख कर दिया गया हो। वर्तमानकाल की परिवर्तनशील परिस्थितियों में नित्य नये विषय उत्पन्न होते रहते हैं। आज से दो पीढ़ी पूर्व कोई भी यह नहीं समझता था कि वायुपथ पर भी शासकीय नियंत्रण की आवश्यकता होगी। परन्तु विभागों के विकास और वायु यातायात के प्रसार के कारण वायुपथ पर सरकारी नियम होना आवश्यक ही नहीं वरन् परम आवश्यक हो गया है। अतः प्रत्येक संघीय संविधान की अवशिष्ट शक्तियों को संघ के किसी पक्ष को सौंप देना है। वर्तमान संघ राज्यों में से संयुक्त राज्य अमेरिका, स्विट्जरलैण्ड और आस्ट्रेलिया के संविधान ऐसे हैं जो इकाईयों को अवशिष्ट शक्तियाँ प्रदान करते हैं, परन्तु कनाडा के संविधान में यह शक्ति केन्द्र सरकार को प्रदान की गयी है। यही शक्ति भारतीय संविधान द्वारा भी केन्द्र को सौंपी गयी है। संघ सूची में से किसी भी विषय पर संसद अतिरिक्त न्यायालय स्थापित कर सकती है। साथ ही संसद को यह अधिकार भी है कि किसी देश अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संस्था से की गई संधि, करार अथवा उपसंधि के क्रियान्वयन के लिये आवश्यक कानून बनाये। इन सब का प्रभाव है कि संघीय शासन, राज्यों की तुलना में सबल रहेगी।

12.5.1 संसद की राज्यों के विषयों के सम्बन्ध में विधि निर्माण की शक्ति

राज्य सूची में दिये गये विषयों पर राज्य विधान-मण्डलों को विधि निर्माण करने को अनन्य अधिकार प्राप्त है। किन्तु इके कुछ अपवाद भी हैं। कुछ विशिष्ट उद्देश्यों के लिये तथा कुछ विशेष अवस्थाओं में संघीय संसद उन विषयों पर भी विधि-निर्माण कर सकती है जो केवल राज्यों के क्षेत्राधिकार में हैं। इन विधि-निर्माण के क्षेत्रों को हम निम्न रूप से देख सकते हैं-

प्रथम- यदि राज्य सभा उपस्थित व मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत द्वारा यह प्रस्ताव पारित कर देती है कि वैसा करना राष्ट्रीय हित की दृष्टि से आवश्यक है तो संसद राज्य सूची

में वर्णित किसी भी विषय पर विधि निर्माण कर सकती है। यह प्रस्ताव एक बार पारित हो जाने के उपरान्त एक वर्ष तक प्रभावी रहेगा परन्तु राज्य सभा जितनी बार चाहे उसे पुनः पारित करके उसकी अवधि बढ़ाती रह सकती है। जब तक यह प्रस्ताव प्रभावी रहेगा तब तक संसद उसमें वर्णित विषयों पर विधि निर्माण कर सकती है।

द्वितीय- अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा की गयी आपातकालीन घोषणाओं के दौरान, राज्य सूची के किसी भी विषय पर समस्त भारत व उसके किसी भी भाग के लिये, संसद विधि निर्माण कर सकती है। आपातकालीन घोषणा की समाप्ति के छः माह बाद ऐसी विधियाँ, उस मात्रा में जिसमें वे संसद के अधिकार क्षेत्र से बाहर हों प्रभावहीन हो जायेंगी।

तृतीय- यदि किसी भी राज्य में संवैधानिक व्यवस्था विफल हो जाती है तो राष्ट्रपति संवैधानिक विफलता से उत्पन्न आपात की घोषणा करके सम्बन्धित राज्य के लिये विधियाँ निर्मित करने की शक्ति संसद को दे सकता है। ऐसे सम्बन्धित राज्य के लिये संसद राज्य सूची में वर्णित विषयों पर विधियाँ बना सकती है।

चतुर्थ- यदि दो या दो अधिक राज्यों के विधान मण्डल प्रस्ताव पारित करके संसद से अनुरोध करे वह उनके लिये किसी राज्य सूची के विषय पर संयुक्त विधि बना दे तो वह ऐसा कर सकती है। बाद में इस प्रकार की विधि को अन्य राज्य भी अपने यहाँ के विधान मण्डलों द्वारा इस आशय का प्रस्ताव पारित करके स्वीकार कर सकते हैं।

पंचम- संसद को किसी संधि अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संधि को कार्यान्वित कराने के लिये ऐसी विधियाँ निर्मित करने की शक्ति है जो आवश्यक हो, भले ही उन विधियों का सम्बन्ध राज्य सूची के विषयों से ही संबन्धित क्यों न हो।

12.6 उत्तराखण्ड की विधायी संरचना

फरवरी, 2002 में उत्तराखण्ड विधानसभा के लिए पहली बार चुनाव सम्पन्न हुए। 927 व्यक्तियों ने चुनाव में भाग लिया जिसमें 58 महिला उम्मीदवार थीं। मात्र 4 महिलाएँ ही चुनाव जीत सकीं जो कुल विधानसभा सदस्यों की संख्या का 3.67% है। कुल 54.34% मतदान हुआ। 70 सदस्यों की विधानसभा में 3 क्षेत्र अनुसूचित जनजाति व 12 क्षेत्र अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित थे।

जनपदवार राज्य के विधानसभा क्षेत्र

सारणी-1

क्र०सं०	जनपद	क्षेत्र
1	उत्तरकाशी	3
2	टिहरी	6
3	देहरादून	9
4	हरिद्वार	9

5	पौड़ी गढ़वाल	8
6	रूद्रप्रयाग	2
7	चमोली	4
8	बागेश्वर	3
9	अल्मोड़ा	7
10	नैनीताल	5
11	ऊधमसिंह नगर	7
12	चम्पावत	2
13	पिथौरागढ़	5

प्रथम निर्वाचित विधानसभा में कांग्रेस ने 36 क्षेत्र जीतकर बहुमत प्राप्त कर लिया। तीन बार उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री रहे नारायण दत्त तिवारी को राज्य के राज्यपाल सुरजीत सिंह बरनाला ने मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलाई। नित्यानन्द स्वामी तथा भगत सिंह कोश्यारी के पश्चात श्री तिवारी राज्य के तीसरे मुख्यमंत्री बने। श्री तिवारी राज्य के प्रथम निर्वाचित मुख्यमंत्री थे। श्री तिवारी ऐसे प्रथम व्यक्ति हैं, जिन्हें दो राज्यों का मुख्यमंत्री बनने का श्रेय प्राप्त है।

1. श्री यशपाल आर्या को विधानसभा का अध्यक्ष चुना गया।
2. श्री भगत सिंह कोश्यारी को विधानमण्डल दल का नेता चुना गया जो विधानसभा में विपक्ष के नेता चुने गए थे।
3. श्री निजामुद्दीन बहुजन समाज पार्टी तथा श्री काशी सिंह उत्तराखण्ड क्रान्ति दल के नेता चुने गए थे।
4. राज्य के प्रथम चुनावों में प्रमुख राष्ट्रीय दलों तथा सभी क्षेत्रीय दलों ने विधानसभा के लिए अपने-अपने प्रत्याशियों को उम्मीदवार बनाया। वर्तमान परिसीमन के आधार पर जिलेवार विधान सभा क्षेत्रों की स्थिति इस प्रकार हो गयी है।

क्र०सं०	जनपद	क्षेत्र
1	उत्तरकाशी	3
2	टिहरी	6
3	देहरादून	9
4	हरिद्वार	9
5	पौड़ी गढ़वाल	8
6	रूद्रप्रयाग	2
7	चमोली	4

8	बागेश्वर	2
9	अल्मोड़ा	5
10	नैनीताल	5
11	ऊधमसिंह नगर	9
12	चम्पावत	3
13	पिथौरागढ़	5

अनुसूचित जनजातियों हेतु आरक्षित विधानसभा क्षेत्र (03)

देहरादून - चकराता
 ऊधमसिंह नगर - खटीमा
 पिथौरागढ़ - धारचूला

12.6.1 राज्य: विधायी संरचना

राज्य में कुल लोकसभा क्षेत्रों की संख्या 5

राज्य के लोकसभा निर्वाचन क्षेत्र-

गढ़वाल, अल्मोड़ा, नैनीताल, टिहरी व हरिद्वार (सुरक्षित)

राज्य में कुल राज्यसभा क्षेत्रों की संख्या 3

राज्य में कुल विधानसभा क्षेत्रों की संख्या 70

(1-विधायक राज्यपाल द्वारा एंग्लो-इण्डियन समुदाय से मनोनीत, कुल 71 विधायक)

(आर0वी0 गार्डनर-एंग्लो इण्डियन, राज्यपाल द्वारा नामित)

विधानमण्डल एक सदनात्मक (विधानसभा)

अनुसूचित जाति 12 क्षेत्र आरक्षित

अनुसूचित जनजाति 3 क्षेत्र आरक्षित

12.6.2 राज्य कार्यपालिका (साधारण संरचना): राज्यपाल

भारत के संविधान के अनुच्छेद 1 में भारत को राज्यों का संघ कहा गया है। केन्द्र में जिस प्रकार राष्ट्रपति, कार्यपालिका का प्रमुख (अध्यक्ष) होता है उसी प्रकार राज्यों में राज्यपाल, राज्य की कार्यपालिका का अध्यक्ष होता है। भारत में केवल जम्मू-कश्मीर को छोड़कर शेष सभी राज्यों में लगभग वैसी ही शासन व्यवस्था अपनायी गई है, जैसी केन्द्र में अर्थात् संसदीय शासन व्यवस्था। संसदीय शासन में कार्यपालिका का अध्यक्ष वास्तविक शक्तियों का उपयोग नहीं करता, बल्कि वास्तविक अधिकार मंत्रिपरिषद के हाथों में होते हैं। राज्य की कार्यपालिका में राज्यपाल और एक मंत्रिपरिषद होती है। आमतौर पर राज्यपाल अपनी शक्तियों का उपयोग मुख्यमंत्री व मन्त्रिमण्डल की सलाह से करेगा, जो कि राज्य विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी है, परन्तु संविधान के अनुसार

राज्यपाल को कुछ विवेकाधिकार प्राप्त है। इन अधिकारों का उपयोग करते समय राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होता है। संसदीय शासन व्यवस्था में राज्यपाल, राज्य की कार्यपालिका का वैधानिक प्रधान होता है, जबकि मंत्रिपरिषद राज्य की कार्यपालिका की वास्तविक प्रधान होती है। संविधान के अनुच्छेद 153 के अनुसार प्रत्येक राज्य के लिए एक राज्यपाल होगा। सन 1956 में किए गए संशोधन के अनुसार एक ही व्यक्ति दो या दो से अधिक राज्यों के लिए राज्यपाल एक ही व्यक्ति दो या दो से अधिक राज्यों के लिए राज्यपाल के रूप में भी नियुक्त किया जा सकता है। सन् 1972 में उत्तर-पूर्व क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम के अनुसार उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के पाँच राज्यों नागालैण्ड, असोम, मणिपुर, त्रिपुरा और मेघालय के लिए एक ही राज्यपाल नियुक्त किया गया। अनुच्छेद 154 के अनुसार राज्य की समस्त कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में उसी प्रकार निहित होगी, जैसी कि संघ में राष्ट्रपति को प्राप्त हैं। राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति के समान किसी निर्वाचक मण्डल द्वारा निर्वाचित नहीं होता, बल्कि अनुच्छेद 155 के तहत राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है।

राज्यपाल की स्थिति- संविधान द्वारा राज्यों में भी संघीय क्षेत्र के समान संसदीय शासन की व्यवस्था की गई है और संसदीय व्यवस्था में शासन की शक्तियाँ ऐसी मंत्रिपरिषद में निहित होती है, जो विधायिका के निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी हो। अतः मंत्रिपरिषद राज्य की वास्तविक प्रधान है और राज्यपाल केवल एक संवैधानिक प्रधान। संविधान के अनुच्छेद 163 (1) के अनुसार जिन बातों में संविधान द्वारा या संविधान के अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कार्यों को स्वविवेक से करे, उन बातों को छोड़कर राज्यपाल को अपने कार्यों का निर्वहन करने में सहायता और मन्त्रणा देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होती है। संविधान, राज्यपाल की स्वविवेकी शक्तियों का विशेष रूप से उल्लेख नहीं करता। केवल असम, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, सिक्किम, मेघालय, त्रिपुरा और नागालैण्ड के राज्यपाल को ही इस प्रकार की स्वविवेक की शक्तियाँ प्राप्त हैं। अतः राज्यपाल राज्य शासन का निर्विवाद वैधानिक अध्यक्ष है।

राज्यपाल की वास्तविक स्थिति- राज्य प्रशासन में राज्यपाल की वही स्थिति है जो संघीय शासन में राष्ट्रपति की होती है अर्थात् राज्यपाल राज्य शासन का संवैधानिक अध्यक्ष तो है किन्तु वास्तविक शक्तियाँ मंत्रिपरिषद में निहित है। राज्यपाल केवल स्वविवेकी शक्तियों को छोड़कर अपनी अन्य सभी शक्तियों का उपयोग मंत्रिपरिषद के परामर्श से करता है। डॉ० भीमराव अम्बेडकर के अनुसार, "उन सिद्धान्तों के अनुसार, जिन पर राज्यों का शासन आधारित है, राज्यपाल को प्रत्येक दशा में मंत्रिपरिषद का परामर्श अवश्य मानना होगा और ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना होगा, जिसके कारण उसे अपने स्वविवेक या व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करना पड़े।"

राज्यपाल की स्वविवेक की शक्तियाँ उसकी वास्तविक स्थिति को बहुत अधिक शक्तिशाली बनाती है। किन्तु, हाल के वर्षों में राज्यपाल का पद काफी विवादास्पद हो गया है।

12.6.3 राज्य मंत्रिपरिषद

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 163 के अनुसार राज्य में राज्यपाल को परामर्श देने के लिए एक मंत्रिपरिषद की व्यवस्था की गई है। राज्यपाल द्वारा स्वविवेकी कार्यों को छोड़कर अन्य सभी शासकीय कार्यों में मंत्रिपरिषद, राज्यपाल को परामर्श देगी। राज्य मंत्रिपरिषद राज्य की वास्तविक कार्यपालिका है, क्योंकि वास्तव में राज्य की सम्पूर्ण कार्यपालिका शक्ति राज्य मंत्रिपरिषद में निहित है। राज्य मंत्रिपरिषद का प्रधान मुख्यमंत्री होता है।

12.6.4 राज्य मंत्रिपरिषद का गठन

अनुच्छेद 163 के अनुसार, राज्यपाल को उसके विवेकाधीन कृत्यों को छोड़कर अन्य कार्यों में सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रधान मुख्यमंत्री होगा। मंत्रिपरिषद का गठन राज्यपाल द्वारा किया जाता है। राज्यपाल मुख्यमंत्री की नियुक्ति करता है तथा मुख्यमंत्री की सलाह पर वह अन्य मंत्रियों को भी नियुक्त करता है। मंत्रिपरिषद में सामान्यतः उन्हीं व्यक्तियों को शामिल किया जा सकता है। जो राज्य विधानसभा या राज्य विधानपरिषद् के सदस्य हों, किन्तु विशेष परिस्थितियों में मंत्रिपरिषद में ऐसे व्यक्तियों को भी शामिल किया जा सकता है, जो इनके सदस्य न हों। किन्तु, इस प्रकार नियुक्त सदस्य को 6 माह के भीतर इनमें से किसी का सदस्य बनना आवश्यक है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उनका मन्त्री पद स्वतः ही समाप्त हो जाता है, किन्तु संविधान में यह व्यवस्था नहीं दी गई है कि ऐसा व्यक्ति त्यागपत्र देकर पुनः मंत्रिपरिषद का सदस्य बन सकता है या नहीं। सरकार इस प्रावधान का लाभ उठाते हुए पुनः उस व्यक्ति को मंत्रिपरिषद में शामिल कर लेती है।

कार्यकाल- मंत्रिपरिषद तब तक कार्यरत रहती है, जब तक मुख्यमंत्री अपने पद बना रहता है। मुख्यमंत्री के त्यागपत्र देने या बर्खास्त होने से मंत्रिपरिषद स्वतः ही विघटित हो जाती है।

राज्यपाल और मंत्रिपरिषद

राज्यपाल नाममात्र का कार्यकारी है और मंत्रिपरिषद वास्तविक कार्यपालिका होती है। संविधान में वर्णित राज्यपाल की सत्ता को स्वीकृत कर लिया जाए तो राज्यपाल राज्य का वास्तविक शासक बन जाता है। मन्त्रिगण राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त ही पदासीन रहेंगे अर्थात् मंत्रिपरिषद तब तक पदासीन रहेगा जब तक उसे विधानसभा का बहुमत या समर्थन प्राप्त है। सामान्य स्थिति में राज्यपाल से मंत्रिपरिषद के परामर्श के आधार पर ही कार्य करने की आशा की जाती है। अनुच्छेद 167 के अनुसार मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य है कि वह राज्य प्रशासन सम्बन्धित मंत्रिपरिषद् के निर्णयों की सूचना राज्यपाल को दे। कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्यपाल मंत्रिपरिषद् की सलाह के बिना भी कार्य कर सकता है। जैसे संवैधानिक तन्त्र की विफलता पर इस परिस्थितियों में राज्यपाल मंत्रिपरिषद् को बर्खास्त कर सकता है।

अन्य मंत्रियों की नियुक्ति

मुख्यमंत्री के परामर्श पर राज्यपाल मंत्रिपरिषद् के अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। संविधान में न तो मंत्रियों की संख्या निश्चित की गई है और न ही श्रेणियाँ। मंत्रिपरिषद् का आकार राज्य की परिस्थिति तथा मुख्यमंत्री की इच्छानुसार बदलता रहता है। किसी राज्य का मुख्यमंत्री चाहे तो उपमुख्यमंत्री पद की व्यवस्था कर सकता है। राज्य स्तर पर भी मंत्रिपरिषद् में चार स्तर के मंत्री होते हैं- कैबिनेट मंत्री, राज्यमंत्री, उपमंत्री तथा संसदीय सचिव। कैबिनेट स्तर तथा राज्य स्तर के मंत्री एक या एक से अधिक विभागों का कार्यभार सम्भालते हैं। उपमंत्री तथा संसदीय सचिव नीचे दर्जे के मंत्री होते हैं। वे कैबिनेट मंत्रियों व राज्यमंत्रियों के सहायक के रूप में कार्य करते हैं। उन्हें मंत्रिपरिषद् की बैठकों में भाग लेने का अधिकार नहीं होता है। मन्त्रिमण्डल की बैठकों में वे तब भी भाग ले सकते हैं, जबकि उनके विभाग से सम्बन्धित मंत्री अनुपस्थित होता है। मुख्यमंत्री ही मंत्रियों में विभागों के बटवारे से सम्बन्धित आदेश जारी करवाता है।

कार्यकाल- सभी मंत्री, राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त अपना पद धारण करेंगे। प्रसादपर्यन्त का तात्पर्य है- राज्यपाल के प्रति मन्त्रि का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व। अर्थात् मुख्यमंत्री के आदेशों का उल्लंघन करने या मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध आचरण करने पर किसी भी मंत्री को राज्यपाल, मुख्यमंत्री की सलाह पर बर्खास्त कर सकेगा। मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होगी और विधानसभा का विश्वास प्राप्त रहने तक ही अपने पद रह सकेगी।

मंत्रिपरिषद् का कोई भी मंत्री, जो निरन्तर छः मास ही अवधि तक राज्य के विधानमण्डल का सदस्य नहीं है अर्थात् यदि कोई मंत्री अपना पद धारण करते समय राज्य विधानमण्डल का सदस्य नहीं है अर्थात् यदि कोई मंत्री अपना पद धारण करने के पश्चात् भी वह छः मास तक राज्य विधानमण्डल का सदस्य नहीं था, तो छः माह की अवधि बीत जाने पर वह मंत्री, मन्त्रिपद पर नहीं रह सकेगा।

12.6.6 राज्यपाल और मंत्रिपरिषद् के मध्य सम्बन्ध

अनुच्छेद 163 (1) के अनुसार यद्यपि राज्यपाल भी मुख्यमंत्री (मंत्रिपरिषद्) की सलाह के अनुसार कार्य करेगा तथापि इस अनुच्छेद में राज्यपाल की कुछ 'विवेकाधीन शक्तियों' का भी उल्लेख है, जिनके पालन में वह मुख्यमंत्री की सलाह लेने को बाध्य नहीं है। अनुच्छेद 163 (2) के अनुसार यदि वह प्रश्न उठता है कि कोई विषय ऐसा है या नहीं, जिसमें राज्यपाल को संविधान के अनुसार अपने विवेक से कार्य करना चाहिए, तो उस स्थिति में राज्यपाल का निर्णय अन्तिम होगा और राज्यपाल द्वारा की गई किसी भी कार्यवाही के सम्बन्ध में किसी भी न्यायालय में इस आधार पर कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता कि राज्यपाल को अपने विवेकानुसार कार्य करना चाहिए था या नहीं। यह उल्लेखनीय है कि राज्यपाल अपनी विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रपति के नियन्त्रण के अधीन रहते हुए करता है।

शपथ- प्रत्येक मंत्री को राज्यपाल के सम्मुख अपना पद ग्रहण करने से पूर्व पद एवं गोपनीयता की शपथ लेनी पड़ती है।

वेतन तथा भत्ते- संविधान के अनुच्छेद 164 के अनुसार मन्त्रियों को जो मासिक वेतन तथा भत्ते मिलते हैं, वह समय-समय पर राज्य विधानमण्डल द्वारा निश्चित किये जाते हैं।

12.6.7 मुख्यमंत्री की नियुक्ति

मंत्रिपरिषद के निर्माण के लिए सबसे महत्वपूर्ण कार्य मुख्यमंत्री की नियुक्ति करना है। अनुच्छेद 164 के अनुसार मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा और अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राज्यपाल, मुख्यमंत्री के परामर्श कर करेगा। मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करता है, परन्तु वास्तव में राज्यपाल बहुमत दल के नेता को ही सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करता है। यदि विधानसभा में किसी भी दल का बहुमत न हो तो मुख्यमंत्री की नियुक्ति में राज्यपाल एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।

अ- मुख्यमंत्री के कार्य एवं शक्तियाँ -

राज्य सरकार का वास्तविक प्रधान मुख्यमंत्री होता है। जिस प्रकार केन्द्र में राष्ट्रपति को संवैधानिक अध्यक्ष बनाया गया है, परन्तु वास्तविक शक्तियाँ प्रधानमंत्री में निहित हैं, उसी प्रकार राज्य में राज्यपाल संवैधानिक प्रमुख हैं, किन्तु वास्तविक प्रधान मुख्यमंत्री होता है। मुख्यमंत्री बहुमत दल का नेता होता है। वह राज्य का नायक और मुख्य प्रवक्ता भी होता है। मुख्यमंत्री के व्यक्तित्व तथा राजनीतिक स्थिति पर ही राज्य का आर्थिक तथा समाजिक विकास निर्भर है।

राज्य का सम्पूर्ण शासन उसी के संकेत के माध्यम से चलाया जाता है। वह राज्य शासन का कप्तान है तथा राज्य मन्त्रिमण्डल में उसकी विशिष्ट स्थिति होती है अर्थात् वह राज्य का वास्तविक शासक होता है।

राज्य के शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए मुख्यमंत्री को अनेक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। जैसे-

1. मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष होने के कारण वह मन्त्रिमण्डल का गठन करता है।
2. मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष होने के कारण मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करता है।
3. राज्यपाल को राज्यशासन या व्यवस्थापन सम्बन्धी निर्णयों से अवगत कराता है।
4. कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान होने के कारण उसे समस्त प्रशासन के निरीक्षण का अधिकार प्राप्त है।
5. विधानसभा में शासकीय नीतियों तथा कार्यों की घोषणा और स्पष्टीकरण करने का उत्तरदायित्व मुख्यमंत्री पर भी होता है।
6. मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के मध्य विभागों का बँटवारा करता है।

7. मन्त्रिमण्डल के पुनर्गठन की शक्ति भी मुख्यमंत्री को प्राप्त है। यदि वह आवश्यक समझे तो मन्त्रिमण्डल का विस्तार या संकुचन कर सकता है।

8. मुख्यमंत्री राज्यपाल का प्रमुख सलाहकार होता है।

9. राज्य के प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए मुख्यमंत्री अनेक महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ राज्यपाल से परामर्श करके करवाता है।

10. मुख्यमंत्री ही राज्य प्रशासन का मुख्य शासक होता है।

ब-महाधिवक्ता

अनुच्छेद 177 के अनुसार प्रत्येक राज्य का एक महाधिवक्ता होगा जो भारत के महान्यायवादी के समान होगा। भारत के महान्यायवादी के कृत्यों के समान वह राज्य में कार्य करेगा। राज्य का राज्यपाल उसे नियुक्त करेगा तथा राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त वह पद पर बना रहेगा। महाधिवक्ता पद के लिए वे योग्यताएं आवश्यक हैं, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए निर्धारित की जाती हैं। इसका पारिश्रमिक राज्यपाल द्वारा निर्धारित होगा। महाधिवक्ता राज्य विधानमण्डल के सदनों की कार्यवाहियों में भाग ले सकता है। अपने विचार प्रकट कर सकता है, किन्तु उसे सदन में मतदान का अधिकार प्राप्त नहीं है।

12.6.8 शासन के विभाग एवं कार्यालय

उत्तराखण्ड सरकार ने राज्य में 38 विभागों को गठित किया है, जिनमें से 15 विभागों के मुख्यालय राजधानी देहरादून में तथा 6 विभागों के मुख्यालय नैनीताल रखे गए हैं। कई प्रमुख शहरों में एक या दो विभागों के मुख्यालय बनाये गये हैं।

1. देहरादून- सम्पत्ति, खाद्य, बॉट-माप, एवं उपभोक्ता संरक्षण, चुनाव कार्यालय पुलिस, सतर्कता, सिंचाई, जल निगम, कोषागार चिकित्सा, मुद्रणालय, नगर एवं ग्राम्य निदेशालय।
2. श्रीनगर- विकास आयुक्त उद्योग एवं हथकरघा खादी वस्त्रोद्योग, चीनी उद्योग, सूचना प्रौद्योगिकी, इलेक्ट्रॉनिक्स एवं खनिज विभाग।
3. नैनीताल- वन संरक्षण, ऊर्जा निगम, विधुत सेफ्टी।
4. हल्द्वानी (नैनीताल)- श्रम, सेवायोजन, समाज कल्याण, परिवहन एवं आवास।
5. पौड़ी- विभागीय विशेषज्ञ संवर्ग।
6. नरेद्र नगर (टिहरी)- होमगार्ड कमाण्डेन्ट।
7. उधमसिंह नगर- महानिरीक्षक कारागार, उप गन्ना आयुक्त।
8. अल्मोड़ा- लोक निर्माण विभाग, निदेशक वैकल्पिक ऊर्जा सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार।
9. रानीखेत- कृषि एवं उद्यान, सैनिक कल्याण।
10. गोपेश्वर- पशुधन एवं मत्स्य विकास।
11. रामनगर - शिक्षा।

12.6.9 भारत सरकार द्वारा उत्तराखण्ड के कार्मिकों का विभाजन

उत्तराखण्ड राज्य गठन के बाद कार्मिकों का विभाजन सबसे पेचीदा मुद्दा रहा है। भारत सरकार द्वारा किये गये अंतिम आबंटन के बाद भी कई कर्मचारी इच्छा के विपरीत उत्तर-प्रदेश से उत्तराखण्ड आने को तैयार नहीं हुए। दूसरी तरफ कई ऐसे कर्मचारी थे जिन्होंने उत्तराखण्ड से उत्तर-प्रदेश जाना मंजूर नहीं किया। उत्तराखण्ड के विकल्पधारी इसलिये भी उत्तराखण्ड में कार्यभार ग्रहण नहीं कर पाये क्योंकि सम्बन्धित विभाग ने उन्हें उत्तर-प्रदेश से नये राज्य के लिये कार्य मुक्त नहीं किया था। जिसका सीधा प्रभाव उत्तराखण्ड की प्रशासनिक व्यवस्थाओं में देखा गया।

भारत सरकार द्वारा उत्तराखण्ड के विभिन्न विभागों हेतु कार्मिकों का जो आबंटन किया गया उसके अनुसार 'क' श्रेणी के कार्मिकों की संख्या 403, 'ख' श्रेणी के कार्मिकों की संख्या 1209, 'ग' श्रेणी के कार्मिकों की संख्या 16825 तथा 'घ' श्रेणी के कार्मिकों की संख्या 2875 थी। वर्ष 2007 के मध्य तक भी इसमें से क-श्रेणी के 31, ख-श्रेणी के 193, ग-श्रेणी के 2895 तथा घ-श्रेणी के 415 कार्मिकों ने उत्तराखण्ड में कार्यभार ग्रहण नहीं किया। अनेकों कर्मचारियों के न्यायालय में चले जाने के कारण भी मामले लटके रहे। युवा कल्याण विभाग, व्यापार कर विभाग, मनोरंजन कर, स्टाम्प एवं निबन्धन, आबकारी विभाग, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति, गृह विभाग-विधि विज्ञान, पुलिस विभाग, नागरिक सुरक्षा, कारागार, अर्थ व संख्या प्रभाग के कार्मिकों के मामले न्यायालय में विचाराधीन है। उत्तराखण्ड से उत्तर-प्रदेश हेतु क-श्रेणी में 134, ख-श्रेणी में 663, ग-श्रेणी में 7200 तथा घ-श्रेणी में 218 कार्मिक अवमुक्त किये जाने के आदेश हैं। इनमें से भी खेल, ग्रामीण अभियन्त्रण विभाग, आबकारी, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति तथा सिंचाई विभाग से सम्बन्धित कुछ कार्मिकों के मामले न्यायालय में लम्बित होने के कारण उन्हें कार्यमुक्त नहीं किया जा सका है। पुलिस कार्मिकों का विभाजन भी अभी तक पूर्ण नहीं हो पाया है। इसी प्रकार लगभग सभी विभागों में कार्मिकों के बटवारे को लेकर अभी तक समस्या बनी हुयी है।

अभ्यास प्रश्न

1. संविधान में केन्द्र राज्यों को लेकर कितनी सूचियाँ हैं ?
2. समवर्ती सूची राज्य और केन्द्र की व्यवस्थापिका को समवर्ती शक्तियों के द्वारा कितने विषयों पर अधिकार प्रदान करती है?
3. विधायी शक्तियाँ किस अनुच्छेद में वर्णित हैं?
4. संकटकालीन उपबन्ध संविधान के किस भाग में हैं?
5. राज्य की कार्यपालिका का अध्यक्ष कौन होता है?
6. केन्द्र -राज्य सम्बन्धों को लेकर कौन से आयोग बनाये गये हैं?
7. राज्य मंत्री परिषद का गठन किस अनुच्छेद के अन्तर्गत किया गया है?
8. राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल को किस अनुच्छेद के आधार पर सौंपी गयी है?

- | | |
|-----|---|
| 9. | उत्तराखण्ड राज्य में कुल कितने विधान सभा क्षेत्र हैं ? |
| 10. | उत्तराखण्ड राज्य में लोकसभा व राज्य सभा की कितनी सीटें हैं? |

12.7 सारांश

केन्द्र राज्य सम्बन्धों में सुधार की दृष्टि से अनेकों प्रयास होते रहें हैं। सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने को लेकर राज्य और केन्द्र दोनों ने सार्थक प्रयास किये हैं। केन्द्रीय प्रशासनिक सुधार आयोग, सरकारिया आयोग, आदि ने इस दिशा में महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। अब समय आ गया है कि केन्द्र राज्य सम्बन्धों की समस्या पर शान्तिपूर्वक व सकारात्मक विचार-विमर्श हो। देश संकटों से घिरा है ऐसे में केवल एक दूसरे पर दोषारोपण करने से काम नहीं चलेगा। सही राजनीतिक पहल समय की माँग है। छोटे राज्यों की माँगों को उनकी सार्थकता के आधार पर गठन किया जाना आवश्यक है। आज की स्थितियों को देखते हुए सहकारी संघवाद एकमात्र समाधान है।

नये राज्य जो कुछ वर्ष पूर्व ही अस्तित्व में आये हैं। उन पर केन्द्र को विशेष ध्यान देने की जरूरत है। नये राज्य भी केन्द्र के सहयोगी बने तभी दोनों की बीच सही तारतम्यता बनी रहेगी। देश के संविधान में वर्णित कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना को साकार करने हेतु नवसृजित उत्तराखण्ड राज्य में स्वायत्त शासन को अधिक महत्व दिया गया है। राज्य में जनसंख्या के आधार पर नगरीय, ग्रामीण स्वायत्त संस्थाओं एवं संगठनों का वर्गीकरण ग्राम पंचायत, न्याय पंचायत, नगर परिषद् तथा नगर निगम के रूप में किया गया है।

सारांशतः हम ये कह सकते हैं कि इस अध्याय में हमने केन्द्र राज्य सम्बन्धों को लेकर संविधान में संवैधानिक शक्तियों का विभाजन व दोनों के बीच विधायी व प्रशासनिक सम्बन्धों पर गंभीरता से चिन्तन किया। इसके साथ ही हमने ये भी जानने का प्रयास किया कि उत्तराखण्ड की विधायी व प्रशासनिक संरचना क्या है और वह किस प्रकार कार्य कर रही है।

12.8 शब्दावली

परिक्षेप – परिदृश्य

विनियम - अधिनियम

अभिलेख – लेख

कृत्य -कार्य

परिसीमन – सीमा निर्धारण

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- 1.3(संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची), 2. 52 विषयों पर , 3. अनुच्छेद 245 से 363,
4. भाग-18, 5. राज्यपाल, 6. प्रशासनिक सुधार आयोग, सरकारिया आयोग, 7. 163 में,
8. 154 के तहत, 9. 70, 10. 5 व 3

12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी-अवस्थी - भारतीय प्रशासन
2. टी. सी. भट्ट - उत्तराखण्ड, राज्य आन्दोलन का नवीन इतिहास
3. पी.सी. जोशी - उत्तराखण्ड के आर्डिने में हमारा समय
4. शेखर पाठक - पहाड़, सम्पादक

12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. पुखराज जैन, वी.एन.खन्ना, चन्द्रकुमार सक्सेना -भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं गणतन्त्र का संविधान।
2. एम. वी. पायली -भारत की संवैधानिक सरकारें
3. नन्द किशोर -क्षेत्रीय परिषदों की प्रभावी भूमिका

12.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. अवशिष्ट शक्तियाँ क्या होती हैं? इस पर अपना लेख लिखिए?
2. राज्य के विधानमण्डलों को विधि निर्माण में क्या-क्या अधिकार प्राप्त है बतायें?
3. उत्तराखण्ड की विधायी संरचना के बारे में आप की जानकारी क्या है?
4. मुख्यमंत्री की नियुक्ति कैसे होती है व उसके कार्य क्षेत्र क्या हैं?
5. उत्तर-प्रदेश व उत्तराखण्ड में कार्मिकों के विभाजन की स्थिति क्या है समझायें?

इकाई-13 भारत में केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध- उत्तराखण्ड के वित्तीय सन्दर्भ में

इकाई की संरचना

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 संघ एवं राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध

13.3 केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध-संवैधानिक प्रावधान

13.4 वित्त आयोग

13.5 13वें वित्त आयोग की कुछ महत्वपूर्ण शिफारिशें

13.6 केन्द्र और उत्तराखण्ड राज्य

13.7 केन्द्रीय योजना आयोग द्वारा उत्तराखण्ड में दी गयी वित्तीय सहायता

13.8 आस्तियों तथा दायित्वों का विभाजन

13.9 सारांश

13.10 शब्दावली

13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

13.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

13.14 निबंधात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

इससे पहले इकाई-3 में हमने जाना कि संविधान द्वारा केन्द्र राज्य सम्बन्ध को लेकर क्या- क्या शक्तियाँ दी गयी हैं तथा इनका बटवारा संविधान में कैसे किया गया है। साथ ही हमने पिछली इकाई में केन्द्र तथा राज्य के विधायी और प्रशासनिक सम्बन्धों को भी विस्तृत रूप से जानने का प्रयास किया। उत्तराखण्ड की विधायी व प्रशासनिक संरचना का भी इस इकाई में अध्ययन किया गया। साथ ही इस बात का भी अध्ययन किया गया कि केन्द्र सरकार द्वारा कार्मिकों का बटवारा दोनों राज्यों (उत्तर-प्रदेश व उत्तराखण्ड) के बीच कैसे किया गया और उसकी वर्तमान स्थिति क्या है। अब अगली इकाई-4 में हम भारत में केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध उत्तराखण्ड के वित्तीय संदर्भ में चर्चा करेंगे।

केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों के बारे में हम केन्द्रीय प्रधानता वाली भारतीय संघवाद की सामान्य प्रवृत्ति के दर्शन कर सकते हैं। यह कहा जा सकता है कि वित्तीय दृष्टि से संघ अधिक शक्तिशाली है। लेकिन राज्यों के भी अपने संसाधन हैं। सुनियोजित अर्थव्यवस्था के माध्यम से देश की जरूरतों के स्वरूप को देखते हुए संघ राज्यों के लिये सारवान राशियों की व्यवस्था करता है।

नये राज्यों को सरकार द्वारा उचित सहयोग व विशेष अनुदान देकर आर्थिक रूप से मजबूत व सबल बनाने का प्रयास किया जाता रहा है। उत्तराखण्ड को भी केन्द्र सरकार द्वारा सहायता प्रदान की गयी है जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे। उत्तराखण्ड को लेकर वित्त आयोग की रिपोर्ट व योजना आयोग द्वारा उत्तराखण्ड राज्य को विशेष राज्य के दर्जे के रूप में विशेष आर्थिक पैकेज दिया गया है जिसकी चर्चा हम अन्य राज्यों के साथ तुलनात्मक अध्ययन के रूप में करेंगे।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से हम जान पायेंगे कि-

1. केन्द्र राज्य के वित्तीय सम्बन्धों का संवैधानिक रूप क्या है।
2. राज्यों को लेकर 13वें वित्त आयोग की रिपोर्ट की सिफारिशें क्या हैं।
3. केन्द्र द्वारा उत्तराखण्ड को दिये जाने वाला बजट व उसकी समीक्षा।
4. परिसम्पत्तियों एवं दायित्वों का उत्तर-प्रदेश व उत्तराखण्ड के बीच बटवारे की स्थिति।

13.2 संघ एवं राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध

केन्द्र तथा राज्य की सरकारों के बीच केवल विधायी व प्रशासनिक शक्तियों का ही बटवारा नहीं होता, वित्तीय स्रोतों का भी बटवारा होता है। भारत के संविधान के अलावा वित्तीय क्षेत्र में केन्द्र और राज्यों के सम्बन्धों का इतना विस्तृत अध्ययन अन्य किसी देश के संविधान में नहीं मिलता है। भारत में संविधान द्वारा एक वित्त आयोग की व्यवस्था की गयी है। इसका मुख्य उद्देश्य है केन्द्र तथा राज्यों के मध्य साधनों से होने वाली प्राप्तियों का वितरण तथा समायोजन करना। इस वितरण प्रणाली में कभी-कभी केन्द्र और राज्यों के बीच मतभेद व तनाव भी उभर जाते हैं। भारतीय संविधान ने संघात्मक राज्यों की इस कठिन समस्या को सुलझाने के लिये एक मौलिक कदम उठाया है। भारत सरकार अधिनियम 1935 ने भी इस समस्या को सुलझाने का अच्छा प्रयास किया था। इस सारी समस्या को दूर करने के लिये राजस्व के समस्त स्रोत केन्द्र और प्रान्तों के मध्य बाँट दिये गये। कुछ विषय में केन्द्र कर लगाता व इक्कठा करता था परन्तु जो कुछ भी प्राप्त होता था वह उसे प्रान्तों में बाँट देता था। इस अधिनियम की वास्तविक त्रुटि यह थी कि प्रान्तों को बहुत ही कम राजस्व स्रोत दिये गये थे। वर्तमान संविधान निर्माताओं ने 1935 के अधिनियम की त्रुटियों को छोड़ते हुए, उसकी व्यवस्था का अनुसरण किया है। संविधान में केन्द्र और राज्य के बीच साधनों के वितरण की व्यवस्था की गयी है किन्तु वितरण की व्यवस्था के लिये राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त वित्त आयोग को विस्तारपूर्वक वितरण करने का कार्य सौंपा गया है।

13.3 केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध-संवैधानिक प्रावधान

केन्द्र तथा राज्यों के मध्य राजस्व के साधनों के विभाजन के आधारभूत सिद्धान्त हैं। जिनको हम निम्न रूप में देख सकते हैं।

अ-कार्यक्षमता

ब-पर्याप्तता

स-उपयुक्तता इन तीनों उद्देश्यों की एक साथ ही प्राप्ति अत्यन्त कठिन थी। अतः भारतीय संविधान में समझौते की चेष्टा की गयी। संविधान द्वारा केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों के निरूपण को इस प्रकार देखा जा सकता है।

13.3.1 कर निर्धारण, शक्ति का वितरण और करों से प्राप्त आय का विभाजन

भारतीय संविधान में वित्तीय प्रावधानों की दो विशेषताएं हैं। प्रथम- केन्द्र तथा राज्यों के मध्य कर निर्धारण की शक्ति का पूर्ण निर्धारण कर दिया गया है। द्वितीय- करों से प्राप्त आय का बटवारा किया जाता है।

केन्द्र के प्रमुख राजस्व स्रोत इस प्रकार हैं- निगम कर, सीमा शुल्क, निर्यात शुल्क, कृषि भूमि को छोड़ कर अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क, विदेशी ऋण, रेलें, रिजर्व बैंक, शेयर बाजार, आदि। राज्यों के राजस्व स्रोत निम्न हैं- प्रति व्यक्ति कर, कृषि भूमि पर कर, सम्पदा शुल्क, भूमि और भवनों पर कर, पशुओं और नौकाओं पर कर, बिजली के उपयोग तथा विक्रय पर कर, वाहनों पर चुंगी कर आदि। केन्द्र द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत, विनियोजित किये जाने वाले शुल्कों के उदाहरण निम्नवत् हैं- बिल, विनियमों, प्रोमिसरी नोटों, हुण्डिया, चेकों आदि पर मुद्रांक शुल्क और दवा तथा मादक द्रव्य पर कर, शौक-श्रृंगार की चीजों पर कर तथा उत्पादन शुल्क।

केन्द्र द्वारा आरोपित तथा संग्रहित विनियोजित किये जाने वाले करों के उदाहरण निम्न हैं- कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर, कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क, रेल, समुद्र, वायु द्वारा ले जाने वाले माल तथा यात्रियों पर सीमान्त कर, रेल भाड़ों तथा वस्तु भाड़ो पर कर शेयर बाजार तथा सट्टा बाजार के आदान-प्रदान पर कर, मुद्रांक शुल्क के अतिरिक्त कर, समाचार पत्रों के क्रय-विक्रय तथा उनमें प्रकाशित किये गये विज्ञापनों पर और समाचार पत्रों से अन्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा वाणिज्य के माल के क्रय-विक्रय पर कर।

कतिपय कर केन्द्र द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत किये जाते हैं, पर उनका विभाजन केन्द्र तथा राज्यों के बीच होता है। आय कर व दवा तथा शौक-श्रृंगार सम्बन्धी चीजों के अतिरिक्त अन्य चीजों पर लगाया गया उत्पादन शुल्क इसके अन्तर्गत आता है।

13.3.2 सहायक अनुदान तथा अन्य सार्वजनिक उद्देश्यों के लिये दिया जाने वाला अनुदान

संविधान के अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्यों को चार तरह के सहायता अनुदान प्रदान करने की व्यवस्था की गयी है।

प्रथम-पटसन या उससे बनी वस्तुओं के निर्यात से जो शुल्क प्राप्त होता है उसमें से कुछ भाग अनुदान के रूप में जूट पैदा करने वाले राज्यों को दिया जाता है। द्वितीय- बाढ़, भूकम्प व सूखाग्रस्त क्षेत्रों में पीड़ितों की सहायता के लिये भी केन्द्रीय सरकार राज्यों को अनुदान दे सकती है। तृतीय- आदिम जातियों व कबीलों की उन्नति व उनके कल्याण की योजनाओं के लिये भी सहायक अनुदान केन्द्र द्वारा दिया जाता है। चतुर्थ- राज्य को आर्थिक कठिनाईयों से उबारने के लिये केन्द्र राज्यों की वित्तीय सहायता करता है।

13.3.3 ऋण लेने सम्बन्धी उपबन्ध

संविधान केन्द्र को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह अपनी संचित निधि की साख पर देशवासियों व विदेशी सरकारों से ऋण ले सके। ऋण लेने का अधिकार राज्यों को प्राप्त होता है, परन्तु वह विदेशों से धन उधार नहीं ले सकते। यदि किसी राज्य पर केन्द्र सरकार का कोई कर्ज बाकी

है तो राज्य सरकार अन्य कर्ज केन्द्र सरकार की अनुमति से ही ले सकती है। इस प्रकार का कर्ज देते समय केन्द्र सरकार किसी प्रकार की शर्त भी लगा सकती है।

13.3.4 करों से विमुक्ति

राज्यों द्वारा केन्द्र की सम्पति पर कोई कर तब तक नहीं लगाया जा सकता जब तक संसद विधि द्वारा कोई प्रावधान न कर दे। भारत सरकार या रेलवे द्वारा प्रयोग में आने वाली बिजली पर संसद की अनुमति के अभाव में राज्य किसी प्रकार का शुल्क नहीं लगा सकते। इसी प्रकार केन्द्र सरकार भी राज्य सम्पति और आय पर कर नहीं लगा सकती।

13.3.5 भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक द्वारा नियन्त्रण

भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक की नियुक्ति केन्द्रीय मंत्रीमण्डल के परामर्श से राष्ट्रपति करता है। यह भारत सरकार तथा राज्य सरकार के हिसाब का लेखा रखने के ढंग और उनकी निष्पक्ष रूप से जाँच करता है। नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के माध्यम से ही भारतीय संघ राज्य की आय पर अपना नियंत्रण रखता है।

13.3.6 वित्तीय संकटकाल

वित्तीय संकटकालीन घोषणा की स्थिति में राज्यों की आय सीमा राज्य सूची में चर्चित करों तक ही सीमित रहती है। वित्तीय संकट के प्रवर्तन काल में राष्ट्रपति को संविधान के उन सभी प्रावधानों को स्थगित करने का अधिकार है जो सहायता अनुदान अथवा केन्द्र के करों की आय में भाग बाटने से संबन्धित हो। केन्द्रीय सरकार वित्तीय मामलों में राज्यों को निर्देश भी दे सकती है।

13.4 वित्त आयोग

वित्तीय आयोग की परिकल्पना भारतीय संविधान के अनुच्छेद 280 में की गयी है। इसके अनुसार भारत का राष्ट्रपति अपने स्वविवेक से प्रति पाँच वर्ष के बाद एक नवीन वित्त आयोग गठित करेगा। वित्त आयोग में एक अध्यक्ष के साथ-साथ चार अन्य सदस्यों की संवैधानिक व्यवस्था है। इसका अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति होता है जिसे सार्वजनिक कार्यों में व्यापक अनुभव होता है। शेष चार सदस्यों में एक उच्च न्यायालय का न्यायाधीश या इसी प्रकार का योग्यताधारी, एक ऐसा व्यक्ति किसी सरकार के वित्त तथा लेखाओं का विशेष ज्ञान हो, एक ऐसा व्यक्ति जिसे वित्तीय विषयों तथा प्रशासन के बारे में व्यापक अनुभव हो तथा एक व्यक्ति जिसे अर्थशास्त्र का विशेष ज्ञान हो, होता है। वित्त आयोग का कार्य केन्द्र तथा राज्यों के बीच विभाजन योग्य करों की आय का वितरण तथा केन्द्र द्वारा राज्य सरकारों को सहायता देना आदि विविध बातों के सम्बन्ध में सुझाव राष्ट्रपति को देना है। राष्ट्रपति वित्त आयोग की संस्तुतियों को संसद के समक्ष रखता है। अनुच्छेद 280 के अतिरिक्त संविधान के अनुच्छेद 270, 273, 275, भी इसकी पुष्टि करते हैं। भारतीय संविधान में वित्त आयोग के कतिपय कार्य सुनिश्चित किये गये हैं। इसके कार्यों में केन्द्र और राज्यों के बीच विभाजन योग्य करों

की शुद्ध आगमों का वितरण भारत की संचित निधि में से राज्यों के सहायता अनुदान को शासित करने वाले सिद्धान्त सुनिश्चित करना एवं सुदृढ़ वित्त के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपे गये किसी अन्य विषय के बारे में राष्ट्रपति को सिफारिश देना प्रमुख है।

वर्तमान में 13वाँ वित्त गठित किया जा चुका है। अब तक भारत में 12 वित्त आयोग गठित हो चुके हैं।

13.5 13वें वित्त आयोग की कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशें

सरकार ने पूर्व वित्त सचिव विजय केलकर की अध्यक्षता वाले 13वें वित्त आयोग की रपट संसद में पेश की। केन्द्र और राज्यों के बीच केन्द्रीय करों के विभाजन से संबंधित वित्त आयोग की प्रमुख सिफारिशें निम्न हैं-

1. विभाज्य केन्द्रीय करों की शुद्ध निबल प्राप्तियों में राज्यों का हिस्सा 32 प्रतिशत हो।
2. विभिन्न करों के साथ लगाये गये उपकरों तथा अभिकरों की समीक्षा की जाये।
3. केन्द्र की सकल राजस्व प्राप्तियों में राज्यों को दिया जाने वाला हिस्सा 39.5 प्रतिशत रखा जाये।
4. राज्यों में वित्त उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबन्धन () अधिनियमों का अनुपालन बनाया जाये।
5. राज्यों में 2011-12 तक राजकोषीय सुधार मार्ग पर वापस आने की उम्मीद।
6. राष्ट्रीय आपदा आकस्मिक निधि को राष्ट्रीय आपदा अनुक्रिया निधि में मिला दिया जाय।
7. राष्ट्रीय आपदा राज्यों के लिये अनुशंसा अवधि (अप्रैल 2010-मार्च 2015) के दौरान आयोजन भिन्न राजस्व अनुदान के तहत 51,800 करोड़ रुपये आवंटित किये जाये। आयोजन भिन्न राजस्व घाटे की स्थिति से उबर चुके तीन विशेष श्रेणी के राज्यों के लिये 1500 करोड़ रुपये का निष्पादन अनुदान दिये जाये।
8. चार वर्षों के 2010-12, से 2014,15 के लिये सड़कों और पुलों के लिये अनुदान के रूप में 19,930 करोड़ रुपये की राशि की सिफारिश।
9. वन, अक्षय उर्जा तथा जल क्षेत्र प्रबन्ध के लिये 5000 करोड़ रुपये की राशि आवंटित की जाय।
10. प्रारंभिक शिक्षा के लिये अनुदान के रूप में 24,068 करोड़ रुपये की राशि आवंटित की जाय।
11. राज्यों की सहायता अनुदान के रूप में सिफारिश अवधि के लिये 3,18,581 करोड़ रुपये की राशि की सिफारिश।
12. वित्त आयोग ने वस्तु एवं सेवा कर के क्रियान्वयन के कारण राज्यों को होने वाले राजस्व नुकसान की भरपायी के लिये 50,000 करोड़ रुपये का प्रावधान किये जाने की सिफारिश। जी.एस.टी. का क्रियान्वयन अप्रैल 2013 या उसके बाद होने पर यह राशि घटकर 40,000 करोड़ रुपये तथा अप्रैल 2014 या उसके बाद इसका क्रियान्वयन होने पर 30,000 करोड़ रुपये का प्रावधान।

13.6 केन्द्र और उत्तराखण्ड राज्य

उ.प्र. राज्य के साथ परिसम्पत्तियों के बटवारे के बाद केन्द्र सरकार से नवगठित राज्य को सहायता मिलनी शुरू हो गयी है। देश के हिमालयी क्षेत्रों में 6 प्रतिशत से कम जनसंख्या रहती है। योजना आयोग भारत सरकार के आफिस मैमोरेण्डम संख्या -एफ-संख्या 4/28/2000 एफ.आर(बी)दिनांक 21 जनवरी 2002 के अनुसार राष्ट्रीय विकास परिषद की 1 सितम्बर 2001 को सम्पन्न बैठक में उत्तराखण्ड को वर्ष 2001-02 से विशेष श्रेणी राज्य का दर्जा दिया गया, किन्तु यह विधि बहुत लाभकारी सिद्ध नहीं हो पायी। निर्णय के अनुसार केन्द्रीय सरकार को सभी केन्द्र अनुदानित योजनाओं के लिये 90 प्रतिशत अनुदान देना चाहिये था, किन्तु केन्द्र सरकार ने 2001-10 तक विशेष दर्जा प्राप्त राज्य को मिलने वाली अनुदान राशि आवंटित नहीं की, यह अनुदान तभी मिल सकता है जब केन्द्र सरकार का वित्त तथा नियंत्रण मंत्रालय इसे स्वीकार करें। वित्त तथा नियंत्रण मंत्रालय सीधे प्रधानमंत्री के अधीनस्थ है। इस मंत्रालय ने उत्तराखण्ड को विशेष राज्य का दर्जा देने वाली अनुदान राशि का प्रतिशत नहीं बढ़ाया। केन्द्र सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय के आफिस मेमोरेण्डम संख्या 11015/1/2007 एन.इ. दिनांक 16 अक्टूबर 2000 के द्वारा उत्तर पूर्वी राज्यों को विशेष श्रेणी वाले राज्यों की भांति 9:10 के अनुपात में अनुदान देने के निर्देश जारी किये। 1:10 के अनुपात के अनुसार 2009-10 में उत्तराखण्ड को लगभग 2500 करोड़ रुपये की सहायता कम मिली है।

दो वर्षों में केन्द्र सहायतित योजनाओं पर व्यय किये गये धनराशि निम्न रूप में देखी जा सकती है।

क्रम सं	2008-2009(करोड़ रुपये में)	2009-2010(करोड़ रुपये में)
1	परिव्यय 1275.85	1358.44
2	बजट प्राविधान 1683.52	1794.48
3	स्वीकृति 1552.59	1071.21
4	व्यय 870.73	995.01

इस आकड़े से अनुमान लगाया जा सकता है कि उत्तराखण्ड को राष्ट्रीय विकास परिषद के निर्णय के बावजूद लगभग 20 प्रतिशत अनुदान पिछले 10 वर्षों से कम मिल रहा है। केन्द्रीय बजट से राज्यों को एक मुश्त रकम दी जाती है। विशेष श्रेणी के राज्यों को भारत सरकार या केन्द्र द्वारा दी जाने वाली प्रति व्यक्ति अनुदान राशि व प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद प्रतिशत को हम सारणी के माध्यम से देख सकते हैं-

क्रम संख्या विशेष श्रेणी राज्य प्रति व्यक्ति अनुदान (रूपये में) प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद प्रतिशत

1.	मिजोरम	48,193	48.5
2.	नागालैंड	29,543	36.2
3.	मणिपुर	28,229	51.2
4.	हिमांचल प्रदेश	29,897	17.7
5.	त्रिपुरा	26,091	26.1
6.	अरुणांचल प्रदेश	23,264	58.1
7.	जम्मू और कश्मीर	33,197	36.0
8.	मेघालय	27,209	24.7
9.	सिक्किम	27,554	57.8
10.	उत्तराखण्ड	15,468	13.6

सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि, सकल घरेलू उत्पादन में वृद्धि राज्य सरकार की उपलब्धी है। उत्तराखण्ड के 09 पहाड़ी जिलों का योगदान 35 है तथा सकल उत्पाद दर में 65 प्रतिशत वृद्धि हुयी है।

वर्ष 2008-09 में प्रति व्यक्ति आय में निम्न आकड़ों में देखा जा सकता है

क्रम संख्या जनपद प्रति व्यक्ति आय (08-09) रूपये में

1.	उत्तरकाशी	25,379
2.	चमौली	32,038
3.	रुद्रप्रयाग	24,474
4.	पौड़ी	28,139
5.	पिथौरागढ़	28,596
6.	बागेश्वर	22,709
7.	अल्मोड़ा	28,896
8.	टिहरी	33,999
9.	नैनीताल	41,180
10.	चंपावत	27,374
11.	उधमसिंह नगर	33,895
12.	हरिद्वार	50,227
13.	देहरादून	43,522

13.7 केन्द्रीय योजना आयोग द्वारा उत्तराखण्ड में दी गयी वित्तीय सहायता

राज्य के आर्थिक विकास को मजबूती प्रदान करने के लिये वार्षिक परियोजना के परिव्यय में निरन्तर वृद्धि हुई है। नौवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कुल रू. 4430 करोड़ का परिव्यय था।

दसवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत राज्य के लिये रू. 9000 करोड़ की योजना स्वीकृत की गयी। दोनों योजनाओं के परिव्यय से स्पष्ट होता है कि वार्षिक योजनाओं हेतु अनुमोदित परिव्यय और व्यय में निरन्तर वृद्धि हुयी है। केन्द्र की सहायता का लाभ उत्तराखण्ड सरकार को मिलता रहा है। राज्य के विकास में केन्द्रीय अनुदान का विशेष महत्व है। केन्द्रीय योजना आयोग ने राज्य की वर्ष 2005-2006 की सालाना योजना के परिव्यय में एक साथ 45 प्रतिशत की वृद्धि की जो राज्य के लिये एक बड़ी उपलब्धि थी। वर्ष 2004-2005 में प्रदेश की योजना के लिये 1865 करोड़ का परिव्यय अनुमोदित था, जबकि इसे 2005-2006 में 2700 करोड़ रूपये कर दिया गया। इसके बाद भी केन्द्र सरकार द्वारा राज्य के विकास के लिये निरन्तर अनुदान दिया गया।

13.8 आस्तियों तथा दायित्वों का विभाजन

उत्तर- प्रदेश से जब उत्तराखण्ड अलग राज्य के रूप में उभर के आया तब चूल्हें चौके के अलग होने से कई तरह के हिस्से बटवारे होने थे। कुछ परिसम्पत्तियों पर दोनों के बीच एक सहमति न होने के कारण केन्द्र को हस्तक्षेप करना पड़ा। केन्द्र सरकार के स्पष्ट आदेशों के बाद भी अनेकों मामलों में उत्तर-प्रदेश रोड़े अटकाता रहा। जबकि दोनों प्रदेशों के शीर्ष अधिकारियों की बैठकों में महत्वपूर्ण मुद्दों पर वार्ता हो चुकी थी। नवम्बर 2007 के मध्य में अधिकारियों की इस बैठक में उत्तराखण्ड के अधिकारियों ने पहली माँग यही रखी कि जो सम्पत्ति नहर व रहवाहों के अलावा डैम आदि हैं वह सभी उत्तराखण्ड को सौंप दिये जाएं। इस बात पर उत्तर-प्रदेश के अधिकारियों ने कहा कि नहरों के प्रमुख कार्य गंगा प्रबन्धन बोर्ड को सौंपे जायें। इससे किसी एक राज्य का किसी भी नहर के संचालन पर एकाधिकार नहीं हो सकेगा। उत्तराखण्ड में स्थित नानक सागर, बेगुल, धौराबाउर व तुमड़िया जलाशयों में से निकलने वाली नहरों की नीलामी को लेकर उत्तराखण्ड और उत्तर-प्रदेश में ऐसी ठनी कि मामला पहले ही न्यायालय में पहुँच गया था। 15 सितम्बर 2003 को नैनीताल हाईकोर्ट ने उत्तराखण्ड के पक्ष में फैसला देते हुए कहा था कि नानक सागर, बेगुल, धौराबाउर व तुमड़िया जलाशय पूरी तरह उत्तराखण्ड राज्य में हैं और इस जलाशयों से निकलने वाली मछली की भी नीलामी का यू.पी. विकास निगम लि. को कोई अधिकार नहीं है। उत्तराखण्ड या उसका निगम ही इन जलाशयों की मछली की नीलामी कर सकता है। जबकि शारदा सागर जलाशय उत्तराखण्ड व उत्तर-प्रदेश दोनों राज्यों में पड़ता है इसलिये इनमें से निकलने वाली मछलियों की नीलामी दोनों राज्य मिलकर कर सकते हैं।

आस्तियों एवं दायित्वों के विभाजन के लिये भारत सरकार की राय के अनुसार उत्तर-प्रदेश एवं उत्तराखण्ड के लिये 1 मार्च 2001 को मुख्य सचिव समिति का गठन किया गया। इसके अतिरिक्त विभागों के स्तर पर उत्तराखण्ड एवं उत्तर प्रदेश की संयुक्त विभागीय सचिव समितियों का गठन किया गया। 6 मार्च 2001 को उत्तराखण्ड और उत्तर-प्रदेश के मुख्यमन्त्रियों, के मध्य उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम के अन्तर्गत कार्यवाही के सम्बन्ध में लखनऊ में बैठक आयोजित हुई। जिन 17 महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर बैठक में विचार विमर्श हुआ उसमें नई दिल्ली स्थित उत्तर प्रदेश निवास

उत्तराखण्ड को देने तथा उत्तर प्रदेश तराई बीज विकास निगम को दोनों राज्यों के सयुक्त स्वामित्व एवं प्रबन्धन में संचालित करने पर सहमति बनी। 10 अप्रैल 2006 को गृह मंत्रालय भारत सरकार के स्तर पर सम्पन्न समीक्षा बैठक में प्राप्त निर्देशों के अनुपालन की समीक्षा हेतु 30 अगस्त 2006 को प्रमुख सचिव उत्तर प्रदेश पुनर्गठन समन्वयक विभाग की अध्यक्षता में बैठक आयोजित हुई। भारत सरकार ने कतिपय प्रकरणों का निस्तारण दोनों उत्तरवर्ती राज्यों द्वारा समन्वित रूप से मई व जून 2006 तक किये जाने के निर्देश दिये थे। इसी परिप्रेक्ष्य में भारत सरकार द्वारा उनकी प्रगति की स्थिति से अवगत कराये जाने की भी अपेक्षा की गयी थी। उक्त सम्बन्धी प्रकरणों की प्रगति की समीक्षा प्रमुख सचिव उत्तर-प्रदेश पुनर्गठन समन्वय विभाग द्वारा 30 अगस्त 2006 को की गयी और सिंचाई विभाग, औद्योगिक विकास विभाग, उर्जा, कृषि, गन्ना एवं चीनी उद्योग, पंचायती राज, मत्स्य विकास, शिक्षा, कारागार, श्रम, सैनिक कल्याण/ समाज कल्याण तथा नगर विकास विभाग से जुड़े 13 प्रस्तावों पर चर्चा और प्रगति की समीक्षा की गयी।

दूसरी ओर वन विकास निगम की लगभग 2 अरब रूपये की रकम को लेकर उत्तर प्रदेश का रवैया काफी हैरत भरा रहा। इस मुद्दे पर केन्द्र सरकार ने 13 फरवरी व 28 जुलाई 2004 को स्पष्ट आदेश किया कि उत्तराखण्ड को वन निगम की करीब 4 अरब रूपये की निधि से 54 प्रतिशत भाग दे दिया जाए लेकिन केन्द्र के आदेश के बाद भी वन विकास निगम को अपना हक पाने के लिये काफी मेहनत करनी पड़ी।

पुलिस विभाग की परिसम्पत्तियों के बंटवारे के सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखण्ड के सचिवों के बीच जो बैठक हुई उनका कोई परिणाम नहीं निकला। लिये गये निर्णयों के आधार पर पुनर्गठन आयुक्त उत्तराखण्ड शासन, विकास भवन, सचिवालय, उत्तर-प्रदेश, लखनऊ के माध्यम से पुलिस विभाग के विभिन्न मुख्यालयों के स्टोर से वर्तमान मूल्य रूपये 4,87,85,270 की सूची प्राप्त हुई जिसके आधार पर अंकित मूल्य से पुलिस मुख्यालय उत्तराखण्ड सहमत नहीं था। किन्तु कोई विकल्प न होने के कारण अंकित वर्तमान मूल्य का 16 प्रतिशत भाग रूपये 78,05,643.20 उत्तराखण्ड राज्य को उपलब्ध कराये जाने की अपेक्षा की गयी।

31 मार्च 2001 के पूर्ववर्ती उत्तर प्रदेश वन निगम के आर्थिक पत्र में दर्शित आरक्षित एवं अधिशेष की राशि रूपये 425.11 करोड़ की 54 प्रतिशत राशि जो उत्तराखण्ड को सौंपी जानी चाहिए थी उसमें अभी भी विवाद बना हुआ है। उत्तर प्रदेश वन निगम की परिसम्पत्तियों का उत्तर प्रदेश और उत्तराखण्ड राज्य के वन निगमों के मध्य भारत सरकार के हस्तक्षेप के उपरान्त ही 13 फरवरी 2004 के आदेशों के क्रम में किया जाना शुरू हुआ। इससे पहले दोनों राज्यों के बीच यह मामला उलझा रहा। 31 मार्च 2001 को ,कर सम्पत्तियों का 54:46 के अनुपात में उत्तराखण्ड व उत्तर प्रदेश वन निगम के मध्य विभाजन का आदेश केन्द्र सरकार द्वारा किया गया था।

उत्तराखण्ड वन विकास निगम का गठन 1 अप्रैल 2001 को किया गया था। परिसम्पत्तियों के बंटवारे को लेकर उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड के बीच एका नहीं बन पाया। परिसम्पत्तियों को लेकर उत्तर प्रदेश

का रूख सकारात्मक नहीं रहा जिस कारण केन्द्र सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ा। भारत सरकार द्वारा दोनों पक्षों को सुनने के उपरान्त दोनों राज्यों के मध्य परिसम्पत्तियों के सम विभाजन के आदेश निर्गत किये गये, किन्तु भारत सरकार के आदेश के विरुद्ध उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 28 अप्रैल 2004 को भारत सरकार को पुनर्विचार हेतु आवेदन किया। जिस पर भारत सरकार ने 28 जुलाई 2004 को निर्णय देते हुए अपने पूर्व निर्णय यथावत रखा।

उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड के बीच आज कई परिसम्पत्तियों का विभाजन होना शेष है। दोनों के बीच केन्द्र सरकार ने अपनी अहम भूमिका निभाई है। उत्तराखण्ड को केन्द्र द्वारा वित्तीय सहायता के अतिरिक्त अन्य सहयोग भी दिया जाता रहा है।

अभ्यास प्रश्न :

1. भारत में अब तक कितने वित्त आयोग गठित हो चुके हैं?
2. पहला वित्त आयोग का गठन कब हुआ?
3. 13वें वित्त आयोग के अध्यक्ष कौन हैं?
4. केन्द्रीय स्तर पर योजनाओं का निर्माण कौन करता है?
5. केन्द्र व राज्यों के बीच करों का बंटवारा कौन करता है?
6. आस्तियों एवं दायित्वों के विभाजन के लिये 30प्र0 एवं उत्तराखण्ड के लिये मुख्य सचिव समिति का गठन कब हुआ?
7. वित्त आयोग की परिकल्पना भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में है?
8. राज्यों की वित्तीय आवश्यकता को केन्द्र कौन-कौन से तरीकों से पूरा करता है?
9. एफ.आर.बी.एम. का पूरा नाम क्या है?
10. पहले वित्त आयोग का क्रियान्वयन का वर्ष कब से कब तक था?

13.9 सारांश

केन्द्र और राज्यों के बीच विधायी व प्रशासनिक सम्बन्धों के साथ-साथ वित्तीय सम्बन्ध भी अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों के विस्तृत विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि केन्द्र सरकार राज्यों के विकास के लिये और राज्यों को आर्थिक रूप से सम्पन्न व शक्तिशाली बनाने के लिये प्रयासरत रहा है। राज्यों के आर्थिक विकास में केन्द्र हमेशा सहयोगी रहा है। शायद यही कारण है कि भारतीय संविधान में केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। इस अध्याय में हमने केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्धों का अध्ययन करने के साथ-साथ इस बात का भी अध्ययन किया कि केन्द्रीय योजना आयोग कैसे राज्यों के लिये योजनाएं तैयार करता है। वित्त आयोग केन्द्र तथा राज्यों के बीच करों का निर्धारण करता है। जो दोनों के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करता है।

केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय सम्बन्धों से स्पष्ट होता है कि भारतीय संविधान द्वारा एक शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना की गयी है। जो नये राज्यों को आर्थिक रूप से विशेष सहयोग प्रदान करता है तथा उनकी आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने में अपना योगदान देता है। यही कारण है कि बार-बार यह कहा जाता है कि केन्द्र को भारत के संविधान में बहुत शक्तिशाली बनाया गया है जो कि समय की माँग भी है।

13.10 शब्दावली

विनियोजित - उचित, संगत

प्रोमिसरी नोट - वचन पत्र, इकरारनामा

हुंडिया -- निर्गत आदेश

परिकल्पना -- अवधारणा

13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 13, 2. 1951, 3. विजय केलकर, 4. योजना आयोग, 5. वित्त आयोग, 6. 1मार्च 2001,
7. 280, 8. राज्यों को अनुदान देकर व ऋण देकर, 9. वित्त उत्तरदायित्व व बजट प्रबन्धन, 10. 1952 से 1957

13.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुभाष कश्यप - हमारा संविधान
2. डी.डी.बसु - भारत का संविधान
3. उत्तराखण्ड शासन की रिपोर्ट - संतुलित समयबद्ध विकास, 5 वीं वर्षगांठ

13.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. जगदीश शंकर शुक्ला - भारतीय संविधान तथा प्रशासन
2. जैन व खन्ना - भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन व गणतंत्र का विकास
3. त्रिलोक चन्द्र भट्ट - उत्तराखण्ड, राज्य आन्दोलन व नवीन इतिहास

13.14 निबंधात्मक प्रश्न

- 1- वित्त आयोग से आप क्या समझते हैं?
- 2- 13वें वित्त आयोग की महत्वपूर्ण सिफारिशों पर एक लेख लिखिए?
- 3- विशेष श्रेणी के राज्यों पर निबन्ध लिखिये?